श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावली

प्रथम भाग

भागमल शर्मा।

स्वर्गगत न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्री श्री १००८ श्रीमत्
विजयानन्द सूरि (श्री आत्माराम जी) महाराज



Muni Shri Atmaramji

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री आत्मानन्द—
जैन शिक्षावली ।

पहला भाग ।

लेखक—

मास्टर भागमल शर्म्मा

प्रकाशक—

श्री आत्मानन्द जैन सभा, अम्बाला शहर

वीर संवत् २४४९ आत्म सम्वत् २७	प्रथमावृत्ति ३००० मू० ।)	विक्रम सम्वत् १९८० ईस्वी सन् १९२३

ला० गीताराम व … साहित्य मुद्रणालय, मेरठ में मुद्रित ।

समर्पण ।

यह पुस्तक

अर्थात् श्रद्धा और भक्ति के साथ,

स्वर्गवासी न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य

पूज्यपाद परमोपकारी श्री श्री १००८

श्रीमद्विजयानन्द सूरि (आत्माराम जी) महाराज

के प्रशिष्यरत्न

श्री श्री १००८ श्री मुनि वल्लभविजय जी महाराज

के कर कमलों में

सादर समर्पित

है।

भगवन् !

मेरा इस में कुछ नहीं, जो कुछ है सो तोर ।
तेरा तुझ को सौंपता, क्या लागत है मोर ॥



श्री श्री १००८ श्रीमुनि वल्लभविजयजी महाराज

धन्यवाद ।

निम्नलिखित महानुभाव हमारे हार्दिक धन्यवाद के पात्र हैं। आपने इस पुस्तक के लिये आर्थिक सहायता देकर हमें कृतार्थ किया है —

१००) लाला गंगाराम बनारसी दास—अंबाला शहर ।

१००) लाला जीसुखराय कुन्दन लाल—अंबाला शहर

१००) लाला मनराम मगन राम—अंबाला शहर ।

१००) लाला जयकिशन दास पारसदास की माता धालाबाई—अंबाला शहर ।

१००) सेठ प्राग जी भाइ धर्मसी—बम्बई ।

१००) सेठ भैरोंदान सेठिया की धर्मपत्नी श्रीमती धन्नी बाई—बीकानेर ।

१००) लाला गोंदा मल जी की सुपुत्री श्रीमती रत्नी बाई—अंबाला शहर ।

१००) श्राविका वर्ग—अंबाला शहर ।

४०) लाला मुकन्दी लाल केसरी वालों की माता सरधी बाई—अंबाला शहर ।

आशा है कि अन्य महानुभाव भी इनका अनुकरण करेंगे ।

निवेदक —
मंत्री,
श्री आत्मानन्द जैन सभा,
अंबाला शहर ।

भूमिका ॥

प्यारे पाठक !

यह बात किसी से छिपी हुई नहीं कि जैन पाठशालाओं में पढाने के लिये धार्मिक शिक्षा सम्बन्धी पुस्तकों का हिन्दी भाषा में अभाव ही है। वैसे तो कई बडी २ पुस्तकें जिनमें जैन धर्म का पूरा २ पता लगजाता है विद्यमान हैं तो भी वह ऐसी सुगम नहीं—सरल भाषा में या ऐसे क्रम से लिखी हुई नहीं—जिनको छोटे बालक समझ सकें। परन्तु हां ! धन्य है गुजरात वालों को जिन्होंने इस त्रुटि को पूरा करने के लिये क्रमबद्ध कई पुस्तकें लिख डाली हैं। परन्तु हिन्दी के विद्वानों ने इस तरफ बहुत कम दृष्टि की है। इस लिये इस त्रुटि को किसी अंश तक पूरा करने का मैंने साहस किया।

यद्यपि मेरा यह साहस अनधिकार चेष्टा और छोटा मुंह बडी बात के समान है तथापि यह समझ कर कि—

बालादपि गृहीतव्यं युक्तमुक्तं मनीषिभिः ।
रवेरविषये किं न प्रदीपस्य प्रकाशनम् ॥

मैं आशा करता हूं कि विद्वान् लोग इसमें से सार लेते हुए असार की ओर ध्यान न देंगे। नहीं नहीं अपनी अमूल्य सम्मति द्वारा इस असार को भी सार बनाने की कृपा करेंगे।

इस पुस्तक का अस्तित्व मेरे कारण से नहीं। इसका श्रेय "पूज्यपाद परमोपकारी मुनि श्री १००८ श्री वल्लभविजय जी महाराज" को है। यह उन्हीं की कृपा है उन्हीं का प्रताप है कि मैं इस पुस्तक को आपके हाथों में दे रहा हूं। आप का यहां पर चातुर्मास है और यह पहिला और बडे से बडा लाभ है जो कि मुझको आपसे पहुंचा है और जिसके लिये मैं कृतज्ञ हूं परन्तु मुझसे कहीं अधिक उपकार आपने जैनसमाज पर किया है जोकि पहिले ही आपके उपकारों से दबी हुई है और जन्म जन्मान्तर में भी उससे उऋण नहीं हो सकती।

मैं मन्माना के जैन श्वेताम्बर मण्डल का आभार मानना अपना कर्तव्य समझता हूं कि जिन्होंने श्रीयुत मास्टर दुर्लभ दास कालीदास द्वारा संपादित एक शिक्षण-माला गुजराती भाषा में प्रकाशित की है। प्रस्तुत पुस्तक उसकी 'बाल पोथी' का उन्हें पूर्ण प्यार के साथ भाषान्तर है। बाकी भागों का भी अनुवाद होरहा है। आशा है कि यदि उक्त मुनि महाराज गुरु दास पर कृपा बनाये रखेंगे तो वह भाग भी शीघ्र ही प्रकाशित होजायगे। मैं श्रीयुत प० चेतनदास जी संस्कृताध्यापक जैन मिडल स्कूल अम्बाला शहर को भी धन्यवाद देता हूं जिन्होंने पृष्ठ-संशोधन के काम में मेरी सहायता की है।

उक्त पुस्तक चार भागों में विभक्त है—नीतिबोधविभाग सामान्य ज्ञान विभाग, सूत्रविभाग और काव्यविभाग। पहिले विभाग में नीतिशिक्षा, दूसरे में धर्मसम्बन्धी कुछ बातें तीसरे में क्रिया और चौथे में काव्य हैं। यथाशक्ति यह प्रयत्न किया गया है कि इसमें कोई शब्द ऐसा न आवे जिसे समझने में बालकों को कठिनाई हो। फिर भी कठिन शब्दों के अर्थ पाठ के अन्त में लिख दिये हैं और साथ ही कुछ प्रश्न भी, जिन से पढ़ा हुआ पाठ बालकों को सुगमता से याद हो जावें।

यह पुस्तक मात्र जैनपाठशालाओं के काम की चीज नहीं किन्तु दूसरे लोग भी इससे उतना ही लाभ उठा सकेंगे ऐसी आशा करता हुआ इस प्रार्थना के साथ—

शिवमस्तु सर्वजगतः परहित निरता भवन्तु भूतगणाः।
दोषाः प्रयान्तु नाशं सर्वत्र सुखी भवतु लोकः॥

मैं आपसे विदा होता हूं।

अम्बाला शहर
जन्माष्टमी–१९७६

कृपापात्र–
भागमल शर्मा

शिक्षक महानुभावों से निवेदन।

मित्र सहयोगियो !

आप इस पुस्तक के सामान्य अवलोकन से यह समझ ही जायेंगे कि यह पुस्तक उस ढंग पर नहीं पढ़ाई जा सकती जिस ढंग पर साधारण पुस्तकें पढ़ाई जाती हैं—अर्थात् पहिले पाठ से आरम्भ कर यथाक्रम पुस्तक समाप्त करनी।

१—इसमें तीन भागों (पहिले, तीसरे और चौथे भाग) को साथ साथ पढ़ाना चाहिये। कारण इसका सूत्र विभाग और काव्य-विभाग कण्ठ करने के लिये हैं। और सूत्र विभाग जो सब का सब प्राकृत में है बालक सहज में कण्ठ नहीं कर सकते। इस लिये इन दोनों को भी साथ ही थोड़ा थोड़ा आरम्भ कर देना चाहिये। जिस दिन सूत्र विभाग पढ़ाया जावे उस दिन काव्य विभाग नहीं और जिस दिन काव्य विभाग पढ़ाया जाय उस दिन सूत्र विभाग न पढ़ाया जावे।

२—सामान्य ज्ञान विभाग को नीति बोध विभाग समाप्त करके आरम्भ करना चाहिये।

३—सप्ताह में एक दिन ऐसा रखना चाहिये जिस दिन पिछला सब दोहरा लिया जावे ताकि याद किया हुआ भूल न जावे।

४—सूत्र विभाग में उच्चारण की ओर विशेष ध्यान रखना चाहिये।

आपका बन्धु—

भागमल शर्मा

भजन ।

श्री जिन स्वामी अंतर्यामी कृपा करो इस बार ।
लगादो भवसागर से पार ॥ अंचली ।

१ तुम बिन मेरा कौन सहाई इस भवसागर माह ।
पार करो नर नैया मेरी डूब रही मझधार ॥

२ अर्ज करत हूँ सुनो मध्मना ह प्रभु दीन दयाल ।
लाख चौरासी में फिर फिर हारा, जन्म मरण दुःख टार ॥

३ अनादि काल से भ्रमता फिरत हूँ पाये हैं दुःख अपार ।
अबतो लीजो खबर हमारी अब तुम सागर हार ॥

४ चिन्तामणि है नाम तुम्हारा अरु जगत पति नाथ ।
चिन्ता मिटादो मुझ सेवक की, अर्ज है बारम्बार ॥

५ तुम बिन तारक और नहीं है जय प्रभु पारश नाथ ।
सीमचन्द लाल है दास तुम्हारा अब क्यों लगाई बार ॥

नोट —यह भजन हर रोज पढ़ने से पहिले गाना चाहिये ।

विषय सूची।

१—नीति बोध विभाग — पृष्ठ

२—सामान्य ज्ञान विभाग —

३—सूत्र विभाग —

४—काव्य विभाग —

* श्री वीतरागाय नमः *

श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावली

पहिला भाग

नीति बोध विभाग



[१]

देव दर्शन ।

मन्दिर, दर्शन ।

बालक—पिता जी ! आप कहां जा रहे हैं ?

पिता—मैं मन्दिर जी में जा रहा हूं ।

बा०—आप वहां किस लिये जा रहे हैं ?

पि०—मैं वहां दर्शन करने के लिये जा रहा हूं ।

बा०—आप किसके दर्शन करने के लिये जा रहे हैं ?

पि०—यह मैं तुझे वहां बताऊंगा ।

बा०—तो पिता जी ! क्या आप मुझे वहां ले जाओगे ?

पि०—हां ! क्यों नहीं ! यदि तू आवे तो तुझे रोज ले जाया करूंगा ।

---

[१]

देव गुरु

भगवान, मूर्त्ति, मस्तक, प्रणाम।

बालक—माता जी ! यह क्या है ?

माता—यह भगवान की मूर्ति है।

बा०—भगवान् किसे कहते हैं ?

मा०—अपने सब का भगवान कहते हैं।

बा०—मैं प्रणाम कैसे करूं ?

मा०—दोनों हाथ जोड़ कर जैसे मैं मस्तक नमाती हूं वैसे तू भी नमा और चरणों में पड़।

बा०—ठीक है। माता जी मैं भी चरणों में पड़ूं ?

मा०—हां बच्चा ! इस प्रकार रोज भगवान् के चरणों में पड़ना चाहिये।

बा०—(दूसरी तरफ इशारा कर) यह कौन आ रहे हैं ?

मा०—यह हमारे धर्म की रक्षा करने वाले गुरु हैं।

---

[३]

गुरु महाराज का स्वागत ।

स्वागत

विनय चन्द—भाई धर्म चन्द ! यह क्या है?

धर्म चन्द—यह जलूस है ।

वि० च०—यह जलूस कहां जा रहा है ?

ध० च०—यह जलूस अपने गुरु महाराज को लेने के लिये जा रहा है ।

वि० च०—चलो भाई ! हम भी इन के साथ चलें ।

ध० च०—हां भाई ! ज़रूर जाना चाहिये ।

वि० च०—यह इतने मनुष्य क्या कर रहे हैं ?

ध० च०—यह गुरु महाराज के चरणों में पड़रहे हैं । चलो, हम भी इनके चरणों में पड़ें ।

वि० च०—भाई ! गुरु जी अब यहां से कहां जायेंगे ?

ध० च०—थोड़े दिन यहां रह कर फिर दूसरे ग्राम में जायेंगे ।

[४]

जैनशाला ।

धर्म, पुस्तक

प्रश्न–अरे भाई ! तुम कहां जा रहे हो ?
उत्तर–भाई ! मैं पढ़ने के लिये जा रहा हूं।
प्र०—पढ़ने के लिये कहां जा रहे हो ?
उ०—मैं जैन शाला में जा रहा हूं।
प्र०—वहां तू क्या पढ़ेगा ?
उ०—मैं वहां धर्म पुस्तक पढूंगा ।
प्र०—क्या मैं तुम्हारे साथ पढ़ने आऊं ?
उ०—हां ! तू मेरे साथ पढ़ने के लिये चल !
प्र०—वहां पढ़ने के लिये जाऊंगा तो मुझे क्या मिलेगा ?
उ०—भाई ! तू पढ़ने के लिये आयगा तो इनाम मिलेगा ।

---

[५]

शिक्षा ।

प्रातःकाल, शिक्षा ।

प्रश्न–आप के हाथ में क्या है ?
उत्तर–यह पुस्तक है ।

प्र०—यह किस की पुस्तक है ?

उ०—यह मेरी बहन की पुस्तक है।

प्र०—यह पुस्तक मुझे देदो।

उ०—यदि तुम हर रोज़ पढ़ने के लिये आवो तो दे दूगा।

प्र०—इस पुस्तक मे क्या लिखा है ?

उ०—इस मे अच्छी अच्छी बातें लिखी हैं।

प्र०—अच्छी अच्छी बातें किन्हें कहते हैं ?

उ०—सुनो ! मैं तुम्हें बताता हू।

प्रात काल जल्दी उठना। माता पिता को नमस्कार करना। मंदिर जी मे दर्शन करने के लिये जाना। हर रोज़ पाठशाला में पढ़न के लिये जाना। सब बालक बालिकाओ से हित करना।

प्र०—यह तो बड़ी उत्तम शिक्षा है। मैं हर रोज़ पढ़ने के लिये आऊगा।

प्रात काल=सवेरे। हित=प्यार। उत्तम=अच्छी। शिक्षा=सीख। नमस्कार=प्रणाम।

अभ्यास—इन अच्छी बातों को याद करो।

[६]

परीक्षा।

विनय, आज्ञा, विद्याभ्यास, दुःख, प्रसन्न।

पिता—क्या तू रोज पाठशाला में जाता है ?

पुत्र—हां पिता जी ! मैं रोज़ रोज़ जाता हूं।

पि०—वहां तू क्या सीखता है ?

पु०—वहां मैं धर्म के विषय सीखता हूं।

पि०—ठीक, धर्म क्या है ? क्या तू जानता है ?

पु०—हां पिता जी ! कुछ कुछ जानता हूं।

पि०—जो कुछ तू जानता है, बता।

पु०—सुनो जी ! मैं कहता हूं।

" माता पिता की आज्ञा में रहना। विद्याभ्यास करना। बुरे बालकों का संग नहीं करना। सत्य बोलना। मालिक के दिये बिना कोई चीज़ नहीं उठानी। गरीबों पर दया करना। किसी जीव को दुःख नहीं देना। सब को आराम से बुलाना। दूसरे को सुखी देख कर प्रसन्न होना। किसी को गाली नहीं देनी। गुरु के सामने नहीं बोलना। उनके चरणों में पड़ना और उनके कहने में रहना जो कुछ वह कहें वही करना। ऐसे ऐसे और बहुत धर्म हैं।

पि०—प्रिय ! तू बहुत अच्छा पढा है ।

(पालक यह सुन कर बड़ा प्रसन्न हुआ)

धर्म के विषय=धर्म की बातें । आज्ञा=कहना ।
विद्याभ्यास करना=विद्या पढ़ना ।
संग=मेल । प्रसन्न=खुश ।

अभ्यास-बालक ने पिता को क्या धर्म बताया ?

---

[७]

दो विद्यार्थी ।

विद्यार्थी, अध्यापक, नीति, परन्तु ।

हरि चन्द—भाई धर्मचन्द ! तुम सलेट और पुस्तक लिये कहां जा रहे हो ?

ध० च०—मैं तो पाठशाला में जा रहा हूं ।

ह० च०—वहां तुम क्या सीखते हो ?

ध० च०—हमारे अध्यापक बड़े अच्छे हैं । उन्होंने हमें देव, गुरु और धर्म किसे कहते हैं—यह समझा दिया है ।

ह० च०—अब क्या सिखायेंगे ?

ध० च०—अब वह हमें नीति-विषय सिखायेंगे ।

ह० च०—नीति किसे कहते हैं ?

शिक्षक—तुम्हारी माता तुम पर कैसा हित करती है ?

लड़के—हमारी माता हम पर बड़ा हित करती है। प्रातःकाल हमें नहला धुला कर कपड़े पहनाती है ध्यान रखती है, फिर पाठशाला में भेजती है और सायंकाल में ठीक समय पर खिला पिला कर, अच्छी अच्छी बातें सिखाती है और बिछौने पर सुला देती है।

शिक्षक—बहुत अच्छा ! तुम्हारी माता तुम्हें नहलाती है, खिलाती है, सुलाती है, और तुम्हारे साथ स्नेह करती है। परन्तु बताओ तो सही तुम उस के लिए क्या करते हो ?

लड़के—हम तो कुछ भी नहीं करते।

शिक्षक—प्यारे बालको ! यह तुम्हारी बड़ी भूल है। तुम्हें उचित यह है कि प्रातःकाल उठ कर पहले अपनी माता जी को नमस्कार करो और वह जो शिक्षा दे उस पर चलो।

लड़के—बहुत अच्छा जी।

दोहा—माता का हित जान के बहुत करो सन्मान।
माता का मन खुश करो बढ़ता उस का मान॥

सायंकाल=शाम। स्नेह=हित, प्यार। सन्मान=मान, आदर।

अभ्यास—१ माता हमारे साथ कैसा बर्ताव करती है ?
२ उस के लिये हमें क्या करना चाहिये ?
३ दोहे को याद करो।

[१०]

पिता ।

ब्योपार, वस्त्र, इत्यादि, सत्य, चिन्ता, यत्ना ।

शिक्षक—यह नई पुस्तक तुम्हें किस ने ले के दी ?

बालक—मेरे पिता जी ने ले के दी ।

शि०—तुम्हारे पिता अब कहां हैं ?

बा०—पिता जी दुकान पर हैं।

शि०—वहां वह क्या करते हैं ?

बा०—ब्योपार करते हैं ।

शि०—ब्योपार किस लिये करते हैं ?

बा०—पैसे कमाने के लिये ।

शि०—पैसा कमा कर वह क्या करेंगे ?

बा०—पैसे से हमारे लिये भोजन, वस्त्र ... स्लेट, पेंसिल इत्यादि लावेंगे।

शि०—ठीक ! यह बताओ कि तुम्हारे लिये ... पैसा कहां है ?

बा०—पिता जी बड़े हैं। पैसा ... नहीं सकता।

शि०—तुम सत्य कहते हो। ... कमाता है ... पिता ही बड़ा ... परन्तु तुम्हारा ... तुम्हारी चिन्ता ... है नहीं ?

बा०—पिता जी मेरे लिए बड़ी चिन्ता करते हैं।

शि०—तो इस का कुछ बदला तुम्हें भी देना चाहिये या नहीं?

बा०—देना तो चाहिये। परन्तु किस प्रकार देना चाहिये यह मैं नहीं जानता।

शि०—लो सुनो। बालकों को सदा पिता की आज्ञा माननी चाहिये, उनका मान करना चाहिये, और उनको प्रसन्न रखना चाहिये।

दोहा—नमन पिता के चरणों में नित उठ प्रात काल।
करिये, कहना मानिये, यही भलों की चाल॥

व्योपार=चीज़ें खरीदना और बेचना। द्रव्य=रुपये।
सत्य=सच। चिन्ता=फ़िकर। नमन=नमस्कार। नित=सदा।

अभ्यास-१ पिता हमारे लिये क्या करते हैं? उस के बदले में हमें क्या करना उचित है?
२ दोहा याद करो।

---

[११]
भाई बहिन।

महाशय, देखो।

शिक्षक—जिनदास! आज तुम्हारे साथ यह दूसरे कौन आये हैं?

जिनदास—यह मेरे छोटे भाई बहन हैं।

शिक्षक—इन को यहां किस लिये लाये हो?

जिनदास—जी! मैं इन्हें पाठशाला दिखाने के लिये ले आया हूं।

शिक्षक—पाठशाला आते समय तुम्हारी माता जी तुम्हें क्या कहा करती हैं ?

जिनदास—वह मुझे शिक्षा दिया करती हैं ।

शिक्षक—क्या शिक्षा दिया करती हैं ?

जिनदास—यह कहा करती हैं कि तुम भाई बहन रस्ते मे किसी से मत लड़ना झगड़ना, और पाठशाला में जाकर दिल लगा कर पढ़ना ।

शिक्षक— यह शिक्षा तुम्हें माननी चाहिये कि नहीं ?

जिनदास—ज़रूर माननी चाहिये जी ! इस से पहिले पाठ में मैंने पढ़ा है कि बालकों को माता पिता की शिक्षा माननी चाहिये ।

शिक्षक—तो क्या आज तुमने उनकी आज्ञा का पालन किया ?

जिनदास—नाजी । यह मेरा भाई मगन रस्त में दो बार रोया और दंगा करने लगा ।

शिक्षक—जाने दो । यह नादान है इसलिये रोता है । हमें इसे समझाना चाहिये । अपने छोटे भाई बहनों को हमें प्रसन्न रखना चाहिये, उन्हें मारना नहीं चाहिये, उनसे हित करना चाहिये और उनके साथ हिल मिल कर काम करना चाहिये ।

जिनदास—बहुत अच्छा जी ! आज से हम ऐसे ही किया करेंगे ।

दोहा—मात पिता को खुश रखो, माना उन की बात।
भाई बहन से हिल मिलो, पढ़ो, लिखो, दिन रात॥

आज्ञा पालन करना=कहना मानना। दंगा=लड़ाई, झगड़ा।
नादान=नासमझ।

अभ्यास—१ माता ने किशन को क्या शिक्षा दी?
२ हम अपने छोटे भाई बहिनों से कैसा बर्ताव करना चाहिए?
३ दोहा याद करो।

---

[१७]

बन्धु।

बन्धु धनवान्, सहायता समान।

"सुन्दरलाल! तुम्हारी मा का भाई तुम्हारा क्या लगता है?"
"मामा जी।"
"और चचा किसे कहते हैं?"
"मेरे बाप का भाई"
"तुम्हारे बाप की बहन को क्या कहते हैं?"
"बुआ या फूफी"
"तुम्हारा चचा कहां है?
"वह अपने घर है।"
"तुम्हारी बुआ कहां रहती है?"
"वह यहां हमारे ही घर रहती है, क्योंकि वह अकेली और गरीब है"।

"तुम्हारा चचा धनवान है या गरीब ?"

"वह गरीब है।"

"तुम्हारा बाप उन की कुछ सहायता करता है या नहीं ?"

"मेरा पिता उन की बड़ी सहायता करता है और मेरी बुआ तो मुझ से बड़ा प्यार करती है।"

"प्यारे सुन्दरलाल ! तुम्हारा बाप अपने गरीब बन्धुओं की सहायता करता है—यह तुम्हें अच्छा लगता है कि नहीं ?"

"मुझे तो बहुत अच्छा लगता है।"

"प्यारे बालको ! अपने गरीब बन्धुओं की अपने से जितना हो सब सहायता करनी चाहिये। जब तुम अपने बाप के समान बड़े हो जाओ तो अपने गरीब बन्धुओं की सहायता करो। गरीबों पर दया करना यह सब से अच्छा काम है।"

दोहा—मात पिता भाई बहन बन्धु गरीब तमाम।
इन को सुख दीजे सदा सब में उत्तम काम॥

बन्धु=सगे। धनवान=धनवाले, अमीर। सहायता=मदद। समान=जैसे।

अभ्यास-हम अपने बन्धुओं के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये ?

[१३]

पड़ोसी।

बर्ताव, हँसमुख, प्रेम।

"बालको! तुम्हारे घर के साथ वाले घर में जो रहता है-उसे तुम क्या कहते हो?"

"वह हमारा पड़ोसी कहलाता है।"

"और वह तुम्हें क्या कहेगा?"

"वह हमें अपना पड़ोसी कहेगा।"

"अच्छा! यदि तुम्हारा पड़ोसी ऐसा हो कि वह तुम्हारे साथ न कभी लड़े, न कभी तुम्हें गाली दे, हँस कर बोले, और तुम्हारी सहायता करे। तो वह तुम्हें अच्छा लगेगा या नहीं?"

"क्यों नहीं जी! वह हमें बहुत अच्छा लगेगा। हमें क्या, सब को ही अच्छा लगेगा।"

"प्यारे बालको! क्या तुम्हें यह भी पता है कि अपने पड़ोसी के साथ तुम्हें कैसा बर्ताव करना चाहिए?"

"नहीं जी।"

"सुनो! यह तो तुम जानते हो कि जो अच्छा आदमी होगा वह हम को अच्छा लगेगा और यदि हम अच्छे होंगे तो दूसरों को अच्छे लगेंगे।"

"जी हां।"

" इस लिये अपने पड़ौसी के साथ हमें अच्छा वर्ताव करना चाहिये। उनके साथ लड़ाई झगड़ा नहीं करना चाहिये। इन्हें गाली नहीं देनी चाहिये। हसमुख रहना चाहिये। एक दूसरे की सहायता करनी चाहिये। और उन से प्रेम, प्रीति करनी चाहिये। इस प्रकार सब तुम से प्रसन्न रहेंगे।"

दोहा—लड़ना भिड़ना छोड़ दो, सुख चाहो जो मीत।
करो पड़ौसी की सदा, मदद, मान, और प्रीत॥

हसमुख=प्रसन्न मुख वाला। प्रेम=प्यार।

अभ्यास -१ पड़ौसी किसे कहते हैं?
२ उन के साथ हमें कैसा वर्ताव करना चाहिये?
३ हमें कैसे मनुष्य प्यारे लगते हैं?

---

[१८]

मित्र या संगी।

मित्र, दुःख, सुख, कृपा।

शिक्षक—"बालको! तुम्हारे कितने मित्र हैं?"
बालक—"मित्र किसे कहते हैं?"
शि०—तुम्हारे साथ खेलनेवाला, और तुम्हारे साथ पढ़ने वाला, उसे मित्र या संगी कहते हैं।"
बा०—"ऐसे तो हमारे बहुत मित्र हैं?"

शि०—तुम्हें किस प्रकार के बालकों का संग करना चाहिये क्या तुम यह भी जानते हो ?"

बा०—"ना जी"

शि०—सुनो ! जो बालक एक दूसरे से सदा प्रेम करें, सुख दुःख में साथ रहें, एक दूसरे को जो कुछ न आता हो बतावें, सच बोलें, गरीबों पर दया करें, ठगा न करें और अच्छे अच्छे काम करें उनका संग करना चाहिये ।

बा०—मास्टर जी ! हमें अच्छे मित्र कैसे मिलें ?

शि०—तुम आप अच्छे बन जाओ । जो भी अच्छे बालक होंगे वे तुम्हारे साथ आपही मेल मिलाप करेंगे । परन्तु यह तो बताओ, उनके साथ तुम्हें कैसा बर्ताव करना चाहिये ।

बा०—जी ! हम नहीं जानते। कृपा करके हमें यह भी बताइये ।

शि०—किसी के साथ वैर नहीं करना चाहिये । किसी की चुगली नहीं करनी चाहिये और नाही किसी को बुरा कहना चाहिये ।

दोहा—मित्र वही सुख दुःख में, रहे जो अपने संग ।
तन छाया ज्यूं धूप में, रहे साथ इक रंग ॥

कृपा=दया । चुगली=एक के दोष दूसरे के पास कहना ।

अभ्यास-१ मित्र किसे कहते हैं ?
२ हमें कैसे बालकों के साथ मित्रता करनी चाहिये ?
३ उनके साथ हमें कैसा बर्ताव करना चाहिये ?

---

[१५]

नौकर चाकर।

मनुष्य, भेद, तुच्छ, निरादर, अपराध।

नेमदास—रत्न चन्द ! क्या तुम्हारे घर में नौकर चाकर हैं ?

रत्नचन्द—हां जी ! एक रसोइया है, एक नौकर है और एक दूसरा मनुष्य है जो मुझे पाठशाला में ले जाता है।

नेमदास—इनके साथ हमें कैसा वर्ताव करना चाहिये क्या तुम जानते हो ?

रत्नचन्द—नहीं जी। आप समझादें।

नेमदास—पहिले मैं यह पूछता हूं कि हम तुम कौन हैं ?

रत्नचन्द—हम तुम मनुष्य हैं।

नेमदास—नौकर चाकर कौन हैं ?

रत्नचंद—वह भी मनुष्य हैं।

नेमदास—तो फिर उन में और हम में क्या भेद है ?

रत्नचंद—कुछ नहीं।

नेमदास—यदि कोई दूसरा मनुष्य हमें तुच्छ समझकर हमारे साथ बुरा वर्ताव करे तो हमें कैसा मालूम देगा ?

रत्नचंद—बहुत बुरा !

नेमदास—इसी प्रकार यदि हम अपने नौकरों से बुरा वर्ताव करें तो वह उन को कैसा लगेगा ?

रत्नचंद—बुरा ही लगेगा।

रामदास—तो अब मैं तुम्हें बताता हूं कि हमें अपने नौकर चाकरों से कैसा वर्ताव करना चाहिये। सुनो! उनको तुच्छ समझकर उनका निरादर नहीं करना चाहिये। छोटी२ बातों पर उनको बुरा नहीं कहना चाहिये। उनका मन दुखाने के लिये उन्हें चिड़ाना नहीं चाहिये। यदि उनसे कोई अपराध हो जाय या कोई काम बिगड़ जाय तो सहज में समझा देना चाहिये या अपने माता पिता से कह देना चाहिये।

दोहा—मात पिता का यश सदा, चाकर गाय विशेष।
मीठा उन से बोलिये, रखिये सुखी हमेश॥

मनुष्य=आदमी। विशेष=खासकर, बहुत। भेद=फ़रक़। हमेश=सदा। तुच्छ=नीच। हलका=छोटा। निरादर=अपमान। अपराध=कसूर, बिगाड़। नौकर चाकर=सेवा करने वाले।

अभ्यास-१ हम में और नौकर चाकरों में क्या भेद है?
२ वह हम से कैसा वर्ताव कराना चाहते हैं?

---

[१६]

गरीबों पर दया।

तुलसा।

" बालको! इस सड़क पर तुम क्या देखते हो?"

" एक अंधा है और कोई आदमी उसको पकड़ कर रास्ता दिखा-

रहा है। यह बहरा दीवाना है, वह लूला है, वह लंगड़ा है, और वह बीमार है।

"इन को देखकर तुम्हें दुःख होता है या नहीं?"

"क्यों नहीं जी! हमें तो बड़ा दुःख होता है।"

"अच्छा यदि इनकी मदद करें तो तुम्हें भला लगेगा या बुरा?"

"यह तो किसी को भी बुरा न लगेगा। इसे तो सभी अच्छा समझेंगे।"

"इन को दुःखी देखकर हमारे मन में इन की मदद करने का जो विचार उठता है उसे दया कहते हैं।"

"महाशय जी! इन पर कैसे दया करनी चाहिये।"

"इनकी हंसी न करके, यदि यह रास्ता पूछें तो रास्ता बता कर, और यदि यह भूखे प्यासे हों तो अपने माता पिता की आज्ञा से इनको भोजन आदि देकर इन पर दया करनी चाहिये।"

"परन्तु हमारे पिता जी तो यह कहते थे कि इनको पढ़ा लिखा कर कामधंधे में लगाना चाहिये?"

"हां यह भी ठीक है। परन्तु अब तुम बड़े हो जाओगे तो तुम्हें ऐसा ही करना चाहिये।"

दोहा—दया दीन पर कीजिये, हरिये उन की पीर।
औषध उनको दीजिये, जिनके रोग शरीर॥

हरिये=दूर करिये। पीर=पीड़ा, दुःख। औषध=दवाई।
लूला=[illegible] हाथ टूटा हुआ हो। रोग=बीमारी।

अभ्यास-१ दीन दुखियों को देखकर हमारे मन में क्या विचार उठता है ?
२ हमें उन पर क्या दया करनी चाहिये ?

---

[१७]

गुरु ।

जन्म ।

"बालको ! तुम्हारा गुरु कौन है ? "

"मास्टर जी ! गुरु किसे कहते हैं ? "

"जो सिखावे, कोई बात सिखावे उसे गुरु कहते हैं । "

"तो बस ! आप ही हमारे गुरु हैं । "

"क्या तुम्हारे माता पिता तुम्हारे गुरु नहीं हैं ? "

"नहीं जी ! वे तो हमारे माता पिता हैं। गुरु कैसे ?"

"सुनो ! जब तुमने जन्म लिया था तब तुम्हें रोना ही आता था । और अब तुम खाना, पीना, वस्त्र पहिनना, हँसना बोलना सब कुछ जानते हो । यह तुम्हें किसने सिखाया ? "

"हमारे माता, पिता, और बड़े भाई बहिनों ने । "

"मैंने तुम्हें लिखना पढ़ना सिखाया, इस लिये मैं तुम्हारा गुरु हुआ । परन्तु जिन्होंने तुम्हें इतनी बातें सिखाईं क्या वे तुम्हारे गुरु नहीं ?"

"तो क्या यह सब हमारे गुरु हैं ? "

" हां ! यह सब तुम्हारे गुरु हैं । इन में पहला गुरु, तुम्हारी माता, दूसरा पिता, तीसरे तुम्हारे भाई बहिन हैं । चौथा गुरु तुम्हारा विद्या-गुरु है और पांचवां धर्म-गुरु ॥

दोहा—मात, पिता, भाई बहन, शिक्षा देवन हार ।
धर्म गुरु गुरु पांच यह, जान मन समार ॥

विद्या-गुरु=विद्या सिखानेवाला ।
धर्म-गुरु=धर्म सिखानेवाला ।
विद्या देवन हार—शिक्षा देने वाला, शिक्षक ।

अभ्यास-१ संसार में कितने गुरु होते हैं ?
२ माता, पिता को गुरु क्यों कहते हैं ?
३ विद्या-गुरु और धर्म गुरु में क्या भेद है ?

---

[१८]
हमारे पूज्य ।

पूज्य, श्रीमान्, अर्थ, अर्थात्, उपकार ।

" बालको ! जो अपने से बड़ा होता है वह अपना पूज्य होता है।"

" श्रीमान् जी ! पूज्य-इस का क्या अर्थ है ? "

" अपने से बड़ा समझ कर जिस की हम पूजा करें उसे पूज्य कहते हैं । "

" पूजा करना—इस का क्या मतलब है ? "

" पूजा करना अर्थात् उस का मान करना, उसकी सेवा करनी, उस को नमस्कार करना और उस की आज्ञा में रहना । "

" समझ गये ! परन्तु हमें पूज्य किन को समझना चाहिये ।"

" पिछले पाठ में जिन को तुम ने गुरु कहा है उन्हें ही पूज्य समझना चाहिये । उनका सदा मान करना चाहिये, उन की सेवा करनी चाहिये उनको प्रणाम करना चाहिये, और उनकी आज्ञा का पालन करना चाहिये । "

" श्रीमन् जी ! इन को छोड़ कर कोई और भी पूज्य है ? "

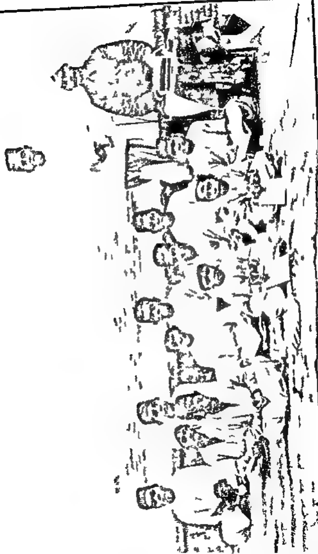
" हां अपना बन्धु जो अपने से बड़ा हो, वह भी पूज्य है और जिस किसी ने हम पर कोई उपकार किया हो या हमें कोई शिक्षा दी हो वह सब अपने पूज्य हैं । "

" तो क्या भगवान् भी हमारे पूज्य हैं कि नहीं ? "

" वाह ! क्या नहीं ! भगवान् तो सब से पहिले पूज्य हैं । परन्तु उन की बाबत हम तुम्हें आगे आकर बतावेंगे । "

अर्थ=मतलब । अर्थात्=यानी ।

अभ्यास १ हमारे लिये पूज्य कौन है ?
२ हमें उन की किस प्रकार पूजा करनी चाहिये ?



[१६]

पाठशाला ।

द्वारा, ज्ञान, विद्यार्थी, अक्षर ।

" यह किसका चित्र है ? "

" यह पाठशाला है "

" तुम पाठशाला में किस लिये आते हो ? "

" मैं पाठशाला मे पढ़ने के लिये आता हूं । "

" क्या पढ़ने के लिये आते हो ? "

" विद्या पढ़ने के लिये आता हूं । "

" विद्या किसे कहते हैं ? "

" यह तो मैं नहीं जानता परन्तु मेरी माता जी कहा करती हैं कि तू पाठशाला जा और विद्या पढ़ । "

" सुनो ! जिस के द्वारा हर एक बात की समझ या ज्ञान हो, वह विद्या होती है । "

" ठीक ! इस चित्र में बालकों के हाथ में क्या है ?

" पुस्तक है । "

" उस पर क्या लिखा है ? "

" विद्यार्थी का नाम । "

" विद्यार्थी किसे कहते हैं ? "

" विद्या पढ़ने के लिये जो पाठशाला में आवे उसे विद्यार्थी कहते हैं । "

[२०]

वाटिका या बग़ीचा।

वाटिका, वृक्ष।

यशवंत—बलवंत! आज छुट्टी का दिन है। चलो आज वाटिका में चलें।

बलवंत—बहुत अच्छा। वहां तो बड़ा देखने के लिये अच्छी २ चीज़ें होंगी और दूसरे शीतल पवन में फिर कर चित्त प्रसन्न होगा।

यशवंत—बलवंत! देखो यह वाटिका कैसी साफ है? बीच में ऊंचा मंदिर कैसा शोभा दे रहा है। एक ऊंचस और बराबर दूरी पर लगाये हुये वृक्ष कैसे भले लगते हैं।

बलवंत—हां भाई! यह तो बड़ी सुन्दर वाटिका है।

यशवंत—वाटिका तो देखली! परन्तु चलो हम आम के वृक्ष के नीचे छाया में बैठें। यहां पासही गुलाब और चंपा की क्यारियां हैं और उनमें से भीनी भीनी सुगंध आरही है।

बलवंत—भाई जी! इस आम पर तो बौर आया हुवा है।

यशवंत—हां। देखो कैसा लद रहा है। थोड़े दिनों में यह सब बौर आम (फल) बन जायगा। और लोग इन्हें खुशी २ मोल लेकर खायगे।



यशवंत—आम का वृक्ष तो बड़े काम का वृक्ष है।

यशवंत—हां ! इसकी लकड़ी, पत्ते, फल सभी काम में आते हैं। और इसका फल बड़ा मीठा होता है। इसी प्रकार हमें तुम्हें भी विद्या पढ़कर, अच्छे २ काम करके अपने माता, पिता और दूसरे बंधुओं को प्रसन्न करना चाहिये। और इस वृक्ष की तरह लोगों को सुख देना चाहिये।

शीतल=ठंडी। पवन=हवा। बौर=फल आने से पहिले जो आम के वृक्ष पर बौर आता है। भीनी भीनी=मन को प्रसन्न करने वाली।

---

[२१]

प्रभात।

सूर्य, उदय, सूर्योदय, प्रकाश, स्वप्न, बुद्धि।

गोपाल—भाई कृष्ण ! तुम किस समय सोते उठा करते हो ? सूर्य के निकलने से पहिले या पीछे ?

कृष्ण—प्राय उठता तो सूर्य के उदय होने से पहिले ही हूं परन्तु कई बार सूर्य के पीछे भी उठता हूं।

गोपाल—सूर्योदय से पहिले जो प्रकाश होता है उस समय को क्या कहते हैं ?

कृष्ण—दिन।

गोपाल—नहीं। दिन तो सूर्योदय के पीछे होता है। सूर्योदय से पहिले समय को प्रभात कहते हैं। और यह सब से उत्तम समय है।

कृष्ण—सब से उत्तम समय किस लिये है? (सामने से राम, सोहन, और मोहन आये)।

सोहन—सवेरे मन को शुभ ध्यान के लिये यही है। इस लिये सवेरा उत्तम समय है।

मोहन—यह नहीं! सवेरे अन्धकार दूर होकर खूब उजाला हो जाता है इस लिये सवेरे का समय उत्तम है।

राम—यह भी ठीक नहीं! मैं बताता हूं प्रभात का समय अच्छा है। क्योंकि उस समय जो विद्या पढ़ी जाती है वह भली भांति याद हो जाती है।

गोपाल—राम का उत्तर ठीक है। प्रभात में उठने से बड़े लाभ हैं—उस समय पढ़ने से विद्या ठीक याद हो जाती है। शरीर अच्छा रहता है और जिस काम में हाथ डाला जाये वह काम जल्दी हो जाता है।

तीनों बालक—ठीक! आज से हम प्रभात में ही उठा करेंगे

सवेरे ही उठेगा जो आदमी,
रहेगा वह दिन भर हँसी और खुशी।
न आयेगी सुस्ती कभी नाम को,
करेगा खुशी से वह हर काम को॥

उठ प्रभात में नित प्रति करिये प्रभु का ध्यान।
जिस से सुख सम्पत बढ़े धन बुद्धि अरु ज्ञान॥

सूर्योदय=सूरज का निकलना। प्रकाश=उजाला।
सम्पत=धन, दौलत। बुद्धि=अकल। ज्ञान=समझ।

---

[२०]

पक्षी।

प्रदर्शिनी, वस्तुएँ, अपराध।

यशवंत—"बलवंत! उस दिन हम बगीचे में गये थे आज हम पक्षियों की प्रदर्शिनी देखने के लिये चलेंगे।

बलवंत—भाई जी! प्रदर्शिनी किसे कहते हैं?

यशवंत—जिस जगह बहुतसी वस्तुएँ इकट्ठी करके लोगों को दिखाने के लिये रक्खी हों उसे प्रदर्शिनी कहते हैं। जहाँ पक्षी दिखाये जावें वह पक्षियों की प्रदर्शिनी।

बलवंत—चलो चलें।

यशवंत—बलवंत, क्या तुम जानते हो। इस पिंजरे में कौनसे पक्षी हैं?

बलवंत—जीहां ! मैं इन सब को जानता हूं। यह तोता है, वह मैना है, यह कबूतर, वह कुक्कड़ (मुर्ग) और वह कोयल है। बस पिंजरे में काग और बुगला है।

यशवंत—इन्हों ने क्या अपराध किया है जो इन्हें पिंजरे में बंद कर रखा है ?

बलवंत—यह तो बड़े ग़रीब पक्षी है। इन बिचारों ने तो कोई अपराध नहीं किया। बिना अपराध बिचारों को पकड़ कर पिंजरों में बंद कर दिया है।

यशवंत—यदि इसी तरह तुम्हें पिंजरे में बंद कर दिया जावे तो तुम अच्छा समझोगे ?

बलवंत—कदापि नहीं। मुझे तो बहुत दुःख होगा।

यशवंत—यह पक्षी सारा दिन रात पिंजरों में बंद रहते हैं क्या इन्हें दुःख नहीं होता ?

बलवंत—ज़रूर होता होगा, पर बिचारे कह नहीं सकते।

यशवंत—तो क्या इन ग़रीब पक्षियों को पिंजरों में बंद कर दुःख देना उचित है ?

बलवंत—कभी नहीं।

यशवंत—इस लिये प्यारे बलवंत ! हम इन दीन पक्षियों को कभी दुःख न देना चाहिये। किन्तु इन पर दया करनी चाहिये। इन के घोंसले नहीं तोड़ने चाहियें। इन को पिंजरों में बन्द नहीं करना चाहिये। इन को पत्थर

मार कर, इनके पर खैंच कर इन्हें कष्ट नहीं देना चाहिये ।

बलवन्त—जी हां, समझ गया । आज से मैं किसी भी पक्षी को किसी भी तरह दुःख न दूंगा । और यदि कोई ऐसा करता होगा तो उसे रोकूंगा और शिक्षा दूंगा ।

---

[२३]

पालतू पशु ।

गुणकारी ।

शिक्षक—प्यारे बालको इस चित्र में तुम क्या देखते हो ?

बालक—इस चित्र में गौ, भैंस, बैल, बकरा, घोड़ा, हाथी, ऊंट और गधा है । परन्तु यह तो बतावें कि सब से आगे गौ क्यों है ?

शिक्षक—तुम जानते हो गौ इन सब पशुओं से बढ़ कर हमें लाभ पहुंचाती है । यह हमें दूध देती है । इसका दूध बड़ा गुणकारी होता है । छोटे छोटे बच्चों को पिलाते हैं और वह माता के दूध की तरह उनको लाभ देता है । इस लिये हम इसे गौ माता भी कहते हैं । इस के बछड़े हल जोतते हैं और बोझा ढोते हैं ।

बालक—परन्तु दूसरे पशु किस काम आते हैं ?

शिक्षक—सुनो ! भैंस दूध देती है, बैल और भैंसे खेती करने के काम आते हैं, बकरी और भेड़ भी दूध देती हैं। भेड़ों से ऊन मिलती है। घोड़ा, हाथी, ऊंट और गधे सवारी और भार उठाने के काम आते हैं। इस प्रकार यह सब पशु हमारे काम आते हैं इस लिये हमें इन पशुओं को सदा सुखी रखना चाहिये। इन्हें और इन के बच्चों को दुःख नहीं देना चाहिये। इसलिये इनके साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये क्या तुम जानते हो ?

बालक—कृपा करके आप समझा दें।

शिक्षक—याद रक्खो ! जिस प्रकार हमारे अन्दर जीव है इस प्रकार इन सब में जीव है। इस लिये किसी भी जीव को सताना और दुःख देना बड़ा बुरा काम है। हम इन पर दया करनी चाहिये। इन को भूखा नहीं रखना चाहिये। इन पर बहुत बोझ नहीं लादना चाहिये। हांकते हुये इन को मारना नहीं चाहिये। इन के बच्चों को पेट भर दूध पिलाना चाहिये और यदि यह बीमार हों तो इन की सेवा करनी चाहिये।

बालक—समझ गये जी। आज से हम ऐसा ही करेंगे।

[२४]

जंगली पशु।

भयकर, हानि, अज्ञानी, पत्थर।

शिक्षक—बालको ! क्या तुमने जगली पशु देखे हैं ?

एक लड़का—हां जी। मैं लाहौर गया था तब मैंने चिड़िया घर में शेर, गैंडा, बारह सिंगा और बहुत से जगली पशु देखे थे।

दूसरा लड़का—श्रीमान् जी ! बन्दर, हिरण और ससा तो देखा है परन्तु और पशु नहीं देखे।

तीसरा लड़का—कल जब मैं बाहिर सैर करने जा रहा था तब मैंने नगर के बाहर काले बाल वाले और नोकदार लम्बे मुंहवाले शूकर (सूअर) देखे थे।

चौथा लड़का—मैंने एक आदमी के पास सेह देखी थी। उसके तकले बड़े तीख़े थे।

पांचवा लड़का—मैंने तालाब में कछुवा देखा। मेरी माता जी वहां पानी भरने गई थीं तो मैं भी साथ गया था।

छटा लड़का—बारहसिंगे के तीखे, टेढे, बने सींग तो मैंने देखे हैं परन्तु बारहसिंगा नहीं देखा।

शिक्षक—बालको ! यह जगली पशु बड़े भयकर और हानि करने वाले होते हैं परन्तु जगल में रहने से हमारा

पानी ही इनका घर है ? यदि हम इनको पानी से बाहिर निकालें तो इनको दुःख होता है ।

बालक—हां जी ! यदि कोई हमें अपने घर से बाहिर निकाल दे तो हमें दुःख होता है इसी प्रकार इन्हें भी दुःख होता है।

शिक्षक—इनमें भी हमारी तरह जीव होता है । इस लिये इन्हें कभी दुःख नहीं देना चाहिये ।

दोहा—सुन बालक यह ज्ञान तू, जीव कोइ न मार ।
सब जीवों पर तू सदा करुणा दिलमें धार ॥

---

[२१]

वनस्पति ।

वनस्पति प्रभात चर्चा ।

शीतलदास—प्यारे मित्र ! चलो आज हम बागों और खेतों में सैर करने के लिये चलें ।

नेमिदास—बहुत अच्छा ।

शीतलदास—इस बाग में बड़े पेड़ हैं । यह आम का पेड़ है, यह जामन का । यह तालाब के किनारे खिरनी का पेड़ है। यह नारंग और अंगूर की बेल हैं। यह बादाम है। गुलाब की झाड़ी में पुष्प खिले हैं और बड़े सुन्दर प्रतीत होते हैं । इस खेत में हल चलरहा है। अभी

वर्षा होकर हटी है । ज़मीन गीली और नरम है । हल सुगमता से चलाया जा सकता है । हल चलाकर इस में बीज बो देंगे । आजकल गेहू, जौ, चने, सरसों और ऐसीही दूसरी चीज़ें बोई जाती हैं। यह किसान भी यही बोयगा । समय पाकर जल, वायु और धूप से यह बढ़ जायेंगी, पक जायेंगी और लोगों के काम में आयेंगी । और यह सब झाड़, पेड़ वनस्पति कहलाते हैं ।

---

[२७]

वर्षा ऋतु ।

उत्पन्न, धान्य, सफल, निकम्मा, विद्वान् ।

शीतलदास—पिछले पाठ में मैंने तुम्हें वनस्पति के विषय में कुछ बताया था । परन्तु क्या तुम जानते हो वनस्पति किस प्रकार उत्पन्न होती है ?

नेमिदास—पानी से ।

शीतलदास—पानी कहां से आता है ?

नेमिदास—वर्षा से अथवा कुओं में से ।

शीतलदास—वर्षा कब होती है ?

नेमिदास—चौमासे में ।

(२) सामान्य ज्ञान विभाग।

[१]

तीर्थंकर भगवान् (१)

आत्मा, तीर्थङ्कर, परमेश्वर, अरिहन्त, जिनेश्वर, रागद्वेष, शत्रु, मोक्ष, मुक्ति, निर्वाण, समोसरण, साधु, पुरुष, स्त्री, साध्वी, श्रावक, श्राविका साथ।

श्री आदिनाथ आदि अपने तीर्थंकर कहलाते हैं। उन की दिल से सेवा करने से हमारे इस संसार के दुःख दूर होते हैं और हमें सच्चा सुख मिलता है। तीर्थंकरों के दूसरे नाम परमेश्वर, अरिहन्त, जिनेश्वर, जिन, प्रभु और भगवान् आदि हैं।

बालक—परमेश्वर, प्रभु और भगवान् तो हम समझ गये। परन्तु अरिहन्त, जिनेश्वर, जिन, और तीर्थंकर यह नहीं समझे।

शिक्षक—कर्म रूपी शत्रु (जिनका पूरा हाल हम फिर कभी बतायेंगे) को नाश करने वाले—अरिहन्त। राग द्वेष शत्रुओं को जीतने वाले—जिनेश्वर या जिन। [illegible] तीर्थ बनाने वाले तीर्थंकर [illegible]

बालक—चार तीर्थ [illegible]

शिक्षक—सच्चा [illegible]
पहिले [illegible]
करते हैं [illegible]

हो चुकी हो, जो हो रही हों और जो आगे होने वाली हों—सब मालूम हो जाती हैं। फिर वह संसार के सब जीवों, देवों, मनुष्य, जन्तुओं, को एक स्थान पर, जिसे समोसरण कहते हैं, उपदेश देते हैं। उनका उपदेश सुनकर बहुत से मनुष्य दीक्षा ले लेते हैं—संसार छोड़ देते हैं। उन में पुरुष—साधु और स्त्रियां—साध्वी कहलाती हैं। जो मनुष्य दीक्षा न ले सकें या संसार न छोड़ सकें और घरों में रहकर ही धर्म करना चाहें उनमें पुरुष—श्रावक और स्त्रियां—श्राविका—कहलाती हैं। साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका यह चार तीर्थ हैं। क्योंकि भगवान् अपने उपदेश से इन्हें बनाते हैं इस लिये भगवान को तीर्थंकर कहते हैं।

अभ्यास —१ भगवान् को दूसरे किन नामों से याद करते हैं?

२ तीर्थंकर का क्या अर्थ है? तीर्थ कितने हैं और कैसे बनते हैं?

३ साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका का क्या मतलब है?

४ निर्वाण का क्या अर्थ है। इस के दूसरे नाम क्या हैं?

५ उस पुरुष ने दीक्षा ली—इस से क्या समझा जाता?

६ जिनेश्वर, अरिहंत और जिन क्या कहे जाते हैं?



[८]

तीर्थंकर भगवान (२)

उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी, [illegible]।

शिक्षक—बालको! तीर्थंकर शब्द का अर्थ तो तुम समझ गये। अब हम तुम्हें यह बतायेंगे कि ऐसे २४ अवतार या तीर्थंकर हर एक काल में होते हैं।

बालक—हर एक काल से आपका क्या मतलब है? काल तो समय का नाम है और वह एक ही है।

शिक्षक—हां! परन्तु उसके दो भेद हैं एक बढ़ती का—जिस में हर एक पदार्थ दिनों दिन बढ़ता है। जीवों की आयु बढ़ती है, कद बढ़ता है, सुख बढ़ता है। इस का नाम उत्सर्पिणी काल है। दूसरा घटने का काल है। उसमें हर एक जीव की आयु, कद और सुख घटते हैं। उसे अवसर्पिणी काल कहते हैं। ऐसे २ बहुत काल बीत गये और अनेक बीतेंगे। हर एक उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में २४ तीर्थंकर होते हैं।

बालक—आज कल कौनसा काल बीत रहा है?

शिक्षक—अवसर्पिणी या घटने का। तुम देखते हो कि आयु, कद और सुख दिनों दिन कम होते जा रहे हैं।

बालक—इस काल में कौनसे २४ तीर्थंकर हुये हैं?

वर्त्तमान चौबीसी



स पहिले प्रभु के दर्शन करने चाहियें । घर से निकले पीछे दर्शन करने के सिवाय और कोई विचार हमारे मन में नहीं होने चाहियें । रस्ते में भी कोई दूसरी बात नहीं करनी चाहिये । ऐसा करने से हम दर्शनों का फल मिलेगा । इस जन्म और दूसरे जन्मों में हमारा कल्याण होगा । हमारे दुःख दूर होंगे और हम सुख मिलेगा ।

अभ्यास—१ भगवान् के दर्शनों से क्या लाभ मिलता है ?

२ दर्शन के लिये जाते समय हमारे मन में क्या विचार होने चाहिये ?

[४]

नव पद ।

शिक्षक—हम आयम्बिल की ओली वर्ष में दो बार करते हैं—चैत्र (चैत) और आश्विन (असोज) में ।

बालक—आयम्बिल की ओली किसे कहते हैं ?

शिक्षक—यह एक प्रकार की तपस्या होती है जो ९ दिन तक की जाती है । इन दिनों में निरस भोजन किया जाता है और वह भी एक ही बार एक ही जगह बैठकर ।

बालक—इन दिनों में और क्या किया जाता है ?

शिक्षक—श्री सिद्ध चक्र की पूजा की जाती है । सिद्ध चक्र को नवपद भी कहते हैं । पद के अर्थ हैं उत्तम स्थान या उत्तम वस्तु ।

नव पद मडल



बालक—पद कितने होते हैं ?

शिक्षक—नौ। २ देव के, ३ गुरु के, और ४ धर्म के। हर एक पद के अलग अलग रंग हैं। सुनो—

१ देव { अरिहंत पद—सफेद
सिद्ध पद—लाल

२ गुरु { आचार्य पद—पीला
उपाध्याय पद—नीला
साधु पद—काला

३ धर्म { दर्शन पद—सफेद
ज्ञान पद—सफेद
चारित्र पद—सफेद
तप पद—सफेद

अभ्यास—१ चारित्र की माली क्या होती है ?

२ पद का क्या अर्थ है ? पद कितने होते हैं ? देव के कितने, गुरु के कितने और धर्म के कितने ?

३ हर एक पद का रंग कैसा होता है ?

---

[५]

सामायिक।

शांति, प्रयत्न, सामायिक, समता, निन्दा, स्तुति, प्रशंसा।

शिक्षक—बालको ! तुम सारा दिन किस तरह बिताते हो ?

बालक—खाने, पीने, पढ़ने, खेलने और सोने में

शिक्षक—तुम सारा दिन इन्हीं कामों में निरत हो। इन से तो कभी छुटकारा न होगा। इसलिये हमें थोड़ा समय मन की शांति पाने के लिये भी प्रयत्न करना चाहिये।

बालक—मन की शांति कैसे मिलती है ?

शिक्षक—सामायिक करने से।

बालक—सामायिक का अर्थ क्या है ?

शिक्षक—सामायिक का अर्थ समता की प्राप्ति या शांति प्राप्त करना है।

बालक—सामायिक में क्या करना चाहिये ?

शिक्षक—अपनी धर्म पुस्तकें पढ़नी चाहिये, पाठ पढ़ने चाहियें, धर्म की बातें करनी चाहिये, नमस्कार मंत्र का जाप करना चाहिये या माला फेरना चाहिये।

बालक—सामायिक कितनी देर तक की जाती है ?

शिक्षक—दो घड़ी या ४८ मिनट तक।

प्यारे बालको ! सामायिक करते हुये किसी की निन्दा नहीं करनी चाहिये। कोई निकम्मी बात नहीं करनी चाहिये। ऊंघना नहीं करना चाहिये। उस समय यदि हमें कोई बुरा वचन कहे, या हमारा निरादर भी करे तो हमें उस पर क्रोध नहीं करना चाहिये। और यदि कोई हमारी स्तुति या प्रशंसा करे तो खुश भी नहीं

होना चाहिये। सब को अपना मित्र समझना चाहिये। सब का भला चाहना चाहिये। इस प्रकार हम में समता आवेगी और हम सुखी होंगे।

अभ्यास –१ सामायिक के क्या अर्थ हैं ?
२ यह कितनी देर की जाती है ?
३, इस से क्या लाभ हैं ?
४ सामायिक में किन बातों का विचार रखना चाहिये ?

३-सूत्र विभाग

॥ अथ नमस्कार मंत्र ॥

णमो अरिहंताणं ॥ १ ॥ णमोसिद्धाणं ॥ २ ॥ णमोआयरियाणं ॥ ३ ॥ णमो उवज्झायाणं ॥ ४ ॥ णमो लोए सव्व साहूणं ॥ ५ ॥

एसो पंच नमुक्कारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं हवइ मंगलं ॥ १ ॥

॥ अथ पंचिंदिअ ॥

पंचिंदिअ संवरणो, तह नव विह बंभचेर गुत्तिधरो।
चउविहकसाय मुक्को, इअ अट्ठारस गुणेहिं संजुत्तो ॥ १ ॥
पंच-महव्वय-जुत्तो, पंचविहायार-पालण-समत्थो।
पंच-समिओ तिगुत्तो, छत्तीस-गुणो-गुरू मज्झ ॥ २ ॥

अथ सामायिक लेने का पच्चक्खान ॥

करेमि भंते सामाइयं, सावज्जं जोगं पच्चक्खामि । जाव नियमं पज्जुवासामि । दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए काएणं । न करेमि, न कारवेमि । तस्स भंते पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

अथ सामायिक पारने का पाठ ।

सामाइयवय जुत्तो, जाव मणे होइ नियम संजुत्तो ।
छिन्नइ असुहं कम्मं, सामाइय जत्तिया वारा ॥ १ ॥
सामाइयम्मि उ कए, समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।
एएण कारणेणं, बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ २ ॥

सामायिक विधि से ली और विधि से पूर्ण की । विधि करते जो कोई अविधि हुई होवे वह सब मन, वचन, काया कर मिच्छामि दुक्कडं ॥



कायोत्सर्ग

(चरवला) रख कर बाए हाथ से मुखवस्त्रिका मुह के आगे रख कर "नवकार" और "पचिदिय" कहे। फिर खड़ा हो कर खमासमणा दे। और "इरिया वहिय, तस्स उत्तरी, अन्नत्थ ऊससिएणं" कह कर "एक लोगस्स" का "चन्देसु निम्मलयरा" तक काउस्सग (कायोत्सर्ग) करे। "नमो अरिहंताणं" कह कर काउस्सग पारे और लोगस्स कहे। फिर खमासमणा देकर "इच्छा कारेण संदिसह भगवन् सामायिक मुहपत्ति पडिलेहु—इच्छं" कह कर मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन करे। फिर खड़ा होकर "खमासमणा" देकर "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् सामायिक संदिसाहु ? इच्छं" कह कर "खमासमणा" दे।

"इच्छा कारेण संदिसह भगवन् ! सामायिकठाउं ? इच्छं" कह कर दोनों हाथ जोड कर एक "नवकार" गिने। फिर इच्छकारि भगवन् पसाय करी सामायिक दंडक उचरावो जी (बड़ा होवे तो उचरावे या स्वयं उच्चरे)", "करेमि भंते" उच्चारण करे। फिर "खमासमणा" देकर "इच्छा कारेण संदिसह भगवन् ! बेसणे संदिसाहु ? इच्छं" कह कर खमासमणा दे।

फिर "इच्छा कारेण संदिसह भगवन् बेसणे ठाऊं ! इच्छं" कह कर खमासमणा दे।

फिर "इच्छा कारेण संदिसह भगवन् ! सज्झाय संदिसाउं इच्छं" कहे। फिर खमासमण देकर "इच्छा क

भगवन् । सज्झाय करूं ? इच्छं" कह कर, तीन नवकार गिने । पीछे बैठकर दो घडी (४८ मिनट) धर्म पुस्तक पढे । या जुबानी कोई धर्म का पाठ पढता रहे । या नवकार की माला फेरता रहे ।

॥ सामायिक पारने की विधि ॥

चरवला लेकर खड़ा होजाय और "खमासमणा" दे ।

"इरियावहिय", "तस्स उत्तरी", "अन्नत्थ ऊससिएणं" कहकर एक लोगस्स का काउस्सग्ग करे । पार के फिर लोगस्स कहे । पीछे "खमासमणा" देकर "इच्छा कारेण संदिसह भगवन् । मुहपत्ति पडिलेहुं ? इच्छं" कह कर मुहपत्ति प्रति लेखन करे ।

पछे "खमासमणा" देकर "इच्छाकारेण संदिसह भगवन् । सामायिक पारूं ? (जरा झुक कर) 'यथा शक्ति' कहे ।

फिर खमासमणा देकर "इच्छा कारेण संदिसह भगवन् ! सामायिक पार्यूं" कह कर (जरा ऊंचा कर) "तहत्ति" कहे ।

फिर दाया हाथ चरवले या आसन के ऊपर रखकर मस्तक झुका कर नवकार और "सामाइय वय ... " कहे ।

फिर दाया हाथ स्थापना ... गिने ।

३ कामराग, स्नेहराग, दृष्टिराग परिहरु

(यह सात बोल मुहपत्ति को उलट पलट करते समय कहने चाहियें)

३ सुदेव, सुगुरु, सुधर्म, आदरु ।

३ कुदेव, कुगुरु, कुधर्म परिहरु ।

३ ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदरु ।

३ ज्ञानविराधना, दर्शनविराधना, चारित्र विराधना परिहरु ।

३ मनगुप्ति, वचनगुप्ति, कायगुप्ति आदरु ।

३ मन दंड, वचन दंड, काय दंड परिहरु ।

(यह अठारह बोल बाए हाथ की हथेली में कहने चाहिये। यहां तक ये २५ बोल मुहपत्ति पडिलेहण के हैं)

नीचे के २५ बोल शरीर पडिलेहण के हैं।

३ हास्य, रति, अरति परिहरु (बाईं भुजा पडिलेहते)

३ भय, शोक, दुगछा परिहरु (दाहिनी भुजा पडिलेहते)

३* कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कपोत लेश्या परिहरु (ललाट पर)

३ रिद्धिगारव, रसगारव, सातागारव परिहरु (मुख पर)

३* मायाशल्य, नियाणाशल्य, मिथ्यादर्शनशल्य परिहरु (हृदय पर)

नन्द जैन शिक्षावली

दूसरा भाग

नियमावली।

श्री धर्मानन्द-जैन-ट्रैक्ट सोसायटी,
मथुरा शहर।

१—इसका मेम्बर हर एक हो सकता है।

२—इसका चन्दा कम से कम २) रु० वार्षिक है। अधिक देने का हरएक को अधिकार है। जो महाशय एक साथ ५०) रु० इस ट्रैक्ट सोसायटी को देंगे वे इसके लाइफ-मेम्बर समझे जावेंगे। उनसे वार्षिक चन्दा कुछ नहीं लिया जावेगा।

३—इस सोसायटी का वर्ष १ जनवरी से आरम्भ होता है। जो महाशय मेम्बर होंगे वे चाहे किसी महीने में बनें परन्तु चन्दा उनसे ता० १ जनवरी से ३१ डिसम्बर तक का लिया जावेगा।

४—जो महाशय अपने खर्च से कोई ट्रैक्ट इस सोसायटी द्वारा प्रकाशित कराकर बिना मूल्य वितीर्ण करना चाहें, उनका नाम ट्रैक्ट पर छपवाया जायगा।

५—जो ट्रैक्ट यह सोसायटी छपवाया करेगी वे हर एक मेम्बर के पास बिना मूल्य भेजे जाया करेंगे।

निवेदक—

मन्त्री।

आत्मानन्द जैन शिक्षावली

दूसरा भाग

सद्गुरु न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्री श्री १००८
श्रीमद्विजयानन्द सूरि (आत्माराम जी) महाराज।



MUNI SHRI ATMARAMJI

समर्पण ।

अति विनीत भाव से—

पूज्यपाद श्रद्धास्पद

श्री पण्डित हीरानन्द जी शास्त्री

एम्० ए०, एम्० ओ० एल०

के

कर कमलों में ।





दो शब्द ।

प्रिय पाठक वृन्द !

इस से पहले श्री आत्मानन्द जैन "शिक्षावली" का पहला भाग प्रकाशित किया जा चुका है, आशा है कि पसन्द आया होगा। अब उसी का दूसरा भाग लेकर उपस्थित होता हूँ। इसका भी रंग ढंग वैसा ही है, केवल इसमें मूल गुजराती पुस्तक से निम्न लिखित विशेषतायें हैं —

१ इतिहास विभाग, जो मूल गुजराती पुस्तक में नहीं था और जिसके बिना कोई शिक्षावली पूर्ण नहीं कही जासकती, इसमें लगा दिया गया है।

२ सामान्य ज्ञान विभाग में "जीव और अजीव" संबंधी पहले ८ पाठ नये डाल दिये गये हैं। और "चौदह रत्न" और "३४ अतिशय" यह भी बढ़ाये गये हैं।

३ सूत्र विभाग में मूल प्राकृत पाठ के साथ साथ उसका संस्कृत में छाया और हिन्दी में अर्थ भी दे दिये गये हैं।

४ काव्य विभाग भी सर्वथा नया है।

अन्त में मैं उन लेखकों का—विशेषतया प्रज्ञाचक्षु पं० सुखलाल जी का—एवं प्रकाशकों का भी आभार मानता हूँ जिन की पुस्तकों से मुझे बहुत कुछ सहायता मिली है।

विनीत —

भागमल्ल शर्मा

※ विषय-सूची ※

२—इतिहास विभाग

३—सामान्य ज्ञान विभाग

※ भजन ※

अस्थरी—प्रभु जी मुक्ति पाने को तेरे दरबार आऊं मैं।

बड़े आनन्द में भगवन् तुम्हें मस्तक झुकाऊं मैं ॥

अनन्ती महिमा है तेरी बृहस्पति पार न पाये,

मैं इक छोटा सा बालक तेरा गुण कैसे गाऊं मैं ॥ १ ॥

तुम्हारे दर्श से भगवन मेरा तन मन है खिल जाता,

बड़ा आनन्द है होता तेरा दर्शन जो पाऊं मैं ॥ २ ॥

तेरी भक्ति से ऐ भगवन् कर्म दल चूर होते हैं,

तेरी भक्ति से ऐ स्वामी कर्म दल को खपाऊं मैं ॥ ३ ॥

अनादि काल से सुन्दर भटकता हूँ चौरासी में,

करो जो तुम कृपा भगवन् तो अब मुक्ति को जाऊं मैं ॥४॥



* श्री वीतरागाय नमः *

श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावली

दूसरा भाग।

(१) नीतिबोध विभाग।

१—धर्म

तृष्णा।

बालक—(शिक्षक से) गुरु जी! आपने हमें बताया था कि विद्यार्थी को अपना धर्म पालना चाहिये जिससे वह सुखी रहे। परन्तु आपने हमें यह नहीं बताया कि धर्म किसे कहते हैं? कृपा करके अब बतावें।

शिक्षक—पहिले तुम ही बताओ तुम धर्म किसे समझते हो?

एक बालक—नहाना धर्म है जिससे मनुष्य चुस्त रहता है।

दूसरा बालक—पेड़ लगाना धर्म है जिससे दूसरे लोग उनकी छाया में बैठ कर सुख पायें, व उसके फल खाकर प्रसन्न हों।

तीसरा बालक—अपने भाई और सगे सम्बन्धियों को भोजन कराना धर्म है।

चौथा बालक—कुँआ खुदवाना धर्म है जिससे लोग अपनी तृष्णा दूर करें।

पांचवा बालक—इनको कुछ पता नहीं। मैं बताता हूं जी। विद्यार्थियों का धर्म है जो बात उनको न आती हो वह गुरु जी से पूछें। अब, हम छोटे बालकों को धर्म की क्या खबर है ? इस लिये आप ही बताने की कृपा करें।

शिक्षक—सुनो-विद्यार्थियों का धर्म यह है—

विद्या पढ़ना। सच बोलना। चोरी न करना–मालिक की बिना आज्ञा कोई चीज न उठाना। माता पिता और गुरुजी की आज्ञा में रहना। सदा गरीबों की मदद करना।

परन्तु थोड़े में मैं तुम्हें यह बता देता हूं कि जिससे अपना और दूसरों का भला हो वही धर्म है।

बालक—अपना भला किस तरह हो सकता है ?

शिक्षक—दूसरों का भला करने से।

बालक—गुरु जी ! तो हमारा धर्म क्या है ?

शिक्षक—अपना और दूसरों का भला करना।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ धर्म का क्या अर्थ है ?
२ विद्यार्थियों का क्या धर्म है ?
३ हमारा अपना भला किस प्रकार हो सकता है ?

२—धर्मात्मा ।

शिक्षक—बालको ! तुम धर्म का अर्थ तो समझ गये । परन्तु आज मैं तुम्हें यह बताऊंगा कि जो पुरुष धर्म करता है उसे हम धर्मात्मा कहते हैं ।

बालक—धर्मात्मा पुरुष कैसे होते हैं ?

शिक्षक—जो मनुष्य किसी गरीब को दुःख न दे, यदि कोई गरीब दुःख में हो तो उसका दुःख दूर करे, जो कभी झूठ न बोले—सदा सच बोले, जो किसी को न मारे, सब से प्रेम करे, जो झूठ बोलकर और दूसरों को धोका देकर धन न कमावे—सच बोल कर और पूरा तोल कर धन कमावे, और अपनी कमाई के अन्दर ही अन्दर खर्च करे—अधिक खर्च न करे उसे धर्मात्मा कहते हैं ।

बालक—गुरु जी ! तो क्या हम धर्मात्मा नहीं ?

शिक्षक—हा ! यदि तुम ठीक इसी तरह करते हो तो तुम भी धर्मात्मा हो।

बालक—हम जैन धर्मी कहे जाते हैं। इसका क्या अर्थ है ?

शिक्षक—हम जैन धर्म को मानते हैं। इसलिये जैन-धर्मी कहाते हैं।

बालक—गुरु जी ! जैन धर्म कैसा धर्म है ?

शिक्षक—प्यारे बालको, जैन धर्म की बाबत मैं तुम्हें फिर किसी दिन बताऊंगा।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ धर्मात्मा पुरुष किन्हें कहते हैं ?

२ उनमें क्या गुण होते हैं ?

३—सुदेव (१)

अप्राति, द्वेष ... ।

शिक्षक—शांतिदास ! ...

शांतिदास—गुरु जी ! ...

... किसे

... —यह तो ...

—सुनो ! ...

... जिन ...

शिक्षक—जीतने वाले का नाम जिन है।

शांतिदास—जिन किसे जीतते हैं?

शिक्षक—अपने शत्रुओं को।

शांतिदास—उनके शत्रु कौन होते हैं?

शिक्षक—राग और द्वेष।

शांतिदास—राग और द्वेष के क्या अर्थ हैं?

शिक्षक—मन पसंद वस्तु पर प्रीति करना "राग" होता है और जो पसंद नहीं उस से अप्रीति या घृणा करना द्वेष कहलाता है।

बालक—क्या यह दोनो साथ २ रहते हैं?

शिक्षक—हां! जहां राग होगा वहां द्वेष भी होगा और जहां राग नहीं वहां द्वेष भी नहीं। जिन दोनो को जीत लेते हैं—उन के राग और द्वेष दूर होजाते हैं, इस लिये उन्हें "वीतराग" भी कहते हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ जनधम के क्या अर्थ है?
२ जिन किन्हें कहते है? उनके शत्रु कौन होते है?
३ "वीतराग"—यह उनका नाम क्यों है?

४—सुदेव (२)

कषाय।

बालक—राग और द्वेष यह दो आपने बड़े शत्रु बतलाये हैं। इसका क्या कारण है?

शिक्षक—भगवान व अथ है भानवान्।

बा०—एस भगवान कौन हैं ?

शि०—जिन्हा ॥ राग और द्वेष जीत कर परम ज्ञान प्राप्त किया हो।

बा०—भगवान् का दूसरा नाम क्या है ?

शि०—परमात्मा।

बा०—उन्हें परमात्मा क्यों कहते हैं ?

शि०—जो आत्मा परम–अति शुद्ध हो वह परमात्मा कहलाती है।

प्यार बालको ! तुम भली भांति समझ गये कि—

१ राग-द्वेष को जीतने वाले देव को *जिन* कहते हैं।

२ राग व जिना–होन से वीतराग कहलाते हैं।

३ राग-द्वेष रूपी शत्रुओं को मारन वाले अरिहन्त।

४ पूजने योग्य होन से अर्हत्।

५ और उन्हें ही देव, परमेश्वर, प्रभु, भगवान् और परमात्मा कहते हैं।

६ “ जिन ” को मानने वाले जैन कहलाते हैं।

७–सुदेव (५)

(श्री महावीर स्वामी)

निर्वाण, अन्तिम, सम्वत, विक्रमादित्य, सिद्धार्थ।

बालक—गुरु जी ! आपने हमें पिछले पाठ में सुदेव की पहचान कराई थी। कृपा करके अब यह बतावें कि ऐसे कौन कौन से देव हुये हैं ?

शिक्षक—ऐसे अनेक देव हो चुके हैं। मैंने तुम्हें पहिले भाग में वर्तमान काल के चौबीस भगवान् के नाम, रंग और चिन्ह बतलाये थे। आज मैं तुम्हें उन में से श्री महावीर भगवान् का कुछ हाल बताऊंगा। आजकल उन्हीं का शासन चल रहा है।

बालक—यह महावीर स्वामी कब हुए ?

शिक्षक—यह वर्तमान चौबीसी में से अंतिम तीर्थंकर हैं। इन को निर्वाण पद पाये बहुत समय बीत गया है। पहिले तुम यह बताओ कि आज कल कौन सा सन् इस्वी चल रहा है और इसका क्या मतलब है ?

बालक—आज कल सन् ईस्वी १६२३ है या यूं कहो कि ईसामसीह-ईसाइयों के देव को काल किये आज १६२३ साल हुये।

शि०—हमारे परम पूज्य महावीर स्वामी का निर्वाण ईसा मसीह से ५२७ साल पहिले और विक्रम संवत्, जो राजा विक्रमादित्य का संवत् चलाया है, से ४७० वर्ष पहले हुआ था, अर्थात् उनके निर्वाण को आज २४५० वर्ष हुए।

बालक—इन का कुछ हाल बतावें।

शि०—सुनो। श्री महावीर स्वामी राजा सिद्धार्थ के पुत्र थे। राजा सिद्धार्थ क्षत्रियकुंड का राजा था।

बालक—क्षत्रियकुंड कहां है ?

शि०—यह मगध देश का, जिसे अब बिहार कहते हैं एक शहर था। श्री महावीर स्वामी की माता का नाम त्रिशला देवी था। इनका जन्म विक्रम संवत् से ३६८ वर्ष पहले चैत्र सुदि त्रयोदशी को हुआ था। महावीर जी ने ३० वर्ष की अवस्था में (मार्गशीर्ष बदी १० मी को) या यूं कहो कि जब वह पूरी जवानी में थे—संसार त्याग कर दीक्षा ली। १२ वर्ष ६ महीने १५ दिन तक तपस्या करके वैशाख सुदि १० मी को केवल ज्ञान प्राप्त किया। केवल ज्ञान किसे कहते हैं, यह तुम पहली पुस्तक में पढ़ चुके हो। फिर ३० वर्ष तक अहिंसा अर्थात् दया-धर्म का उपदेश देते रहे, अनेक स्त्री पुरुषों को धर्म का ज्ञान कराया और उनका कल्याण किया। फिर ७२

वर्ष की आयु में दीपावली (दिवाली, कार्तिक वदि अमावस) के दिन पावापुरी में निर्वाण या मुक्ति को प्राप्त किया।

बालक—पहली पुस्तक में आपने बताया था कि इन का नाम वर्धमान भी है, सो क्यों ?

शिक्षक—हां ! माता पिता ने इन का नाम वर्धमान रक्खा था क्योंकि इन के जन्म दिन से लेकर सारे राज्य में धन, धान्य और धर्म में खूब वृद्धि होने लगी थी। परन्तु यह बड़े वीर थे इसलिये इनका नाम महावीर रक्खा गया।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ भगवान् महावीर स्वामी कौन थे ?
२ इन्हों ने कहां, कब, किस के घर जन्म लिया था ?
३ इन की माता जी का क्या नाम था ?
४ इन्हों ने किस अवस्था में दीक्षा ली थी ?
५ कितने वर्ष के पश्चात् इन को केवल ज्ञान हुआ ?
६ कितने वर्ष यह क्या काम करते रहे ?
७ यह क्या प्रचार करते थे ?
८ इन का निर्वाण कब हुआ था ?
९ ईस्वी सन् से कै वर्ष पहले इन का निर्वाण हुआ था ?
१० इन का नाम वर्धमान क्यों रक्खा गया ?

८—रत्नत्रय ।

सम्यक् श्रद्धा ।

बालक—क्या महावीर स्वामी के बाद भी कोई उन जैसा दूसरा महापुरुष हुआ है ?

शिक्षक—नहीं, जैसे तुम पहले पढ़ चुके हो वह अन्तिम तीर्थंकर थे ।

बालक—तीर्थंकर किसे कहते हैं ?

शिक्षक—तीर्थंकर शब्द के एक अर्थ तो मैंने तुम्हें पहली पुस्तक में बताये थे, कि साधु, साध्वी, श्रावक और श्राविका यह चार तीर्थ स्थापन करने से वे तीर्थंकर कहलाते हैं । दूसरा अर्थ यह है कि वे तीर्थ या संसार से तरने का साधन बताने वाले होते हैं इस लिये उन को तीर्थंकर कहते हैं ।

बालक—संसार से तरने का साधन क्या है ?

शिक्षक—संसार से तरने का साधन है—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र ।

बालक—सम्यक् ज्ञान, सम्यक् दर्शन और सम्यक् चारित्र से क्या मतलब है ?

शिक्षक—किसी वस्तु का ठीक २ जानना सम्यक् ज्ञान कहलाता है । अर्थात् सुदेव, सुगुरु और सुधर्म का जानना ।

चुरा कर बांध लिया और वह चलने को तैयार हुये। परन्तु जम्बु कुमार के पुण्य प्रताप से जकड़े गये। प्रभवा ने जम्बु कुमार से प्रार्थना की कि आप मुझ से यह दो विद्यायें (अवस्वापिनी—सुलाने की, और तालोद्घाटनी—ताला खोलने की) ले लें और बदले में मुझे अपनी स्तंभिनी और मोचिनी (जकड़ने और छुड़ाने की) विद्यायें दे दें। जम्बु कुमार ने कहा—मुझे तेरी विद्यायें नहीं चाहियें। क्योंकि मैं तो दौलत औरत आदि सब परिवार को छोड़ कर दीक्षा लेने को तैयार हूं। मालूम होता है कि मेरी दीक्षा में कोई विघ्न उपस्थित न होने इस लिये शासन देवता ने तुम्हें जकड़ दिया है। यदि तू अपने संकल्प को छोड़ देगा तो तेरा बन्धन भी छूट जायगा। ऐसा ही हुआ। चोरों ने सब माल छोड़ दिया। देवता ने उन्हें बंधन से छोड़ दिया।

प्रभवा ने जम्बु कुमार और आठों स्त्रियों का वार्तालाप सुन कर जम्बु कुमार से कहा, "इतनी दौलत और सुन्दर स्त्रियां मिली हुई छोड़ देना और आगे के लिये सुख की इच्छा करना मैं उचित नहीं समझता। जम्बु कुमार ने उसे फिर समझाया जिस से वह भी अपने साथियों समेत दीक्षा लेने को तैयार हो गया।

इसी तरह जम्बु कुमार ने अपने और आठों स्त्रियों के माता-पिताओं को उपदेश देकर समझाया। वह भी दीक्षा लेने को तैयार हो गये। इस तरह ९९ करोड़ की सम्पदा को त्याग कर सब के साथ जम्बु कुमार ने दीक्षा ले ली। और अन्त में

कर्मों को क्षय कर के भगवान् महावीर स्वामी के निर्वाण से ६४ वर्ष बाद मुक्ति को प्राप्त हुये।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ श्री जम्बु स्वामी ने, कहां जन्म लिया ? उन के पिता का क्या नाम था ?
२. उन्होंने अपनी रानियों, अपने सगे सम्बन्धियों और चोरों समेत दीक्षा लेने का मन हाल कहो।
३ वह कब मुक्ति को प्राप्त हुये ?
४ उन के जीवन से हम क्या २ शिक्षा ले सकते हैं ?

११–सुधर्म्म और सम्यक् दृष्टि।

सम्यक्त्व।

शिक्षक—बालको सुदेव और सुगुरु तो तुम समझ गये। अब मैं सुधर्म्म अर्थात् अच्छे धर्म के विषय में कुछ बताऊंगा।

बालक—सुधर्म्म किसे कहते हैं ?

शिक्षक—जिससे दूसरों को दुःख न हो ऐसे अच्छे विचार और आचार को सुधर्म्म कहते हैं।

बालक—ऐसा धर्म कौनसा है ?

शिक्षक—राग द्वेष से रहित श्री वीतराग भगवान् का कहा हुआ धर्म ऐसा जैन धर्म है जिसे हम तुम मनन करते हैं।

बालक—देव, गुरु और धर्म का स्वरूप तो हम समझ गये। और यह ऐसी बात है जिसे मन को मानना चाहिये।

शि०—हां ! सुदेव, सुगुरु और सुधर्म पर श्रद्धा रखनी इसका नाम सम्यक्त्व है। और ऐसा मानने वाले को सम्यक् दृष्टि या अच्छी दृष्टि वाला समझना चाहिये।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ अच्छा धर्म कौनसा है ?
२ वह कैसा होना चाहिये ?
३ सम्यक्त्व और सम्यक् दृष्टि किसे कहते हैं ?

१२—सात व्यसन।

परिश्रम।

बालक—जैन धर्म को ठीक प्रकार समझ कर, पालने की इच्छा वाले को सब से पहले क्या करना चाहिये ?

शि०—सब से पहले उसे नीतिवान् होना चाहिये।

बा०—तो क्या जैन उपदेशक पहले पहल नीति का ही उपदेश देते हैं ?

शि०—हां ! सब से पहले वह यह उपदेश देते हैं कि सात व्यसनों से दूर रहो, और यही नीति का उपदेश है।

बा०—नीति का क्या मतलब है ?

शि०—जिस रस्ते पर चलने से हमको सुख हो, हमारे अन्दर अच्छे २ गुण आवें और सब लोग हमारा मान करें उसे

नीति कहते हैं । अब मैं तुम्हें बताता हूं कि सात व्यसनों से दूर रह कर हमें क्या करना चाहिये ।

(१) परिश्रम करके पैसा कमाना चाहिये ।

(२) अन्न, फल और शाक खाना चाहिये ।

(३) पवित्र जल पीना चाहिये ।

(४) अपनी स्त्री से प्रीति करनी चाहिये ।

(५) दीन, दुःखी प्राणियों के ऊपर दया करनी चाहिये ।

(६) जिस पर अपना हक़ हो उसी पर सन्तोष करना चाहिये ।

(७) और सारे जगत् की स्त्रियों को माता और बहन के बराबर समझना चाहिये ।

* तुम्हें यह सात गुण अपने अन्दर धारण करने चाहियें ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ हमें कौन कौन से सात गुण धारण करने चाहियें ?

२ सात व्यसनों के नाम लो ।

---

* इसका मतलब है-जुआ न खेलना, मांस न खाना, शराब न पीना, वेश्यागमन न करना, शिकार न खेलना, चोरी न करना और पर स्त्री-गमन न करना ।

१३–सज्जन ।

सत्यवादी, दयालु, सत्पुरुष लक्षण, सम्पत्ति, द्वेष, स्तुति, प्रशंसा,

बालक–जो कोई सत्यवादी, और दयालु हो उसे क्या कहते हैं ?

शिक्षक–सज्जन या सत्पुरुष ।

बालक–सत्पुरुष या सज्जन के लक्षण क्या हैं ?

शिक्षक—सुनो ! सत्पुरुष वह होता है जो सुख, सम्पत्ति मिलजाने पर अभिमान न करे, दुःख में न घबरावे, किसी का बुरा न चाहे, किसी को बुरा वचन न कहे, बुरा काम न करे, क्लेश और कषाय से दूर रहे, किसी से वैर न करे, यदि किसी ने उस के साथ बुराई की हो तो उस के साथ भी भलाई करे, विचार कर बात कहे और जो कुछ कहे उसे करके दिखावे, जीवों की रक्षा करे, किसी को धोखा न दे, दूसरे की निन्दा न करे, सब से प्रेम से बोले, अपनी आप स्तुति न करे, सब बातों में दोषों को छोड़ कर गुणों की प्रशंसा करे । दूसरों को दुःखी देख कर सुखी न हो और गुरुओं का मान करे ।

दुर्जन जो विद्या पढ़ता है, तो विवाद सब से करता,
दुर्जन जो धनवान बने तो अहंकार में ही मरता ।
दुर्जन के तन में बल हो, तो निरपराध को पीड़ा दे,
विद्या, धन, बल पाकर भी नहीं धन्यवाद औरों से ले ॥१॥

सज्जन किन्तु सदा विद्या से, सब मनुजों को देता ज्ञान,
सज्जन जो धनवान होय तो दीन जनों को करता दान।
सज्जन के शरीर में जो हो अन्य जनों से भारी बल,
तो उस से वह दीन जनों की सदा करे रक्षा केवल ॥२॥

—पण्डित राधाकृष्ण मिश्र

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ सज्जन के गुण बताओ।

१४—व्यसन निषेध।

लज्जा, सम्मति, विद्यार्थी, अवस्था।

मोहनलाल—प्यारे शिवकुमार! आज कुछ उदास से क्यों हो?

शिवकुमार—भाई मोहन! क्या कहूं। कहते हुए लज्जा आती है। कुछ दिन हुए गुरु जी ने कहा था कि जुआ नहीं खेलना चाहिये क्योंकि सात व्यसनों में से यह भी एक व्यसन है। रात को पिता जी ने भी यही शिक्षा दी कि इस जूए से सदा दूर रहना चाहिये, क्योंकि जुआ खेलने वाले में दूसरे और बहुत से दोष भी आ जाते हैं। उन्होंने यहां तक कहा था कि जुआ न तो खेलना चाहिये और ना ही जुआ खेलने वाले के साथ मित्रता रखनी चाहिये। परन्तु आज मुझ से बड़ी भूल हुई। मैंने गोविन्द के साथ जुआ खेला

भाई मोहन ! तुम अभी बहुत छोटे हो ।
समझ जाओ । जुआ आदि व्यसनों को छोड़ दो
और अपने पवित्र कुल को तारो । अच्छी अच्छी
खेलें खेलो । लो, मुझे एक भजन याद आ गया ।
वह मैं कल सुनाऊंगा क्योंकि आज देर अधिक हो
गई है । चलो घर चलें । (दोनों चल गये)

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ इस कथा को याद करके सुनाओ । और बताओ इस से हमें क्या
शिक्षा मिलती है ?

१५–जुए का भजन (संवाद)

जयन्तिलाल ने अगले दिन कहा—मैं बाज़ार में से
आ रहा था तब दो लड़के यह भजन गा रहे थे । उन में से
एक का नाम घमंडीलाल था दूसरे का नाम सत्यानन्द ।
घमंडीलाल जुआ खेला करता था और सत्यानन्द उसे
हटाता था ।

घमंडीलाल—जग खेलो जुआ, जग खेलो जुआ,
पल में फ़क़ीर अमीर हुआ ।

जुण्राज नी सुणो कहानी मन चित्त लाकर भाई,
द्रौपदी नारी पाण्डव हारी शरम ज़रा न आई।
मत खलो जुआ।

घमंडीलाल—जुआ खेला जो दुर्योधन न जीती पाण्डव नार,
एक घड़ी में धन गये सारे पर नारी भरतार।
जग खलो जुआ।

सत्यानन्द—चोर, उचक्के, जुण्राज का कौन करे इतबार,
जिधर जाय धक्के खावें मिलता नहीं उधार।
मत खलो जुआ।

घमंडीलाल—जुण्राज और चोर दोहां तें कौन करे तकरार,
जिधर जावें दौलत पावें मिलें एक दे चार।
जग खलो जुआ।

सत्यानन्द—जूण्राज दे पास जो हुंदा इक दम निकाला,
माल मच्च चाहे मरजाय फाका कर नहीं परवाह।
मत खलो जुआ।

घमंडीलाल—जुण्राज दे पास जो हुंदा करन मौज बहार,
ऐश उड़ाव घर में नारी भूखे मरे परिवार।
जग खलो जुआ।

सत्यानन्द—जेकर आवें हार जूए विच पिरल्ला भी वह मरद,
दरसन नानकशाह धर्म दे टइ हथ विच फरद।

सब विषयों में विषय यह खोटा समझो मर भाई,
नरक बीच ले जाने वाला सच्ची आख सुनाई ।

मत खेलो जुआ ।

घमंडीलाल—सुनो नमोहन तेरी भाई दिल में किया ख्याल,
इस पापी चयडाल जूए ने कर दीना कगाल ।
जुआ बुरा अजाब है यारो मत लो इसका नाम,
कौडी मारो फैंक जमीं पर दूर से करो सलाम ।

मत खेलो जुआ ।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ जुए से क्या क्या हानियां होती हैं ?
२ इस भजन को याद करके दो बालकों को राग के ढग पर कहना चाहिये।

१६—सत्सग ।

प्रतिष्ठा, सद्गुण, दुर्गुण, अपकीर्त्ति ।

बालकों को सदा अच्छे बालकों की सगति करनी चाहिये, इस से वह भी अच्छे और गुणवान् बन जायेंगे और प्रतिष्ठा पायेंगे । माला का डोरा (धागा) पुष्प की सगति करके हमारे

गले तक पहुंच जाता है। इसी प्रकार बहुत से सद्गुण भी एक दुर्गुण से बिगड़ जाते हैं।

एक पिता ने अपने पुत्र के हृदय में यह बात बिठा देने के लिये यह उपाय किया। उसने अपने पुत्र को एक पात्र दिया जिसमें ७ जामनें थीं और कहा कि इस पात्र को अन्दर अलमारी में रखदो। इन जामनों में एक जामन खराब देखकर लड़के ने कहा—"पिता जी! इस खराब जामन को तो बाहर ही फैंक देना चाहिये क्योंकि यह बाक़ी जामनों को भी बिगाड़ देगी। पिता भी यह बात जानता था फिर भी कहने लगा "कि एक जामन बाक़ी छः अच्छी जामनों को नहीं बिगाड़ सकती इस लिये जा तू इसे रख आ। लड़का पात्र को अलमारी में रख आया।

अगले दिन पिता ने पुत्र से वही पात्र निकालने के लिये कहा। लड़का पात्र ले आया और सातों जामनों को खराब हुई देख कर पिता से कहने लगा—"पिता जी! मैंने आप से पहले ही न कह दिया था कि आप इस खराब जामन को फैंक दीजिये। आप ने मेरी बात नहीं मानी। अब आप देखलें कि सातों जामनें बिगड़ गई हैं। पिता बोला—" पुत्र! यह बात तो मैं पहिले भी जानता था। मैं तो केवल तेरे दिल पर यह बात बिठाना चाहता था और इसी लिये मैंने ऐसा किया था।

अब तू भली भांति समझ गया होगा कि जिस तरह एक खराब आपन से अच्छी भी बिगड़ गई हैं इसी प्रकार एक खराब बालक की संगति से बहुत से भले बालक बिगड़ जाते हैं इस लिये बुरी संगति न करना चाहिये। बुरी संगति करने से संसार में तेरी अपकीर्ति होगी और हमारे नाम को बट्टा लगेगा। इसलिये तुझे आज से सत्पुरुषों की संगति करनी चाहिये। यह सब देख कर बालक बड़ा प्रसन्न हुआ और भले बालकों की संगति में आनन्दित रहने लगा और एक दिन बड़ा आदमी बन गया।

नीच बड़ेन के संग ते पदवी लहत अमोल ।
परे सीप में जलद जल मुक्ता होत अमोल ॥

अभ्यास के लिये प्रश्न।

१ किसान ने किस प्रकार पुत्र को शिक्षा दी उसका वर्णन करो।
२ [illegible] करो।

७–दुराग्रह या झूठा हठ न करना चाहिये।

दुराग्रह, कदाग्रही, अहंकार, दृष्टान्त, सरलस्वभावी।

संसार में बहुत से पुरुष यह समझते हैं कि हमारे जैसी अक्ल और ज्ञान संसार में किसी की नहीं। वह यह नहीं विचारते "जो सच्चा सो मेरा" परन्तु इस से उलटा "जो मेरा सो सच्चा" ऐसा मानते हैं। ऐसा मानने वाले पुरुष कभी सच्चे मार्ग को ग्रहण नहीं कर सकते। लोग उन्हें हठी, दुराग्रही या

करामती करते हैं। चाहिये तो यह कि यदि कोई सज्जन, चाहे वह पुरुष हो, या स्त्री, बालक हो अथवा बूढ़ा, हमें कोई बात बतावे, जिस से हमारा भला होता हो, तो हम वह बात झट पट मान लेनी चाहिये, अपनी भूल को सुधारना चाहिये, जिस से हम सुखी हों। यदि हम ऐसा न करेंगे तो लोग हम गधे की पूँछ पकड़ने वाले की उपमा देंगे और हमारी हँसी करेंगे। वह कथा इस प्रकार है—

एक ग्राम में एक आदमी मर गया। उसकी स्त्री बड़ा रोई। किसी तरह भी चुप न करती थी। उसके पुत्र ने पूछा, "मा तू इतना क्यों रोती है?" मा बोली, 'बेटा! तेरे बाप के गुण को रोती हूँ। वह जिस काम में हाथ डालता था उस को पूरा कर देता था, और यदि कोई उसे अच्छी शिक्षा देता तो वह उसे मान लेता था।" यह सुनकर लड़का कहने लगा, "मा रो मत! मैं अपने बाप का यह गुण धारण करूंगा"।

एक दिन मजूर ही लड़का मजदूरी कर रहा था। उसके सामने से एक गधा दौड़ता हुआ निकला। उसके पीछे उस का मालिक दौड़ता और शोर मचाता हुआ आ रहा था। वह कह रहा था— "जो कोई इस गधे को पकड़ेगा उसको एक रुपया मिलेगा"। यह सुन कर लड़का विचारने लगा—" मैं सारा दिन मेहनत मजदूरी करता हूँ, फिर भी एक रुपया नहीं मिलता। यह तो

थोड़ी ही मेहनत से रुपया मिल जाने वाला काम है—यह विचार कर गधे के पीछे ज़ोर से दौड़ा और उसे पूंछ से पकड़ लिया। गधा भी पिछले पैर उठा कर उस पर प्रहार करने लगा। यह देख कर लोग उसे पुकार पुकार कर कहने लगे, "अरे! छोड़ दे, छोड़ दे नहीं तो बिना मौत मारा जायगा"। लड़का कहने लगा—'मैं जो कुछ कर रहा हूं ठीक ही कर रहा हूं। तुम सब इस बात को नहीं समझते। जिस काम में हाथ डाला जाये उसे पूरा किये बिना नहीं छोड़ना चाहिये।" यह कहता रहा और उसने पूंछ को नहीं छोड़ा। वह गधा भी उस पर प्रहार करता रहा जिससे वह लहू लुहान होगया और कई मास चारपाई पर पड़ा रहा।

इस दृष्टान्त का सार यह है कि हम कभी भी ऐसा झूठा हठ नहीं करना चाहिये, सरल-स्वभावी विचारशील और अनाग्रही होना चाहिये।

अभ्यास के लिये प्रश्न।

१ दुराग्रह या हठ करने से क्या हानि होती है?
२ मनुष्यों को कैसे स्वभाव वाला होना चाहिये?
३ इस कथा को याद करो और बताओ इस से हमें क्या शिक्षा मिलती है?

१८—घर और पड़ोस (१)

गुप्त, दुर्भाग्य, परिणाम, संयोग, निर्वाह, ब्राह्मण, श्राद्ध, पितृपिंड, विश्राम।

हमारे रहने का घर ऐसे स्थान में नहीं होना चाहिये जहां रहने में दूसरों को कष्ट उठाना पड़े अर्थात् गुप्त या

गाढ़ बस्ती वाले स्थान में न हो। ऐसे गुप्त घर में मुनिमहाराज कभी भाग्य से ही पधारें तो पधारें, नहीं पधारना नहीं होता। दूसरे यदि किसी समय दुर्भाग्य से उस मकान में आग लग जावे तो बचना भी मुशकिल होजाता है। परन्तु इसके साथ ही यह भी याद रखना चाहिये कि घर प्रगट—रस्ते पर भी नहीं होना चाहिये, क्योंकि ऐसा होने से आते जाते लोग दृष्टिपात करेंगे जिसका परिणाम खराब होता है। स्त्रीवर्ग अपनी लाज नहीं बचा सकती। चोरी होजाने का हर दम भय रहता है। जिस घर में आने जाने के बहुत से द्वार हो वह घर भी रहने योग्य नहीं होता क्योंकि इस में चोरों को बहुत सुभीता होता है। इस लिये थोड़े दरवाजों वाले घरों में रहना चाहिये। परन्तु सब से बड़ी बात ध्यान देने योग्य यह है कि पड़ौस अच्छा हो, जिससे अपना निर्वाह सुख से होता रहे और धर्म नियम भी खूब हो सके, और आचार न बिगड़े।

श्री गिरनार पर्वत के पास एक ग्राम में एक ब्राह्मण रहता था जिस का नाम सोमभट्ट था। उसकी स्त्री का नाम अम्बिका और दो पुत्रों का नाम सिद्ध और बुद्ध था। स्त्री को दान देना बड़ा पसंद था। एक बार घर में श्राद्ध हो रहा था। उस समय उसके भाग्य से एक साधु मुनिराज घर में आये। उन्होंने एक मास का उपवास किया हुआ था। अम्बिका ने बड़े भाव के साथ उन्हें आहार दिया।

पड़ोस में रहने वाली एक पड़ोसन ने यह देखा और जाकर अम्बिका की सास से मांगा मांगा जो कुछ मिला था आया कह दिया। सास अम्बिका को धमकाकर कहने लगी— " अभी तक कुल देवता की पूजा भी नहीं की, पितृ पिण्ड भी नहीं भरा और ब्राह्मण को भी भोजन नहीं कराया। अरी पापिन तू ने यह क्या किया। " यह कह कर उसे घर से निकाल दिया।

अम्बिका अपने दोनों पुत्रों को साथ लेकर जंगल में चली गई। वहां जंगल में एक सरोवर था, वह बहुत दिनों से सूखा था। अम्बिका के वहां पहुंचते ही वह पानी से भर गया पास ही एक सूखा हुआ पेड़ था वह भी हरा होगया। अम्बिका ने वहां बैठकर विश्राम किया। यहां पर शील और मुनि दान के प्रभाव से घर में सब बरतन वैसे ही भर गये जैसे पहले थे। और कई वस्तुएं सोने और सच्चे मोती रूप बन गईं। यह देखकर सास पछताने लगी और बहू को वापिस लाने के लिये उसने सोमभट्ट को दौड़ाया। सोमभट्ट को आता देखकर इस डर से कि कहीं यह मुझे मारने के लिये ही न आया हो, पुत्रों समेत अम्बिका कुए में कूद पड़ी।

दुर्जन खावें दही और सज्जन पावें भीने में तीर।
बुरों की संगति का यह फल है गांठ बांध लो इसको धीर॥

खराब पड़ौसन के कारण ही अम्बिका को इतना कष्ट सहना पड़ा। इसलिये बुरे पड़ौस को छोड़कर हम अच्छे पड़ौस मे रहना चाहिये।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ हमारे रहने के घर कैसे होने चाहिये ?
२ बुरे पड़ौस में रहने से क्या २ हानियां होती हैं ?
३ इस कथा से हम क्या शिक्षा मिलती है ?

१६—घर और पड़ौस (२)

सदाचारी, निर्धन, प्रशंसा।

अमृतसर के एक मुहल्ले मे एक बूढ़ा रहा करती थी। उस का पति १० वर्ष का एक लड़का छोड़कर मर गया था। बूढ़ा के पास एक गऊ थी। लड़का रोज गऊ को चराने के लिये बाहिर ले जाता और सांझ को वापिस घर ले आता था। दोनों समय का दूध बेच कर वह मा बेटा अपना निर्वाह करते थे। उनके पड़ौस में एक सेठ का घर था। सेठ का लड़का—शीतलदास—बड़ा सदाचारी था। जिस किसी निर्धन को देखता उसकी, जितनी उससे होती, सहायता करता।

एक दिन बुढ़िया का लड़का बीमार होगया। बुढ़िया बहुत घबराई। सोचने लगी, "दूध बेच कर गुजारा करती हू

पास पैसा नहीं लडके की दवादारू के लिये पैसे कहां से आयेंगे। दूध के दामों स तो भर पेट भोजन भी नहीं मिलता। अच्छा! कर्मों मे जो लिखा है वह तो सहना ही होगा।" विचारत २ उस याद आया कि पडोस में सेठ जी रहते हैं। उन ही स कुछ सहायता मांगू। यह सोचकर बाहर निकली। शीतलदास भी तब बाहिर ही खड़ा था। बुढिया को उदास देख कर कारण पूछा। बुढिया ने सारा हाल कह दिया। शीतलदास बोला—" माता चिन्ता न कर! पिता जी ने आज मुझे नया जूता खरीदने के लिये दो रुपये दिये हैं। मैं अभी वैद्य को बुला लाता हूं। एक रुपया उसकी फ़ीस द देना, और एक रुपया दवादारू में खर्च कर लेना।" बुढिया यह सुन कर बड़ी प्रसन्न हुई और शीतलदास की प्रशंसा करने लगी। सच है—अच्छे पड़ोस स सदा सुख ही मिलता है॥

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ इस कथा का सार कहो। बताओ इस स तुम्हें क्या शिक्षा मिलती है?

२०—आमदनी और खर्च

ऋण, स्थिति, द्रव्य, दुदशा।

हमारी आमदनी जितनी है इस बात का विचार कर के खाने पीने और कपडों आदि म खर्च करना चाहिये, जिस से

घर का काम सुख-पूर्वक चलता रहे। या यूं कहो कि बुढ़ापे के लिये भी कुछ बचा कर रखना चाहिये। आमदनी का विचार न करके दूसरों की देखा देखी खर्च बढ़ाते जाना अच्छा नहीं। इस से बाद में दुःख उठाना पड़ता है। सिर पर ऋण चढ़ जाता है जिस के कारण अपमान होता है। इस लिये सुखी रहने का यही उपाय है कि आमदनी के अनुसार ही खर्च करना चाहिये, और सादा जीवन बिताना चाहिये।

धनवान् होते हुए भी फटे पुराने चीथड़े पहिनना उचित नहीं। इस से भी लोगों में निरादर होता है। अपनी २ स्थिति और समय के अनुसार पोशाक पहननी चाहिये। राजगृही का मम्मन सेठ चौमासे या बरसात के दिनों में नदी में से चन्दन की लकड़ी निकाल कर लाया करता और उसे बेच कर रत्नों का एक बैल बनाता था। इतना द्रव्य पास होते हुये भी वह सदा घी, दूध से बिना निरस भोजन किया करता था।

एक दिन वह इसी प्रकार नदी में से लकड़ी निकाल रहा था। उस दिन बड़ी वर्षा हो रही थी। राजा श्रेणिक की स्त्री ने उसकी यह दशा देखी। उसने राजा से कहा—"आपके राज्य में ऐसे कङ्गाल आदमी भी हैं यह देख कर मुझे बड़ा दुःख होता है। इसलिये इसका दुःख दूर करना चाहिये।"

राजा ने तुरन्त ही उसको बुलाया। मम्मन सेठ अपनी उसी फटी-पुरानी पोशाक में राजा के सामने चला गया। राजा ने कहा—"तुम्हारी यह दुर्दशा देख कर दया आती है। तुम जिस वस्तु की जरूरत हो मांगलो।" यह सुन कर मम्मन सेठ ने कहा—"राजन्! आप की कृपा से मेरे पास सब कुछ है। फिर भी मैं एक बैल आप से मांगना चाहता हूँ। एक बैल तो मेरे पास है। बस जोड़ी बन जायगी।"

राजा ने कहा—"थान पर कई बैल खड़े हैं उन में से कौनसा पसन्द हो लेलो।" मम्मन बोला, "राजन्! ऐसा बैल मुझे नहीं चाहिए। जैसा बैल मेरे घर पर बँधा है वैसा बैल देने की कृपा करें।

राजा उसके घर गया और रत्नों के बैल देख कर हैरान हुआ। एक बैल तो पूरा था। दूसरा अधूरा था। राजा यह हाल देख कर मम्मन को समझाने लगा। पर आखिर सब बात अपना रंग ले रही। राजा के चित्त में मम्मन सेठ के लिये तिरस्कार उत्पन्न हुआ। मम्मन सेठ जैसा था वैसा ही बना रहा। क्योंकि—

> नीच निचाई नहीं तजे जो पावे सत संग।
> जैसे चन्दन बिरछ पर बिष नहिं तजत भुजंग

अन्त में मम्मन सेठ मर कर नरक में गया।

इसलिये आमदनी का विचार करके जहां तक हो सके धन को अच्छे कामों में खर्च करना चाहिये।

यह सम्पत किस काम की जन काहू न होय।
नित्य कमावे कष्ट कर विलसहि और हि कोय॥
तुलसी सो समरथ सुमति सुकृती साधु सुजान।
जो विचार व्यवहरत जग खर्च लाभ अनुमान॥

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ सम्मन सेठ की कथा सुनाओ। इस कथा से हम क्या शिक्षा ले सकते हैं?

२ दोहों का अर्थ करो।

सोना बना देता है, लोगों को धर्म का मार्ग बता कर उनको सुखी करेगा।" यह सुन कर राजा बड़ा प्रसन्न हुआ। और उस बालक का नाम पार्श्वकुमार रख दिया। यौवनावस्था को प्राप्त होने पर राजा प्रसन्नजित की कन्या प्रभावती से इनका विवाह हो गया।

एक दिन इन्होंने सुना कि नगर में एक 'कमठ' नामक तपस्वी आया हुआ है जो अपने चारों ओर आग जला कर तपस्या करता है और लोग उसे देखने को जाते हैं।

यह भी हाथी पर चढ़ कर गये। तपस्वी और उसकी तपस्या को देख कर उस से कहने लगे—"अरे! तू यह क्या कर रहा है। देख उस लकड़ी में सर्प जल रहा है।" लोग इधर उधर देखने लगे परन्तु किसी को सर्प दिखाई न दिया। फिर कुमार ने अपने एक नौकर से कहा—"कुल्हाड़ा लेकर उस लकड़ी को फाड़ो।" नौकर ने लकड़ी फाड़ी तो बीच में से सर्प निकला उस तड़पते हुए सर्प को श्री पार्श्वकुमार ने नमस्कार मन्त्र सुनाया जिस के प्रभाव से वह मर कर धरणेन्द्र हुआ। लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ। भगवान ने यह अपने ज्ञान से जान लिया था। अब कमठ पर से लोगों की श्रद्धा उठ गई।

कमठ को अपने मान-भङ्ग पर क्रोध हुआ। मर कर वह मेघमाली नाम का देवता बना।

कुछ समय बीतने पर श्री पार्श्वकुमार ने सोचा—" अब गृहस्थाश्रम में रहना ठीक नहीं। अब तो सन्यास लेकर जीवों को मोक्ष का सच्चा मार्ग दिखाना चाहिये।" यह विचार कर आपने एक वर्ष तक दान दिया और अन्त में माता पिता की आज्ञा लेकर ३०० पुरुषों के साथ पौष वदि एकादशी के दिन सन्यास धारण किया, अर्थात् दीक्षा ली।

फिर खूब तपस्या की। एक दिन जब श्री पार्श्वनाथ जी ध्यान में खड़े थे, उस समय मेघमाली देवता ने इन्हें इस अवस्था में देखा। देखते ही पिछला वैर याद आ गया। बड़े जोर के [illegible] से उसने भगवान पर खूब मूसलाधार वर्षा की। जल बड़ी जल्दी भगवान् के गले तक पहुंच गया। उसी समय धरणेन्द्र देवता ने देखा कि मेरे उपकारी भगवान् श्री पार्श्वनाथ जी को मेघमाली ने यह कष्ट दिया है। झट आकर, भगवान् को पानी से ऊपर उठाकर एक कमल के सिंहासन पर खड़ा किया और सर्प का रूप बना कर अपने ७ फनों से ऊपर सिर पर छाया की तथा कमठ को समझाया कि " तू यह क्या कर रहा है? प्रभु ने तुझ पर उपकार किया था और बदले में तू अपकार कर रहा है।" कमठ को लज्जा आई। भगवान से

अपने अपराध की क्षमा माग नमस्कार करके अपने स्थान को चला गया।

इसी प्रकार कठिन तपस्या करते २ उन्हें चैत्र वदि चतुर्दशी को केवल ज्ञान होगया। अब वह विचर कर लोगों को उपदेश देने लगे। लाखों जीवों का कल्याण किया और अंत में विक्रम सम्वत् से ८७० वर्ष पहिले १०० वर्ष की आयु पूरी करके श्रावण वदि अष्टमी के दिन समेत शिखर पर्वत पर निर्वाणपद प्राप्त किया।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ भगवान् की जीवनी का अपने शब्दों में वर्णन करो।

२–श्री नेमिनाथ जी

अधकवृष्णि, पराक्रमी, महत्त्वाकांक्षी।

मथुरा नगरी में यादव वंशी शूर नामक राजा था। उसके— शौरी और सुवीर—दो पुत्र थे। शौरी को राजगद्दी दे और सुवीर को युवराज बना राजा शूर ने संसार को त्याग कर दीक्षा ले ली। शौरी, अपने छोटे भाई सुवीर को मथुरा का राज्य देकर आप कुशावर्त्त देश में चला गया और वहां अपने नाम से शौरीपुर नगर बसा कर रहने लगा।

शौरी राजा के अन्धकवृष्णि आदि पुत्र हुये। अन्धकवृष्णि के १० पुत्र थे। सब से बड़े का नाम समुद्र विजय और सब से छोटे का नाम वसुदेव था। अन्धकवृष्णि ने समुद्र विजय को राज्य देकर स्वयं सुप्रतिष्ठित मुनि के पास दीक्षा ले ली।

राजा समुद्र विजय के शिवा देवी नामा पटरानी से श्रावण सुदी ५ के दिन पुत्र का जन्म हुआ। उसका नाम अरिष्टनेमि रक्खा गया। उसके शरीर पर शंख का लांछन था, और श्याम रंग था।

वसुदेव के दो स्त्रियों से दो पुत्र बलभद्र और कृष्ण थे। किसी कारण वश समुद्र विजय आदि यादव वंशी समुद्र के किनारे द्वारिका नगरी बसा कर अपने परिवार सहित रहने लगे।

कुछ समय के बाद कृष्ण (वासुदेव) और बलभद्र का राज्य समस्त आधे भरत में होगई।

नेमिकुमार के योग्य अवस्था प्राप्त करने पर समुद्र विजय ने इन का विवाह कर देने का प्रयत्न किया परन्तु वह विवाह करना नहीं चाहते थे। एक दिन मित्रों के साथ खेल खेल में ही इन्होंने श्रीकृष्ण का शंख जिसे कोई बजा नहीं सकते थे बजा दिया। [illegible] भी को [illegible] चिंतित हुये कि ऐसे बलशाली [illegible]
[illegible]
[illegible]

भोग में फस जायेंगे या संसार छोड़ कर चले जायेंगे। उन्होंने नेमिकुमार को विवाह कर लेने पर जोर दिया और राजा उग्रसेन की पुत्री राजिमति से इनका सम्बन्ध करा दिया। जब विवाह का समय आया तो श्री नेमिकुमार को ब्याहने के लिये अपने सम्बन्धियों के साथ श्रीकृष्ण बड़ी धूम धाम से चले।

श्रीनेमिकुमार ने श्वसुर गृह के निकट एक बाड़े में बन्द किये हुये कुछ पशु देखे जो कोलाहल कर रहे थे। कुमार ने पूछा "यह पशु किस लिये बन्द हैं?" रथवान ने उत्तर दिया "भगवन्! आप के साथ जो लोग बारात में आये हैं उनके भोजन के लिये यह पशु बन्द किये गये हैं।" इतना सुनते ही भगवान को बड़ा शोक हुआ और विचारने लगे--कि जिस खुशी के काम में इतने पशुओं का वध हो, वह खुशी किस काम की? ऐसे विवाह से कुछ लाभ नहीं। इस से अच्छा तो यही है कि संसार छोड़ कर दीक्षा ले लें।" यह विचारते ही रथवान को रथ वापिस फिरा लेने के लिये कह दिया।

वापिस घर आकर एक वर्ष तक दान दिया और ३०० वर्ष की आयु में श्रावण शुदि छठ के दिन १००० साथियों के साथ गिरनार पर्वत के पास सहस्राम्रवन में दीक्षा ली। और उसी जगह ५४ दिन के बाद आश्विन वदि अमावस्या को केवल ज्ञान प्राप्त किया। फिर ७०० वर्ष तक पृथ्वी को पावन

करते हुये अनन्त जीवों का कल्याण करते रहे और अन्त में १००० वर्ष की आयु पूर्ण कर के आषाढ सुदि ८ को ५३६ मुनियों सहित गिरनार पर्वत पर निर्वाण पद को प्राप्त किया। आप २२ वें तीर्थंकर थे।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ भगवान् की जीवनी का अपने शब्दों में कहो।

३—श्री नमि नाथ जी।

प्रेरणा, मार्गदीप।

मिथला नगरी में राजा विजय राज्य करता था। उसकी स्त्री का नाम वप्रा था। एक दिन राजा ने सुना कि शत्रुओं ने नगरी को घेर लिया है। रानी ने भी यह समाचार सुना। शत्रुओं को देखने के लिये वह महल पर चढी। उस समय वह गर्भवती थी। उस के गर्भ के प्रभाव से शत्रु हार गये और उन्हों ने राजा विजय के चरणों में आकर नमन किया। श्रावण वदि ८ मी को पुत्र उत्पन्न होने पर उस का नाम नमिनाथ रक्खा गया। उसका रंग सुवर्ण जैसा था और उसके शरीर पर नीले कमल का चिन्ह था।

यौवन अवस्था को प्राप्त कर कर पिता की आज्ञा से श्री नमिनाथ जी ने अनेक राजकन्याओं से विवाह किया और

२५०० वर्ष की आयु मे आप राज्यसिंहासन पर बैठे । पाच-हजार वर्ष तक राज्य करके लोकान्तिक देवता की प्रेरणा से सुप्रभ नामक अपने पुत्र को राज्य देकर आषाढ वदि नवमी को १००० राजपुत्रों के साथ दीक्षा ले ली—सन्यास व्रत ले लिया और तपस्या करने लगे।

मार्गशीर्ष मास की शुदि एकादशी के दिन भगवान को केवल-ज्ञान हुआ । और तत्पश्चात् विचर कर भगवान ने अनेक जीवों का उपकार किया ।

फिर अपने मोक्ष को समीप जान कर भगवान श्री समेत शिखर पर पधारे । वहा पर हजार मुनियो के साथ प्रभु ने अनशन व्रत लिया और एक मास बीतने पर वैशाख वदि दशमी को मुनियो के साथ दस हजार वर्ष की आयु भोग कर प्रभु मोक्ष पद को प्राप्त हुए । आप २१ वे तीर्थंकर हुये हैं ।

अभ्यास के लिये प्रश्न ।

१ भगवान् की जीवनी को अपने शब्दों में वर्णन करो ।

के रूप पुत्री रूप में उत्पन्न हुआ। माता पिता ने उसका नाम मल्लिकुमारी रक्खा क्योंकि जब वह गर्भ में थी तो उसकी माता को फूलों की माला की शय्या में सोने की इच्छा हुई थी। धमक पूर्व भव के मित्रों में से अचल का जीव साकेतपुर नगर में प्रति बुद्धि नामक राजा हुआ। धरण का जीव चंपा पुरी में चन्द्रछाय नामक राजा हुआ। पूरण का जीव श्रावस्ती नगरी में रुक्मी नामक राजा हुआ। वसु का जीव वाराणसी नगरी में शंख नामक राजा हुआ। वैश्रवण का जीव हस्तिनापुर में अदीन शत्रु नामक राजा हुआ। और अभिचंद्र का जीव कांपिलपुर में जित शत्रु नामक राजा हुआ।

अपने पूर्वभव के स्नेह के कारण छओं राजाओं ने मल्लिकुमारी का रूप देख कर उस पर मोहित हो राजा कुंभ के पास अपने दूत भेजे।

मल्लिकुमारी को भी इस बात का पता लगा और उसने उन सब को प्रति बोध करना चाहा। अपनी सोने की एक सुन्दर मूर्ति बनवा कर अशोक वाटिका में रखवी। ऊपर से सोने के एक कमल से सिर ढाक दिया। वह ढकना उठा कर हर रोज़ आहार में से एक ग्रास उस में डालती रही।

जब दूत पहुंचे तो राजा कुंभ ने उन का तिरस्कार कर दिया। तब छओं राजाओं ने कुंभ पर चढ़ाई कर दी।

मल्लिकुमारी ने उन सब को वाटिका में बुलाया और अपनी मूर्त्ति पर से ढकना उठा दिया । इसने दिनों से उन्द अन्न में से बड़ी दुर्गन्ध आने लगी । सब के सब नाक पकड़ कर भागने लगे । मल्लिकुमारी ने इस अवसर को उचित जान कर उनसे कहा—" मेरे पहिले भव के मित्रो ! विचार करो । जब तुम इतने थोड़े से अन्न की दुर्गन्ध को नहीं सहार सकते तब हाड मांस और रुधिर से पूर्ण इस शरीर के लिये क्यों लोभ करते हो ।" इतना सुनना था कि उन सब को जाति-स्मरण-ज्ञान होगया और अपना पूर्व भव याद आया । कहने लगे " हे प्रभु ! आप ने हमें दुर्गति में जाने से बचाया । अब हमें योग्य रस्ता बताइये । श्री मल्लिकुमारी ने " जब समय आवे तब दीक्षा ग्रहण करना " यह कह कर उन्हें विदा किया ।

कुछ समय के बाद बरसी दान देकर मार्गशीर्ष शुदि एकादशी के दिन ३०० के साथ मल्लिकुमारी ने दीक्षा ली । उसी दिन उन्हें केवल ज्ञान होगया । फिर श्री मल्लिनाथ प्रभु ने विहार करके अनेक जीवों का कल्याण किया ।

इसके बाद अपना निर्वाण समय समीप जान कर पांच सौ साधुओं और पांच सौ साध्वियों के साथ भगवान् समेत शिखर पर पहुंचे और अनशन व्रत करके फाल्गुण शुदि द्वादशी

के दिन ९५०००वर्ष की आयु पूर्ण करके अथ न निर्वाण पद को प्राप्त किया। यह १६ वें तीर्थंकर थे।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ भगवान् के चरित्र को अपने शब्दों में कहो।

६—श्री अरनाथ जी।

महोत्सव, चक्र, चक्रवर्ती, रत्नराशी, कार्त्तिक, समवसरण।

हस्तिनापुर के राजा सुदर्शन की स्त्री का नाम देवी था। उसने मगसिर शुदि चौदस के दिन एक पुत्र रत्न को जन्म दिया। बालक का जन्म महोत्सव किया और अरनाथ नाम रक्खा गया। क्योंकि जब यह गर्भ में ही थे तब इनकी माता को स्वप्न में चक्र दिखाई दिया था।

जब श्री अरनाथ जी की अवस्था २१००० वर्ष की हुई तब पिता ने इन्हें राज्य दे दिया। उतने ही वर्ष अर्थात् इक्कीस हजार वर्ष राज्य करने पर आयुधशाला में चक्र-रत्न उत्पन्न हुआ। प्रभु ने चारसौ वर्ष में ६ खण्ड को सिद्ध किया। और इक्कीस हजार वर्षों तक चक्रवर्ती की पदवी भोगी।

इतना समय बीत जाने पर सत्तरसौ चार दफा मार्गशीर्ष शुदि एकादशी के दिन प्रभु ने दीक्षा अङ्गीकार की, और

तपस्या करने लगे। २ वर्ष के बाद कार्त्तिक शुदि द्वादशी के दिन भगवान् को केवल ज्ञान हुआ। देवताओं ने समवसरण रचा और भगवान् ने सब जीवों को उपदेश दिया। और फिर विचर कर अनेक जीवों का कल्याण करने लगे।

अपने मोक्ष को समीप जान कर प्रभु श्री समेत शिखर पर पधारे। वहां एक हज़ार मुनियों के साथ अनशन व्रत ग्रहण किया। फिर एक मास बीतने पर मार्गशीर्ष शुदि दशमी के दिन ८४००० वर्ष की आयु पूर्ण करके भगवान् मोक्ष को प्राप्त हुए। यह १८ वें तीर्थंकर थे।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ भगवान् के जीवन को अपने शब्दों में सुनाओ।

७—श्री कुंथुनाथ जी।

चतुर्दशी, शान्तिक, प्रेरणा।

हस्तिनापुर में सूर नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम 'श्री' था। वैशाख वदि चतुर्दशी के दिन रानी से एक पुत्र-रत्न का जन्म हुआ। बालक अभी गर्भ में ही था कि इसकी माता ने स्वप्न में कुंथु नामक रत्नों का ढेर देखा, इसलिये पिता ने बालक का नाम भी कुंथु ही रख दिया।

यौवनावस्था को प्राप्त होने पर पिता की आज्ञा से उन्होंने अनेक कन्याओं के साथ विवाह किया। जन्म से २३७५०

वर्ष बीतने पर पिता ने उनको राज्य सौंप दिया। उतना ही और समय बीतने पर आयुध-शाला में चक्र रत्न उत्पन्न हुआ। राजा ने छःसौ वर्ष में ६ खण्ड को सिद्ध कर लिया। २३७५० वर्ष चक्रवर्ती की पृथ्वी भोग कर लौकान्तिक देवताओं की प्रेरणा से वर्षी दान दिया और तत्पश्चात् वैशाख वदि पञ्चमी के दिन एक हजार राजाओं के साथ दीक्षा ली, और तपस्या करने लगे।

१६ वर्ष के बाद चैत्र सुदि तीज के दिन भगवान् को केवल ज्ञान हुआ और देवताओं ने समवसरण की रचना की। वहां बैठ कर भगवान् ने उपदेश दिया।

अनुक्रम से पृथ्वीतल पर विहार करते करते भगवान् अनेक भव्य जीवों का उपकार करने लगे।

फिर भगवान ने अपना निर्वाण काल समीप जान कर समेतशिखर की ओर विहार किया। वहां पधार कर एक हजार मुनियों के साथ एक मास का अनशन व्रत करके वैशाख वदि प्रतिपदा के दिन प्रभु ने निर्वाण पद को प्राप्त किया। भगवान की आयु ९५००० वर्ष की थी और यह सत्रहवें तीर्थंकर थे।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ भगवान के चरित्र को याद करो।

३—सामान्य ज्ञान विभाग ।

१—जीव और अजीव ।

पदार्थ, शक्ति, त्रस, स्थावर, वनस्पति ।

ससार के जितने भी पदार्थ हैं वह दो प्रकार के हैं। एक तो वह जिनमें ज्ञान है, और देखने, जानने की शक्ति है—यथा मनुष्य, घोडा, चींटी इत्यादि यह सब जीव हैं। दूसरे वह जिन में ज्ञान नहीं यथा ईंट, पत्थर, लकडी इत्यादि, इनको अजीव कहते हैं।

जीव भी दो प्रकार के होते हैं—एक वह जो ससार से छूट गये हैं, जिन्हों ने मोक्ष (सच्चे सुख) को पा लिया है और जो लौट कर कभी ससार में नहीं आते—उन्हें मुक्त जीव या सिद्ध कहते हैं। दूसरे ससारी जीव—जो ससार में घूम रहे हैं और जन्म मरण के दुख उठा रहे हैं।

ससारी जीवों के फिर दो भेद हैं—त्रस और स्थावर।

जो जीव चल फिर सकते हैं, डरते हैं, भागते हैं और अपना खाना ढूँढते हैं जैसे लट, मक्खी, मनुष्य आदि—उन्हें त्रस जीव कहते हैं। और जो जीव पैदा होते हों, बढ़ते हों, मरते हों परन्तु अपने आप चल फिर न सकते हों यथा पृथ्वी (ज़मीन)

अप (पानी) तेज (आग) वायु (हवा) और वनस्पति (पेड़) यह स्थावर जीव कहलाते हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ संसार में पदार्थों के कितने भेद हैं?
२ जीव के कितने भेद हैं?
३ संसारी और मुक्तजीव किन्हें कहते हैं?
४ त्रस और स्थावरों में क्या भेद है?

२—इन्द्रियाँ।

जिह्वा, स्पर्शन, घ्राण, चक्षु।

पिछले पाठ में तुम पढ़ चुके हो कि जीव में देखने, जानने आदि की शक्ति होती है। आज तुम पढ़ोगे कि जीव यह सब काम कैसे करता है।

हर एक जीव के इन्द्रियाँ होती हैं। इन ही से वह देखता है, सुनता है, चखता है, सूँघता है और छूता है। यह सब काम एक ही इन्द्रिय नहीं करती। हर काम के लिये जुदी जुदी इन्द्रियाँ होती हैं। देखने के लिये आँखें, सुनने के लिये कान, चखने के लिये जिह्वा, सूँघने के लिये नाक और छूने के लिये सारा शरीर।

इससे तुम यह समझ गये होगे कि इन्द्रियाँ पाँच होती हैं —

१ स्पर्शन इन्द्रिय—(त्वचा, शरीर) इससे छू जाने से हलके, भारी, रूखे, चिकने, कड़े, नर्म, ठण्डे और गर्म का ज्ञान होता है।

२ रसना इन्द्रिय--(जिह्वा) जिससे चख कर खीचड़, कड़वा, कषायला, खट्टा, मीठा और खारा इन छहों रसों का (स्वाद का) ज्ञान हो।

३ घ्राण इन्द्रिय--(नासिका) जिससे सुगन्ध, दुर्गन्ध का पता लगे।

४ चक्षु इन्द्रिय--(आंख) इससे हम वर्ण--रूप--रङ्ग आदि को जान लेते हैं।

५ कर्ण इन्द्रिय--(कान) इससे सुन कर आवाज की पहचान होती है।

जिस जीव के जितनी इन्द्रिया होती हैं वह उतनी इन्द्रिया वाला जीव कहा जाता है।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१. इन्द्रियां कितनी होती हैं ?
२. हर एक इन्द्रिय क्या काम करती है ?

३—एकेन्द्रिय जीव।

देवीदास—चलो भीम ! ग्राम के बाहर खाई खुद रही है। वहां चल कर मिट्टी में खेलें।

भीम—नहीं भाई ! ताजी खुदी हुई मिट्टी में नहीं खेलना चाहिये क्योंकि उसमें जीव होता है।

देवीदास—मिट्टी के जीव की कितनी इन्द्रिया होती हैं ?

भीम—मिट्टी में केवल एक स्पर्शन (शरीर) इन्द्रिय होती है।

देवीदास—यह तुमने बहुत अच्छी बात कही। आदर्शों को ऐसी मिट्टी में नहीं खेलना चाहिये। भीम जी! भला यह तो बताओ संसार में कोई और भी एसे जीव हैं जिनके केवल एक ही (स्पर्शन) इन्द्रिय हो?

भीम—हां! जल, अग्नि, पवन, वनस्पति इत्यादि सब एकेन्द्रिय जीव हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ एकेन्द्रिय जीव कौन से हैं और उनके कौन सी इन्द्रिय होती है?

४—दो इन्द्रिय जीव।

उद्यान।

हरीश—माधव! हमारे उद्यान में आज बहुत साप निकल आये हैं। मैं वहां न जाऊंगा।

माधव—चलो, देखें तो सही—अरे यह सांप नहीं। यह तो गंडोये हैं।

हरीश—इन के नाक, कान, आंख क्यों नहीं?

माधव—यह दो इन्द्रिय जीव हैं इन के नाक, कान, आंख नहीं होती।

हरीश—इनके कौन कौन सी दो इन्द्रियां होती हैं?-

माधव—इनके शरीर और जिह्वा—यह दो इन्द्रिया होती हैं।

हरीश—किसी और दो इन्द्रिय जीव का नाम बताओ।

माधव—पूर (जैसे पानी में होते हैं) शख, कौडी, सीप, घोंघे।

अभ्यास के लिये प्रश्न।

१ दो इन्द्रिय जीव के कौनसी दो इन्द्रियां होती हैं ?

५—तीन इन्द्रियों वाले जीव।

मेघचन्द—अरे! यह हार में क्या फिर रहा है ?

किशोरीलाल—यह कीटी है।

मेघचन्द—कीडी की कितनी इन्द्रिया होती हैं ?

किशोरीलाल—तीन।

मेघचन्द—तुमने यह कैसे जाना ?

किशोरीलाल—क्यों! एक तो इनके शरीर इन्द्रिय है। यह मीठे पदार्थों पर आकर इकट्ठी हो जाती हैं इससे पता लगता है कि इनके जीभ अर्थात् रसना इन्द्रिय है। इनके आंखें नहीं होतीं यह मीठे को सूंघ कर वहा पहुँच जाती हैं। इसलिये इनके घ्राण इन्द्रिय होती है। कानखजूरा, खटमल, जूँ, दीमक, सुडी, मरोडा, बीरबहुटी आदि भी तीन इन्द्रिय जीव हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न।

१ तीन इन्द्रिय जीव के कौनसी इन्द्रियां होती हैं ?

६—चार इन्द्रियों वाले जीव ।

मोहन—आज हमने एक नई जाति का जीव देखा ।

केदार—वह जीव कैसा था ?

मोहन—उसके शरीर, जीभ, नाक, आंख सब कुछ थे पर कान नहीं थे ।

केदार—ऐसे तो बहुत जीव होते हैं । चींटी के भी तो कान नहीं होते ।

मोहन—अरे ! उसके तो कान, आंख दोनों इन्द्रियां नहीं होतीं । और जो जीव मैंने देखा है उसके तो कान ही नहीं और सब कुछ है ।

केदार—उस जीव का क्या नाम है ?

मोहन—उसका नाम मक्खी है । यह चार इन्द्रिय जीव है । बिच्छू, भौंरा, भिड़, शहद की मक्खी, मच्छर, टिड्डी आदि भी चार इन्द्रिय वाले जीव होते हैं ।

अभ्यास के लिये प्रश्न ।

१ चार इन्द्रिय जीव के कौनसी इन्द्रियां होती हैं ?

७—पाँच इन्द्रियों वाले जीव ।

केशव—यह तुम्हारे हाथ में क्या है ?

ज्ञानचन्द्र—यह लकड़ी है ।

केशव—तुमने यह क्यों पकड़ रक्खी है ?

ज्ञानचन्द्र—सामने यह गऊ आ रही है। उसे पीट कर परे हटाने के लिये।

केशव—अरे! आदमी होकर गऊ को पीटेगा?

ज्ञानचन्द्र—यह गऊ मरखनी गऊ है।

केशव—ना! यह ऐसी नहीं।

ज्ञान०—तुम्हें क्या खबर?

केशव—यह हमारी गऊ है। मैं इसका दूध पीता हू।

ज्ञान०—तब मैं इसे न पीटूगा।

केशव—नहीं! तुम्हें किसी भी गऊ को न सताना चाहिये। यह पचेन्द्रिय जीव हैं।

ज्ञान०—इसके कौनसी पाच इन्द्रिया होती हैं?

केशव—शरीर, जीभ, नाक, आख, और कान—यह पाचों इन्द्रिया गऊ में होती हैं।

ज्ञान०—पाच इन्द्रियो वाले और कौन से जीव होते हैं?

केशव—पशु, पक्षी, साप बन्दर, मछली और मनुष्य आदि यह सब पचेन्द्रिय जीव हैं।

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ पचेन्द्रिय जीव के कौनसी इन्द्रियां होती हैं? पचेन्द्रिय जीवों के उदाहरण दो।

८–जीव और उनकी इन्द्रिया

(कविता)

मट्टी में है इन्द्रिय एक, दो इन्द्रिया शख में देख।
तीन इन्द्रिय में कौड़ी जान, चार इन्द्रिय में मक्खी मान ॥ १ ॥
पाच इन्द्रियें गऊ में पायें, श्रावक उस न मार भगायें।
यह समझो तुम सारे बाल, जीव दया तुम पालो लाल ॥२॥

अभ्यास के लिये प्रश्न

१ इस कविता को या करो।

९–देव–दर्शन-विधि भाग (१)

स्वच्छ, उत्तरासग, निसहि, प्रदक्षिना।

पहली पुस्तक मे तुम पढ चुक हो कि दर्शन करने का अर्थ दूसरे के प्रति विनय दिखलाना और उसका मान करना होता है। दर्शन का दूसरा अर्थ सम्यक्त्व भी है। दर्शन करने से सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है और प्राप्त हुआ सम्यक्त्व निर्मल होता है।

श्री मन्दिर जी मे देव दर्शन करने के लिये जाते समय सम्पूर्ण और स्वच्छ वस्त्र पहन कर उत्तरासग करके जाना चाहिये। क्योंकि प्रभु तो राजा और इन्द्रों से भी बड़े हैं इस लिये उनके सामने ऐसे वैसे (अशुद्ध) वस्त्रों समेत नहीं जाना चाहिये

मंदिर जी के पहिले दरवाज़े में प्रवेश करते ही पहिली निसीहि[1] कहनी चाहिये। इस समय अपने घरबार व शरीर का मन में विचार न होना चाहिये परन्तु यदि मंदिर जी का कोई काम होय तो उस पर ध्यान दे सकते हो और मंदिर जी में जहां कहीं कूड़ा कचरा जाला आदि दिखाई दे उसे भी यत्नापूर्वक दूर कर सकते हो।

जब प्रभु प्रतिमा दूर से ही नजर आने लग जायें तब दोनों हाथ जोड़ कर "नमोजिणाण"[2] कहना चाहिये। फिर प्रभु जी की दाईं तरफ़ से उनकी तीन प्रदक्षिणा देनी चाहियें जिस से हमारा संसार में बार २ आना जाना कम हो और अपने अन्दर श्रद्धा, विवेक और सदाचार प्रगट हो।

फिर जिस जगह भगवान् विराजमान हों उसके बीच के द्वार पर (मूल गभारे) के पास पहुंच कर दूसरी 'निसीहि' कहनी चाहिये, और झुक कर "जगत्त्रयाधार[3] तुभ्य नमः" यह कह भगवान् को नमस्कार करना चाहिये। दूसरी निसीहि कहने से मंदिर सम्बन्धी काम काज का त्याग होता है और दर्शन करने का काम आरम्भ होता है।[4] दर्शन करते समय पुरुषों को प्रभु की दाईं तरफ़ और स्त्रियों को बाईं तरफ़ खड़े होना चाहिये और वहां मीठे स्वर, और शान्त चित्त के साथ श्लोक या दोहा आदि बोल कर प्रभु का गुण कीर्तन करना चाहिये।

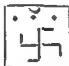
---

१ त्याग। २ "नमो जिनाय" अर्थात् राग-द्वेष को जीतने वाले भगवान् को नमस्कार हो। ३ (स्वर्ग, नरक, और पाताल यह) तीन जगत् के आधार प्रभु जी ! आप को नमस्कार हो। ४ यदि पूजा करने के लिये आया तो मूल गभारे में प्रवेश करते दूसरी निसीहि कहो और पूजा का काम प्रारम्भ करदो

१०–देव दर्शन-विधि भाग (२)

नैवेद्य।

प्रभु के गुण गान करने के बाद चैत्य वंदन करने के स्थान पर आकर उत्तरासन से हो भूमि को तीन बार पूंज कर, बैठकर पाट पर स्वच्छ अखण्ड चावलों से बड़ा सुन्दर साथिया करना चाहिये। पहिले तीन ढेरियां करनी चाहियें और उसके नीचे साथिया करना चाहिये। और उसके ऊपर सिद्ध-शिला तथा सिद्ध-स्थान बनाने चाहियें। जैसे —



साथिया और सिद्ध स्थान पर नैवेद्य (बताशे, पेड़े आदि) तथा फल (सुपारी नारियल आदि) चढ़ाने चाहियें। नैवेद्य और फल अच्छे होने चाहियें। क्योंकि भगवान् के आगे जो कुछ भी चढ़ाया जाय वह सब शुद्ध और अच्छी वस्तु होनी चाहिये।

साथिया करके उस पर दृष्टि रख कर दोनों हाथ जोड़ कर प्रभु से यह प्रार्थना करनी चाहिये "हे प्रभु! ज्ञान दर्शन और चारित्ररूप यह तीन रत्न देकर और देव, मनुष्य तिर्यंच, और नरक–यह चार गतियों से छुड़ा कर मुझे ऐसी शक्ति दीजिये जिस से मैं सिद्ध स्थान को प्राप्त कर सकूं"। पूजा करने वाला पूजा करके पीछे उपरोक्त विधि करे और बाद में चैत्य वंदन करे।

११–देव-दर्शन विधि भाग (२)

कायोत्सर्ग।

फिर तीसरी " निसीहि " कह कर समाप्त कर चैत्यवन्दन करना चाहिये। इस निसीहि से दर्शन अथवा पूजा करने के काम का त्याग होता है और चैत्यवन्दन का काम आरम्भ होता है। चैत्यवन्दन विधि-पूर्वक करना चाहिये। इधर उधर किसी तरफ भी ध्यान न करके केवल प्रभु के मुख पर ही दृष्टि रखनी चाहिये। चैत्य-वंदन में स्तवन एक मधुर स्वर से कहना चाहिये जिसे सुनकर दूसरों को भी आनन्द मिले। स्तवन में प्रभु के गुणों का वर्णन होना चाहिये। (जिस स्तवन या भजन में तीर्थस्थल, तिथि माहात्म्य आदि का वर्णन हो वह भजन या स्तवन मंदिर जी में नहीं कहना चाहिये। वह यात्रा में या प्रतिक्रमण करते समय कहना चाहिये)। स्तवन बहुत ऊंचे स्वर से न गाकर धीरे धीरे कहने चाहियें जिससे शान्ति के साथ गाते हुये दूसरे किसी मनुष्य को बाधा न पहुंचे।

कायोत्सर्ग (काउस्सग्ग) करते हुये दृष्टि या तो नाक के सिरपर रखनी चाहिये या प्रभु जी पर।

चैत्यवंदन के समाप्त हो जाने पर देव दर्शन का काम भी समाप्त हो जाता है। फिर यह दिखलाने के लिये "हे प्रभु! आप ही मेरे सच्चे देव हो" धीरे धीरे घंटा बजाना चाहिये। जिससे दूसरों को बाधा न पड़े।

बाहर निकलते हुए पिछले ही पैरों से निकलना चाहिये। कि जिससे प्रभु जी की ओर पीठ न हो।

मंदिर जी में आते जाते मार्ग को देख कर चलना चाहिये। ऐसा न हो कि कहीं ठोकर लग जाय, या कांटा ही चुभ जावे या कोई जीव जन्तु ही पाव के नीचे आजाय।

१२—जिन-पूजा भाग (१)

पूजा करने वाले को शुद्ध जल से स्नान करके पूजा करनी चाहिये। पूजा के वस्त्र शुद्ध साफ और सफेद होने चाहियें। पूजा करते समय नासिका तक आठ तहों वाला मुखकोश बाधना चाहिये। फिर बड़े विवेक और शुद्धता के साथ चन्दन घिस कर उस में पवित्र केसर और बरास (भीमसेनी कपूर) आदि वस्तुए मिला लेनी चाहियें। इस में से एक कटोरी में अलग चन्दनादि लेकर अपने मस्तक, गले, छाती और नाभि पर तिलक करना चाहिये। फिर दूसरी कटोरी में चन्दनादि लेकर मूल गभारा में जाना चाहिये।

प्रभु के ऊपर से गहने, आगी, फूल आदि उतारने चाहियें (उतर हुये फूलों को ऐसी जगह पधराना चाहिये जहा उन पर किसी का पैर न आवे)। फिर मोरपींछी से पूज कर पंचामृत (गऊ का दूध, दही, घी, मिश्री, और पानी) से कलश भर कर, और "ओं ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्म जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय जल यजामहे स्वाहा" यह मन्त्र कहकर प्रभु का प्रक्षाल करना चाहिये। फिर एक पात्र म

पानी लेकर उस में एक छोटा सा कपड़ा भिगो भिगो कर उस से चंदन आदि साफ कर लेना चाहिये। फिर जहां हाथ न फिर सके ऐसे स्थान पर खस की कूंची से प्रतिमा जी को धीरे धीरे ज़रूर साफ करना चाहिये और शुद्ध पानी से प्रक्षाल करना चाहिये। फिर तीन अङ्गलूहणों (कपड़ों) से प्रभु के अङ्ग को उपयोग सहित धीरे धीरे साफ करना चाहिये। न्हवन का जल ऐसी जगह डालना चाहिये जहां किसी का पैर न आवे और जल्दी सूख जावे।

१३—जिन-पूजा भाग (२)

पूर्वोक्त विधि से जल पूजा करके शुद्ध चन्दनादि से प्रभु के अंगूठा, जानु, कर, अंश, मस्तक, भाल, कण्ठ, उर और उदर नव अंगों पर १३ तिलक करने चाहिये। साथ साथ मन्त्र बोलते रहना चाहिये। पूजा करते समय कुछ बोलना नहीं चाहिये। फिर मन्त्र बोल कर पुष्प पूजा करनी चाहिये। पुष्प भी शुद्ध होने चाहिये। माली आदि से लिये होवें तो उन पर पानी छिड़क लेना चाहिये फूलों की पखड़ियां आदि टूटी हुई न हों पुष्प सम्पूर्ण हों। फिर मन्त्र बोल कर धूप पूजा करनी चाहिये। धूप पूजा करके धूपदानी को प्रभु की बाईं ओर कुछ दूर फ़ासले पर रख देना चाहिये।

फिर घी का दीपक जलाकर दीपक पूजा करनी चाहिये और पूजा करके दीपक प्रभु की दाईं ओर लालटेन (फ़ानूस) में रख देना चाहिए।

प्राय प्रभु की पूजा ८ वस्तुओं से की जाती है जिन में से ५ का तो ऊपर बयान हो चुका है। और बाकी तीन (अक्षत, नैवेद्य, और फल) चैत्य वंदन करते समय साथिये पर चढ़ाई जाती हैं।

पहिली तीन वस्तुएं (जल, चन्दन, और पुष्प) प्रभु जी के अङ्ग पर चढ़ाई जाती हैं इसलिये उनको अंग पूजा में गिनते हैं और बाकी ५ वस्तुएं आगे चढ़ाई जाती हैं इसलिये उनका समावेश अग्र पूजा में होता है और चैत्य वंदन द्वारा जो प्रभु के गुण गाये जाते हैं उसे भाव पूजा कहते हैं। यह तीन प्रकार की पूजा किये बाद प्रभु को चामर डुलाना चाहिये।

इस प्रकार विधिपूर्वक पूजा करने से प्रभु के गुण हमारे अन्दर भी आते हैं और हम उनकी तरह तीन जगत् में पूज्य हो सकते हैं।

१४—जिन पूजा के हेतु।

मिथ्यात्व, अत्यय।

जिन कारणों से प्रभु जी की पूजा की जाती है उसे हेतु कहते हैं।

१ आत्मा के साथ लगी हुई कर्म रूपी मैल दूर हो जावे, इस हेतु से जल पूजा की जाती है।

२ आत्मा के साथ लगा हुआ क्रोध, अहंकार, कपट और लोभरूपी ताप भी दूर होजाय और आत्मा में शान्ति आय इसलिये चन्दन पूजा की जाती है।

३ आत्मा से मिथ्यात्व और दूसरे दुर्गुणों की दुर्गन्ध दूर हो जावे और आत्मा में सुगंध उत्पन्न हो इसलिये पुष्प पूजा की जाती है।

४ जिस प्रकार धूप का धुआं ऊपर जाता है इसी प्रकार मेरी आत्मा भी कर्म–रूपी ईंधन को जलाकर ऊर्ध्व गति को प्राप्त हो इसलिये धूप पूजा की जाती है।

५ मेरी आत्मा का अज्ञान रूपी अन्धकार दूर हो जाय और उसमें प्रकाश उत्पन्न हो इसलिये दीपक पूजा की जाती है।

६ मेरी आत्मा भी अक्षय पद को प्राप्त हो इसलिये अक्षत पूजा की जाती है।

७ मेरी आत्मा अनाहारी (मोक्ष) पद को प्राप्त हो इस कारण से नैवेद्य पूजा की जाती है।

८ मोक्ष-रूपी फल की प्राप्ति के निमित्त फल पूजा की जाती है।

संक्षेप में इस ८ प्रकार की पूजा से आठ कर्मों से रहित हो कर मोक्ष प्राप्त होती है।

अभ्यास के लिये प्रश्न।

१ जिन पूजा के हेतु बताओ।

१५—आरती और मंगल दीवा।

आरात्रिक, सृष्टि, संहार।

भगवान् की पूजा में दीपक पूजा करते समय मंगल दीवा उतारा जाता है। इससे अपना कल्याण होता है। सायंकाल में आरती और मङ्गल दीवा उतारे जाते हैं। आरती को शास्त्र में आरात्रिक कहा है। इससे अपने शरीर और मन की पीड़ा दूर होती है। मन को शान्ति मिलती है।

आरती में ५ या ७ घी के दीपक होते हैं। मङ्गल दीवे में एक ही दीपक होता है। पहिले मङ्गल दीवा प्रगट किया जाता है फिर आरती। आरती में शक्ति अनुसार कुछ द्रव्य डालना चाहिये। शान्ति और गम्भीरता के साथ अपनी बाईं ओर से आरती को ऊपर ले जा कर दाईं ओर से नीचे उतारना चाहिये। इस रीति को "सृष्टि" कहते हैं। इस से हमें सुख मिलता है। इस से उल्टी रीति से आरती उतारने का नाम संहार है, ऐसा करना उचित नहीं। आरती उतार कर पाट आदि पर रख

दनी चाहिये, या नटा दनी चाहिये।

फिर इसी प्रकार मङ्गल दीवा उतारना चाहिये। और यह प्रभु के आगे रख देना चाहिये। उसे चढाना नहीं चाहिये। मङ्गल दीवा उतारते समय उसमें कपूर (मुश्क, काफूर) प्रगट करना चाहिये।

आरती और मङ्गल दीवा उतारते समय इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि यह अपनी नाभि से नीचे और भगवान् से ऊँचे न जावे। और साथ ही साथ आरती और मङ्गल दीवे का पाठ पढ़ते जाना चाहिये और नगारा, झैना, घण्टा, घड़ियाल आदि का शब्द भी साथ साथ होना चाहिये।

१६—चौदह स्वप्न (१)

सदा से संसार में यह नियम चला आ रहा है कि जब किसी महापुरुष के इस संसार में आने का समय होता है तब उसके कुछ चिन्ह पहले से दिखाई दे जाते हैं। इसी भांति जब तीर्थंकर होने वाला जीव गर्भ में आता है तब उसकी माता को चौदह स्वप्न आते हैं।

सब तीर्थंकरों की माताओं को एक ही से स्वप्न आते हैं। स्वप्न में जो वस्तुएं देखने में आती हैं उनका क्रम भी समान

७—प्राणियों का पारम्परिक वैर भाव नष्ट हो जाता है।

८—मरी का रोग नहीं फैलता।

९—अति वृष्टि-आवश्यकता से ज्यादा बारिश नहीं होती है।

१०—अनावृष्टि बारिश का अभाव नहीं होता है।

११—दुर्भिक्ष नहीं पड़ता है।

१२—स्वचक्र राजा या किसी दूसरे राजा की फौज का जोर का भय नहीं रहता है अर्थात् उपद्रव नहीं होता है।

१३—चार वचन ऐसे होते हैं कि, जिन्हें देवता, मनुष्य और

---

* वचन ३५ गुण वाले होते हैं—(१) सब जगह समझे जा सकते हैं। (२) एक योजन तक वे सुनाई देते हैं। (३) प्रौढ़ (४) मेघ के समान गम्भीर (५) सुस्पष्ट शब्दों में (६) सन्तोषकारक (७) हर एक सुनने वाला समझता है कि ये वचन मुझी को कहे जाते हैं (८) पुष्ट आशय वाले (९) पूर्वापर विरोध रहित (१०) महापुरुषों के योग्य (११) सन्देह विहीन (१२) दूषण रहित अर्थ वाले (१३) कठिन विषय को सरलता से समझाने वाले (१४) जहाँ जैसे शोभे वहाँ वैसे बोले जा सकें (१५) षट् द्रव्य और नौ तत्वों को पुष्ट करने वाले (१६) हेतु पूर्ण (१७) पद रचना सहित (१८) छः द्रव्य और नौ तत्त्वों की पटुता सहित (१९) मधुर (२०) दूसरे का मर्म मन में न आवे ऐसे चतुराई वाले (२१) धर्म अर्थ प्रतिबद्ध (२२) दीपक के समान प्रकाश अर्थ सहित (२३) पर निन्दा और स्वप्रशंसा रहित (२४) कर्ता कर्म क्रिया काल और विभक्ति सहित (२५) आश्चर्यकारी (२६) उनका सुनने वाला समझे कि वक्ता सर्वगुण सम्पन्न है (२७) धैर्य वाले (२८) विलम्ब रहित (२९) भ्रान्ति रहित (३०) प्रत्येक अपनी २ भाषा में समझ सकें ऐसे (३१) शिष्ट बुद्धि उत्पन्न करने वाले (३२) पदों के अर्थ अनेक तरह से विशेष रूप से बोले जायँ ऐसे (३३) साहस पूर्ण (३४) पुनरुक्ति दोष रहित और (३५) सुनने वाले को दुःख न हो।

तिर्यंच सब अपनी २ भाषा में समझ लेते हैं।

१४—एक योजन तक उनके वचन समान रूप से सुनाई देते हैं।

१५—सूर्य की अपेक्षा बारह गुणा अधिक वजन भामण्डल का तेज होता है।

१६—आकाश में धर्म-चक्र होता है।

१७—बारह जोड़ी (चौबीस) चँवर शरीर ढुलाये ढुलते हैं।

१८—पादपीठ सहित स्फटिक रत्न का उज्ज्वल सिंहासन होता है।

१६—प्रत्येक दिशा में तीन तीन छत्र होते हैं।

२०—रत्नमय धर्मध्वज होता है। इसको इन्द्र ध्वजा भी कहते हैं।

२१—नौ स्वर्ण कमल पर चलते हैं (दो पर पैर रखते हैं) सात पीछे रहते हैं। जैसे जैसे आगे बढ़ते जाते हैं वैसे ही वैसे देवता पिछले कमल उठा कर आगे रखते जाते हैं।

२२—मणि का, स्वर्ण का और चांदी का, इस तरह तीन गढ़ होते हैं।

२३—चार मुँह से देशना—धर्मोपदेश—देते हैं। (पूर्व दिशा में भगवान् बैठते हैं और शेष तीन दिशाओं में व्यन्तर देव तीन प्रतिबिंब रखते हैं।)

२४—उनके शरीर प्रमाण से बारह गुणा अशोक वृक्ष होता है। वह छत्र, घंटा और पताका आदि से युक्त होता है।

२५—काँटे अधोमुख—उल्टे हो जाते हैं।
२६—चलते समय वृक्ष भी झुक कर प्रणाम करते हैं।
२७—चलते समय आकाश में दुन्दुभि बजती है।
२८—योजन प्रमाण में अनुकूल वायु होता है।
२९—मोर आदि शुभ पक्षी प्रदक्षिणा देते फिरते हैं।
३०—सुगन्धित जल की वृष्टि होती है।
३१—जल स्थल में अद्भुत पाँच वर्ण वाले सचित्त पुष्पों की, घुटने तक आजाँय इतनी, वृष्टि होती है।
३२—केश, रोम, डाढ़ी, मूँछ और नाखून (दीक्षा लेने के बाद) बढ़ते नहीं हैं।
३३—कम से कम चार निकाय के एक करोड़ देवता पास में रहते हैं।
३४—सब ऋतुएँ अनुकूल रहती हैं।

१९—अतिशय (२)

इनमें से प्रारम्भ के चार (१-४) अतिशय जन्म ही से होते हैं इस लिये ये स्वाभाविक—*सहजातिशय* या *मूलातिशय* कहलाते हैं।

फिर ग्यारह (५-१५) अतिशय केवल ज्ञान होने के बाद उत्पन्न होते हैं। ये '*कर्मक्षयातिशय*' कहलाते हैं। इन में से

मान (६-१७) उपद्रव, तीर्थंकर विहार करते हैं, तब भी नहीं होते हैं यानी विहारमें भी इनका प्रभाव वैसा ही रहता है।

अवशेष उन्नीस (१६ ३८) देवता करते हैं इसलिए वे 'देवकृतातिशय' कहलाते हैं।

ऊपर जिन अतिशयों का वर्णन किया गया है उन्हीं शास्त्रकारों ने संक्षेप में चार भागों में विभक्त कर दिया है। जैसे-(१) अपायापगमातिशय (२) ज्ञानातिशय (३) पूजातिशय, और (४) वचनातिशय। १ जिनसे अपायों का नाश होता है उन्हें 'अपायापगमातिशय' कहते हैं। ये दो प्रकार के होते हैं। स्वाश्रयी और पराश्रयी।

(अ) जिन से अपने सम्बन्ध के अपाय द्रव्य से और भाव× से नष्ट होते हैं वे 'स्वाश्रयी' कहलाते हैं।

(ब) जिन से दूसरों के उपद्रव नष्ट होते हैं उन्हें 'पराश्रयी अपायापगमातिशय' कहते हैं। अर्थात् जहां भगवान विचरण करते हैं वहां से प्रत्येक दिशा में सवासौ योजन

तक प्राय रोग, मरी, वैर, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष आदि उपद्रव नहीं होते हैं।

३—ज्ञानातिशय—इस से तीर्थंकर लोकालोक का स्वरूप भली प्रकार से जानते हैं। भगवान को केवल ज्ञान होता है इस से कोई भी बात उन से छिपी हुई नहीं रहती है।

४—पूजातिशय—इससे तीर्थंकर सर्व पूज्य होते हैं। देवता, इन्द्र राजा, महाराजा, बलदेव, वासुदेव, चक्रवर्ती आदि सभी भगवान की पूजा करते हैं।

५—वचनातिशय—इस से देव तिर्यंच और मनुष्य सभी भगवान की वाणी को अपनी २ भाषा में समझते हैं। इसके ३५ गुण होते हैं। जिनका वर्णन तेरहवें अतिशय के कुछ नोट में किया जा चुका है।



४—सूत्र विभाग ।

(१) नमस्कार मन्त्र ।

नमो अरिहंताणं, नमो सिद्धाणं, नमो आयरियाणं।
नमो उवज्झायाणं, नमो लोए सव्व साहूणं ॥ १ ॥
एसो पंच नमुक्कारो, सव्व पावप्पणासणो।
मङ्गलाणंच सव्वेसिं पढमं हवई मङ्गलं ॥ २ ॥
नमोऽर्हद्भ्यः । नमः सिद्धेभ्यः । नमः आचार्येभ्यः ।
नमः उपाध्यायेभ्यः । नमो लोके सर्व साधुभ्यः ॥ १ ॥
एष पञ्चनमस्कारः सर्वपापप्रणाशनः ।
मङ्गलानां च सर्वेषां प्रथमं भवति मङ्गलम् ॥ २ ॥

अरिहन्तों को नमस्कार, सिद्धों को नमस्कार, आचार्यों को नमस्कार, उपाध्यायों को नमस्कार और लोक में ढाई द्वीप में (वर्तमान) सब साधुओं को नमस्कार हो ॥ १ ॥

यह पाँचों को किया हुआ नमस्कार सब पापों का नाश करने वाला और सब मङ्गलों में पहला—मुख्य मङ्गल है ॥ २ ॥

---

(२) पंचिंदिय सूत्र ।

पंचिंदियसंवरणो, तह नवविहबंभचेरगुत्तिधरो ।
चउविहकसायमुक्को इअ अट्ठारसगुणेहिं संजुत्तो ॥१॥
पञ्चेन्द्रियसंवरणस्तथा नवविधब्रह्मचर्यगुप्तिधरः ।
चतुर्विध कषायमुक्तः इत्यष्टादशगुणैस्संयुक्तः ॥ १ ॥

पांच इन्द्रियों[1] का संवरण-निग्रह करने वाला, तथा नव[2] प्रकार की ब्रह्मचर्य की गुप्ति को धारण करने वाला, चार[3] प्रकार के कषाय से मुक्त, इस प्रकार अठारह गुणों से संयुक्त ।१।

पंचमहव्वयजुत्तो पंचविहायारपालणसमत्थो ।
पंचसमिओ तिगुत्तो छत्तीस गुणो गुरु मज्झ ॥२॥

पञ्चमहाव्रतयुक्तः पञ्चविधाचारपालनसमर्थः ।
पञ्चसमितः त्रिगुप्तः षट्त्रिंशद् गुणो गुरुर्मम ॥ २ ॥

पांच महाव्रतों[4] से युक्त, पांच[5] प्रकार के आचार को

नोट-१ शरीर जीभ नाक आंख और कान।

२ स्त्री पशु या नपुंसक जहां न हों वहां रहना ॥ १ ॥
स्त्री के साथ प्रेम पूर्वक बात चीत न करना ॥ २ ॥
जहां स्त्री बैठी हो उस जगह पर पुरुष ४८ मिनट और पुरुष जहां बैठा हो उस आसन पर स्त्री ३ पहर तक न बैठे ॥ ३ ॥
स्त्री के शरीर को प्रेम की दृष्टि से न देखे और नाही चिन्तन करे ॥४॥
रस पूर्ण भोजन का त्याग करना ॥ ५ ॥
अधिक भोजन न करना ॥ ६ ॥
दीक्षा लेने से पहिले यदि भोग विलास किया हो तो उसका चिन्तन न करे ॥ ७ ॥
अधिक घी दूध वाली खुराक न खाय ॥ ८ ॥
और शरीर की शोभा और सौंदर्य न करे ॥ ९ ॥
(समवायांगसूत्र ९ पृष्ठ १५ [illegible])

उक्त गुप्तियां जैन सम्प्रदाय में 'ब्रह्मचर्य की बाड़' के नाम से प्रसिद्ध हैं,

३ क्रोध मान माया लोभ।

४ अहिंसा जीव की रक्षा, सत्य "सत्य वचन बोलना" अस्तेय 'साधु के [illegible] वस्तु को बिना दिये न लेना' ब्रह्मचर्य पालना और सर्व परिग्रह का त्याग।

५ ज्ञान पढ़े पढ़ावे, सम्यक्त्व पाले पलावे, चारित्र पाले पलावे, तप करे करावे और धर्म के काम में अपनी शक्ति का उपयोग करे।

पालन करने में समर्थ, पाँच समितियों[६] से युक्त, तीन गुप्तियों[७] से युक्त (इस तरह कुल) छत्तीस गुण-युक्त मेरा गुरु है ॥२॥

३—खमासमणा सूत्र।

इच्छामि खमासमणो! वंदिउं जावणिज्जाए।
निसीहिआए, मत्थएण वंदामि।

[इच्छामि क्षमाश्रमण! वन्दितुं यापनीयया।
नैषेधिक्या मस्तकेन वन्दे ॥]

हे क्षमाश्रमण-क्षमाशील तपस्विन्! सब पाप-कार्यों को निषेध करके (मैं) शक्ति के अनुसार वन्दना करना चाहता हूँ (और) मस्तक से वन्दना करता हूँ।

४—सुगुरु को सुखशान्ति पृच्छा।

इच्छाकारी सुहराइ सुहदेवसि सुखतप शरीर निराबाध सुख संयम यात्रा निर्वहते हो जी। स्वामिन्! शान्ति है? आहार पानी का लाभ देना जी।

चलते समय साढ़े तीन हाथ दूर तक देख कर चले—ईर्या समिति। पाप वाली और कठोर भाषा न बोले—भाषा समिति। दूषण रहित आहार आदि ग्रहण करे—एषणा समिति। वस्त्र पात्रादि दूसरी वस्तुएँ उपयोग पूर्वक ले और रखे—आदान निक्षेप समिति। मल मूत्रादि को त्रस जीव रहित भूमि पर डाले—परिष्ठापना समिति।

७ मन में बुरा विचार न करे—मनो गुप्ति।
बिना कारण न बोले—वचन गुप्ति।
शरीर का हिलाना पड़े तो पूँज कर हिलावे—काया गुप्ति।

मैं समझता हूँ कि आपकी रात सुख-पूर्वक बीती होगी, दिन भी सुख-पूर्वक बीता होगा, आपकी तपश्चर्या सुख-पूर्वक पूर्ण हुई होगी, आपके शरीर को किसी तरह की बाधा न हुई होगी और "सब आप संयम यात्रा को अच्छी तरह निबाह" करते होंगे। हे स्वामिन्! कुशल है। अब मैं प्रार्थना करता हूँ कि आप आहार पानी लेकर मुझको धर्म-लाभ देवें।

५—इरियावहिय सूत्र।

इच्छाकारेण संदिसह भगवन्।
इरियावहियं पडिक्कमामि। इच्छं।

[इच्छाकारेण सन्दिशथ भगवन्!
ईर्यापथिकीं प्रतिक्रामामि। इच्छामि।]

हे गुरु महाराज! इच्छा से—इच्छा पूर्वक आज्ञा दीजिये (जिससे मैं) ईर्यापथिकी क्रिया का प्रतिक्रमण करूँ। आज्ञा प्रमाण है।

इच्छामि पडिक्कमिउं इरियावहियाए विराहणाए। गमणागमणे पाणक्कमणे बीयक्कमणे, हरियक्कमणे ओसा उत्तिंग पणग दग मट्टी मक्कडासंताणा संकमणे जे मे जीवा विराहिया एगिंदिया बेइंदिया, तेइंदिया, चउरिंदिया पंचिंदिया, अभिहया, वत्तिया, लेसिया, संघाइया, संघट्टिया, परियाविया, किलामिया

उद्दविया ठाणाओ ठाणं संकामिया, जीवियाओ ववरोविया तस्स मिच्छा मि दुक्कडं ।

[इच्छामि प्रतिक्रमितुं ईर्यापथिकाया विराधनाया । गमनागमने, प्राणाक्रमणे, बीजाक्रमणे, हरिताक्रमणे, अवश्यायोत्तिङ्गपनकोदक-मृत्तिकामर्कटसन्तानसंक्रमणे ये मया जीवा विराधिता—एकेन्द्रिया, द्वीन्द्रिया, त्रीन्द्रिया, चतुरिन्द्रिया, पञ्चेन्द्रिया, अभिहता, वर्तिता, श्लेषिता, संघातिता, संघट्टिता, परितापिता, क्लामिता, अवद्राविता, स्थानात् स्थानं संक्रामिता, जीवितात् व्यपरोपिता-स्तस्य मिथ्या मम दुष्कृतम् ।]

ईर्यापथ-सम्बन्धिनी-रास्ते पर चलने आदि से होने वाली विराधना से निवृत्त होना—हटना व बचना चाहता हूँ [यथा] मैंने जाने आने में, किसी प्राणी को दबा कर, बीज को, दबा कर, वनस्पति को दबा कर [या] ओस, चींटी के बिल, पांच रङ्ग की काई, पानी, मिट्टी और मकड़ी के जालों को खूँद व कुचल कर जिस किसी प्रकार के—एक इन्द्रिय वाले, दो इन्द्रिय वाले, तीन इन्द्रिय वाले, चार इन्द्रिय वाले, [या] पांच इन्द्रिय वाले—जीवों को पीड़ित किया हो, चोट पहुँचाई हो, धूल आदि से ढाका हो, आपस में अथवा जमीन पर मसला हो, इकट्ठा किया हो, छुआ हो, परिताप-कष्ट पहुँचाया हो, थकाया हो, हैरान किया हो, एक जगह से दूसरी जगह रक्खा हो, [किंवा

करा किसी जगह से उतारो] जीवन से छुड़ाया हो, उसका पाप मेरे लिये निष्फल हो।

६—तस्स उत्तरी सूत्र।

तस्स उत्तरी करणेणं पायच्छित्त करणेणं, विसोही करणेणं, विसल्ली करणेणं, पावाणं कम्माणं निग्घायणट्ठाए ठामि काउस्सग्गं।

[तस्योत्तरीकरणेन प्रायश्चित्तकरणेन, विशोधिकरणेन, विशल्यीकरणेन, पापानां कर्मणां निर्घातनार्थाय तिष्ठामि कायोत्सर्गम्।]

उसको श्रेष्ठ-उत्कृष्ट बनाने के निमित्त, प्रायश्चित्त—आलोचना करने के लिये विशेष शुद्धि करने के लिये, शल्य[1] का त्याग करने के लिए और पाप कर्मों का नाश करने के लिये कायोत्सर्ग करता हूं।

७-अन्नत्थ ऊससिएणं सूत्र।

अन्नत्थ ऊससिएणं नीससिएणं, खासिएणं, छीएणं, जंभाइएणं उड्डुएणं वायनिसग्गेणं भमलीए, पित्तमुच्छाए, सुहुमेहिं अंगसंचालेहिं सुहुमेहिं खेलसंचालेहिं, सुहुमेहिं दिट्ठिसंचालेहिं एवमाइएहिं[2] आगारेहिं अभग्गो अविराहिओ हुज्ज मे काउस्सग्गो।

१—शल्य तीन हैं—[१] माया (कपट), [२] निदान [फल कामना] [३] मिथ्यात्व [कदाग्रह]।

२— आदि शब्द से आगे लिखे हुए चार आगार और समझने चाहियें—

जाव अरिहंताणं भगवंताणं नमुक्कारेणं न पारेमि ।
ताव कायं ठाणेणं मोणेणं झाणेणं अप्पाणं वोसिरामि ॥

अन्यत्रोच्छ्वसितेन निःश्वसितेन कासितेन क्षुतेन, जृम्भितेन उद्गारितेन, वातनिसर्गेण भ्रमर्या पित्तमूर्च्छया सूक्ष्मैरङ्गसञ्चालैः सूक्ष्मैः श्लेष्मसञ्चालैः सूक्ष्मैर्दृष्टिसञ्चालैः एवमादिभिराकारैरभग्नोऽविराधितो भवतु मम कायोत्सर्गः ।

यावदर्हतां भगवतां नमस्कारेण न पारयामि तावत्कायं स्थानेन मौनेन ध्यानेनात्मीयं व्युत्सृजामि ।

ऊँचा श्वास, निःश्वास, खाँसी, छींक, जभाई-उबासी, डकार, वायु का सरना, सिर आदि का चकराना, पित्त विकार की मूर्च्छा, सूक्ष्म अंग संचार, सूक्ष्म कफ संचार, सूक्ष्म दृष्टि संचार इत्यादि[1] आगारों से अन्य क्रियाओं के द्वारा मेरा कायोत्सर्ग

[१] आग के उपद्रव से दूसरी जगह जाना। [२] बिल्ली चूहे आदि का ऐसा उपद्रव जिससे कि स्थापनाचार्य के बीच बार बार आड़ पड़ती हो इस कारण, या किसी पञ्चेन्द्रिय जीव के छेदन भेदन होने के कारण अन्य स्थान में जाना, [३] अकस्मात् डकैती पड़ने या राजा आदि के सताने से स्थान बदलना, [४] शेर आदि के भय से, साँप आदि विषैले जन्तु के डंक से या दीवार आदि गिर पड़ने की शंका से दूसरे स्थान को जाना।
कायोत्सर्ग करने के समय में आगार इस लिए रखे जाते हैं कि सब की शक्ति एक सी नहीं होती। जो कम ताकत व डरपोक हैं वे ऐसे मौके पर इतने घबरा जाते हैं कि धर्म ध्यान के बदले आर्त्त ध्यान करने लगते हैं, इस लिए उन अधिकारियों के निमित्त इन आगारों का रखना जाना आवश्यक है। आगार रखने में अधिकारि भेद ही मुख्य कारण है।

अभग्न तथा अविराधित हो।

जब तक अरिहन्त भगवान् को नमस्कार करके (कायोत्सर्ग) न पारूँ तब तक स्थिर रहकर, मौन रहकर, ध्यान धर कर, अपने शरीर को (अशुभ व्यापारों से) अलग करता हूँ।

८—लोगस्स सूत्र।

लोगस्स उज्जोअगरे धम्मतित्थयरे जिणे।
अरिहंते कित्तइस्सं चउवीसं पि केवली ॥१॥

लोकस्योद्योतकरान् धर्मतीर्थकरान् जिनान्।
अर्हतः कीर्तयिष्यामि चतुर्विंशतिमपि केवलिनः ॥१॥

(स्वर्ग, मृत्यु और पाताल) तीनों जगत् में (धर्म का) उद्योत-प्रकाश करने वाले, धर्म तीर्थ की स्थापना करने वाले, राग-द्वेषादि शत्रुओं को जीतने वाले चौबीसों केवल ज्ञानी तीर्थंकरों की मैं स्तुति करूँगा ॥१॥

उसभमजियं च वंदे संभवमभिणंदणं च सुमइं च।
पउमप्पहं सुपासं जिणं च चंदप्पहं वंदे ॥२॥

ऋषभमजितं च वन्दे सम्भवमभिनन्दनं च सुमतिं च।
पद्मप्रभं सुपार्श्वं जिनं च चन्द्रप्रभं वन्दे ॥२॥

राग द्वेष को जीतने वाले ऋषभ देव और अजितनाथ को वन्दना करता हूँ, सम्भवनाथ, अभिनन्दननाथ, सुमतिनाथ,

पद्मप्रभ सुपार्श्वनाथ और चन्द्रप्रभ जी को वन्दन करता हूँ ॥२॥

सुविहिं च पुप्फदंत, सीअलसिज्जंसवासुपुज्जं च।
विमलमणंतं च जिणं, धम्मं संतिं च वंदामि ॥३॥

सुविधिं च पुष्पदन्तं शीतलश्रेयांसवासुपूज्यं च।
विमलमनन्तं च जिनं धर्मं शान्तिं च वन्दे ॥३॥

सुविधिनाथ, पुष्पदन्त, शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य विमलनाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ और शान्तिनाथ आदि जिनों को नमस्कार करता हूँ ॥३॥

कुंथुं अरं च मल्लिं वंदे मुणिसुव्वयं नमिजिणं च।
वंदामि रिट्ठनेमिं, पासं तह वद्धमाणं च ॥४॥

कुन्थुमरं च मल्लिं वन्दे मुनिसुव्रतं नमिजिनं च।
वन्देऽरिष्टनेमिं पार्श्वं तथा वर्द्धमानं च ॥४॥

कुंथुनाथ, अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, नमिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्वनाथ तथा वर्द्धमान आदि जिनों को नमस्कार करता हूँ ॥४॥

एवं मए अभिथुआ, विहुयरयमला पहीणजरमरणा।
चउवीसंपि जिणवरा, तित्थयरा मे पसीयंतु ॥५॥

एवं मयाऽभिष्टुता विधूतरजोमला प्रहीणजरामरणाः।
चतुर्विंशतिरपि जिनवरास्तीर्थंकरा मे प्रसीदन्तु ॥५॥

इस प्रकार मेरे द्वारा स्तुति किये गये पाप-रज व मल से

विहीन, जरा मरण से मुक्त तीर्थ के प्रवर्तक चौबीसों जिनवर देव मुझ पर प्रसन्न हों ॥५॥

कित्तियवंदियमहिया जे ए लोगस्स उत्तमा सिद्धा ।
आरुग्गबोहिलाभं समाहिवरमुत्तमं दितु ॥ ६ ॥
कीर्तितवन्दितमहिता य एत लोकस्योत्तमा सिद्धा ।
आरोग्यबोधिलाभं समाधिवरमुत्तमं ददतु ॥६॥

कीर्तन, वन्दन और पूजन किये गये जो लोक में प्रधान सिद्ध हैं वे (मुझको) आरोग्य का तथा धर्म का लाभ (और) उत्तम समाधि का वर देवें। ॥६॥

चंदेसु निम्मलयरा आइच्चेसु अहियं पयासयरा ।
सागर वर गंभीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिसन्तु ॥७॥
चन्द्रेभ्यो निर्मलतरा आदित्येभ्योऽधिकं प्रकाशकरा ।
सागरवरगम्भीरा सिद्धा सिद्धिं मम दिशन्तु ॥७॥

चन्द्रा से विशेष निर्मल, सूर्यों से भी अधिक प्रकाश करने वाले, महा समुद्र के समान गम्भीर सिद्ध भगवान् मुझको सिद्धि मोक्ष देवें ॥७॥

६—सामायिक सूत्र।

करेमि भंते ! सामाइयं। सावज्जं जोगं पच्चक्खामि। जावनियमं पज्जुवासामि, दुविहं तिविहेणं मणेणं वायाए कायेणं न करेमि न कारवेमि। तस्स भंते ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि ॥

[करोमि भगवन् ! सामायिकं। सावद्यं योगं प्रत्याख्यामि। यावत् नियमं पर्युपासे द्विविधं त्रिविधेन मनसा वाचा कायेन न करोमि न कारयामि। तस्य भदन्त ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि।]

हे भगवन् ! [मैं] सामायिक व्रत ग्रहण करता हूँ [और] पाप सहित व्यापार का प्रत्याख्यान-त्याग करता हूँ। जब तक [मैं] इस नियम का पर्युपासन-सेवन करता रहूँ। [तब तक] दो प्रकार के [योग से] अर्थात् मन, वचन, काया से तीन प्रकार का [त्याग करता हूँ] अर्थात [सावद्य योग को] न करूंगा [और] न कराऊँगा। हे स्वामिन उससे—प्रथम के पाप से [मैं] निवृत्त होता हूँ, [उसकी] निन्दा करता हूँ [और] गर्हा—विशेष निन्दा करता हूँ, आत्मा को [उस पाप व्यापार से] हटाता हूँ।

१०—सामायिक पारने का सूत्र ।

सामाइयवयजुत्तो जाव मणे होइ नियम संजुत्तो ।
छिन्नइ असुहं कम्मं सामाइय जत्तिया वारा ॥१॥

सामायिकव्रतयुक्तो यावन्मनसि भवति नियमसंयुक्तः ।
छिनत्ति अशुभं कर्म सामायिकं यावतो वारान् ॥१॥

जब तक सामायिक व्रत और मन के नियम सहित हो जितनी बार सामायिक व्रत (लेवे तब तक जितनी बार) किया हो तब तक अशुभ कर्म काटता है ॥१॥

सामाइयम्मि उ कए समणो इव सावओ हवइ जम्हा ।
एएण कारणेण बहुसो सामाइयं कुज्जा ॥ २ ॥

सामायिके तु कृते श्रमण इव श्रावको भवति यस्मात् ।
एतेन कारणेन बहुशः सामायिकं कुर्यात् ॥२॥

पुनः सामायिक व्रत लेने पर श्रावक जिस कारण साधु के समान होता है इस कारण (वह) सामायिक अनेक बार करे ।

मैंने सामायिक विधि से लिया, विधि से पूर्ण किया,
विधि में कोई अविधि हुई हो तो मिच्छामि दुक्कडं ।

दस[1] मन के, दस[1] वचन के, बारह[1] काया के कुल बत्तीस दोषों में से कोई दोष लगा हो तो मिच्छामि दुक्कडं ।

---

१ मन के १० दोष—दुश्मन को देखकर जलना, अविवेक युक्त बात सोचना तत्त्व का विचार न करना, मन में व्याकुल होना, इज्जत की चाह किया

११—जगचिन्तामणि चैत्यवन्दन।

इच्छाकारेण संदिसह भगवन् ! चैत्यवन्दन करूं ? इच्छं।
जगचिंतामणिजगनाहजगगुरुजगरक्खण, जगबंधव जगसत्थ
वाह जगभावविअक्खण। अट्ठावयसंठविअरूवकम्मट्ठविणासण,
चउवीसंपि जिणवर जयंतु अप्पडिहयसासण ॥१॥

[जगच्चिन्तामणयो जगन्नाथा जगद्गुरवो जगद्रक्षका
जगद्बन्धवो जगत्सार्थवाहा जगद्भावविचक्षणा अष्टापद
संस्थापितरूपा कर्माष्टकविनाशनाश्चतुर्विंशतिरपि जिनवरा
जयन्तु अप्रतिहतशासना ॥१॥]

[चौबीस तीर्थंकरों की स्तुति] जो जगत् में चिन्तामणि
रत्न के समान, जगत् के स्वामी, जगत् के गुरु जगत् के रक्षक,
जगत् के बन्धु (हितैषी), जगत् के सार्थवाह (अगुआ), जगत्

करना, विनय न करना, भव का विचार करना, व्यापार का चिंतन करना,
व्रत में सन्देह करना, और निरादरपूर्वक व्रत का संकल्प करके धर्म क्रिया
करना ॥

२ वचन के १० दोष—दुर्वचन बोलना, हुँकारे किया करना, पाप काम का
हुक्म देना, बे काम बोलना, कलह करना, कुशल क्षेम आदि पूछ कर
आगत स्वागत करना, गाली देना, बालक को खेलाना, विकथा करना
और हँसी दिल्लगी करना।

३ काया के १२ दोष—आसन को स्थिर न रखना, चारों ओर देखते
रहना, पाप वाला काम करना, अँगड़ाई लेना, अविनय करना, भींत
आदि का सहारे बैठना, मैल उतारना, खुजलाना, पैर पर पैर चढ़ाना,
काम वासना से अंगों को खुला रखना, जन्तुओं के उपद्रव से डर कर
शरीर को ढांकना, ऊंघना।

के भावों को जानने वाले, अष्टापद पर्वत पर जिनकी प्रतिमायें स्थापित हैं, आठ कर्मों का नाश करने वाले, अबाधित उपदेश करने वाले (ऐसे) चौबीसों जिनेश्वर देव जयवान् रहें ॥१॥

कम्मभूमिहिं कम्मभूमिहिं पढमसंघयणि
उक्कोसय सत्तरिसय जिणवराण विहरंत लब्भइ,
नवकोडिहिं केवलीण कोडिसहस्स नव साहु गम्मइ।
संपइ जिणवर वीस मुणि बिहुं कोडिहिं वरनाण
समणह कोडिसहस्स दुअ थुणिज्जइ निच्च विहाणि ॥२॥

[कर्मभूमिषु कर्मभूमिषु प्रथमसंहननिनां उत्कृष्टतः सप्ततिशतं जिनवराणां विहरतां लभ्यते नवकोट्यः केवलिनां, कोटिसहस्राणि नव साधवो गम्यन्ते। सम्प्रति जिनवरा विंशतिः, मुनयो द्वे कोटी वरज्ञानिनः, श्रमणानां कोटिसहस्रद्विकं स्तूयते नित्यं विभाते ॥२॥]

सब कर्मभूमियों में [मिल कर] प्रथम संहनन वाले विहरमाण जिनेश्वरों की उत्कृष्ट [संख्या] एक सौ सत्तर (१७०) की पाई जाती है, [तथा] सामान्य केवल ज्ञानियों की [संख्या] नव करोड़ [और] साधुओं की [संख्या] नौ हजार करोड़ पाई जाती है। वर्तमान समय में जिनेश्वर बीस हैं, प्रधान ज्ञान वाले—केवल ज्ञानी-मुनि दो करोड़ हैं [और] सामान्य श्रमण मुनि दो हजार करोड़ हैं [उनकी] सदा प्रातः काल स्तुति की जाती है ॥२॥

जयउ सामिय जयउ सामिय रिसह सत्तुंजि,उज्जित पहु नेमिजिण, जयउ वीर सच्चउरिमंडण, भरुअच्छहिं मुणिसुव्वय, मुहरिपास। दुह दुरियखंडण अवर विदेहिं तित्थयरा, चिहुं दिसिविदिसि जिं के वि तीआणागय, संपइअ वंदु जिण सव्वेवि ॥३॥

[जयतु स्वामिन् जयतु स्वामिन् ! ऋषभ शत्रुञ्जये । उज्जयन्त प्रभो नमिजिन । जयतु वीर सत्यपुरीमण्डन । भृगुकच्छे मुनि सुव्रत । मुखरि पार्श्व । दुःख दुरितखण्डना अपर विदेह तीर्थंकरा , चतसृषु दिक्षु विदिक्षु ये केऽपि अतीतानागतसाम्प्रतिका वन्दे जिनान् सर्वानपि ॥३॥]

हे स्वामिन् ! आपकी जय हो, आपकी जय हो। शत्रुञ्जय पर्वत पर स्थित हे ऋषभ देव प्रभो ! उज्जयन्त-गिरनार पर्वत पर स्थित हे नमि जिन प्रभो, सत्यपुरी—सोचार के मंडन हे वीर प्रभो, भृगुकच्छ-भरुच में स्थित हे मुनि सुव्रत प्रभो ! तथा मुहरी-टीटोइ-गाव में स्थित हे पार्श्वनाथ प्रभो आपकी जय हो। महाविदेह क्षेत्र में दुःख और पाप का नाश करने वाले [तथा] चार दिशाओं और विदिशाओं में भूत भावी और वर्तमान जो कोई अन्य तीर्थंकर है, उन सब जिनवरों को वन्दन करता हूँ ॥३॥

सत्ताणवइ सहस्सा, लक्खा छप्पन्न अट्ठकोडीओ।
बत्तिसय बासिआइं, तिअलोए चेइए वंदे ॥४॥

सप्तनवतिं सहस्त्राणि लक्षाणि षट्पञ्चाशनमष्ट कोटी
द्वात्रिंशन शतानिद्व्यशीतिं त्रिक लोक चैत्यानि वन्दे ॥४॥

तीन लोक मे आठ करोड, छप्पन लाख, सत्तानवे हजार बत्तीस सौ बयासी चैत्य-जिन-प्रासाद हैं [उनको] वन्दन करता हूँ ॥४॥

पनरस कोडिसयाइ, कोडी बायाल लक्ख अडवन्ना।
छत्तीस सहस्स असिइं सासयबिंबाइं पणमामि ॥५॥

पञ्चदश कोटिशतानि कोटाद्विचत्वारिंशत लक्षाणि अष्ट पञ्चाशत।
षट् त्रिंशत सहस्त्राणि अशीतिं शाश्वतबिम्बानि प्रणमामि ॥५॥

पन्द्रह सौ करोड, बयालीस करोड, अट्ठावन लाख छत्तीस हजार अस्सी शाश्वत (कभी नाश न पाने वाले)—बिम्बों को—जिन प्रतिमाओं को प्रणाम करता हूँ ॥५॥

१२—जं किंचि सूत्र।

जं किंचि नाम तित्थं सग्गे पायालि माणुसे लोए।
जाइं जिणबिंबाइं, ताइं सव्वाइं वंदामि ॥१॥

यत्किञ्चिन्नाम तीर्थं, स्वर्ग पाताल मानुषे लोके।
यानि जिनबिम्बानि तानि सर्वाणि वन्दे ॥१॥

स्वर्ग पाताल मनुष्य लोक में जो कोई तीर्थ प्रसिद्ध हो तथा जिन बिम्ब हो उन सब को वन्दन करता हूँ ॥१॥

५—नमुत्थुणं सूत्र।

नमुत्थुणं अरिहंताणं भगवंताणं। आइगराणं, तित्थयराणं, सयं संबुद्धाणं। पुरिसुत्तमाणं, पुरिससीहाणं, पुरिस-वर पुंडरीयाणं, पुरिस वर गंधहत्थीणं। लोगुत्तमाणं, लोगनाहाणं, लोगहिआणं, लोग पईवाणं, लोग पज्जोअ गराणं। अभय दयाणं, चक्खुदयाणं, मग्ग दयाणं, सरण दयाणं, बोहि दयाणं। धम्म दयाणं, धम्म देसयाणं, धम्म नायगाणं, धम्म सारहीणं, धम्म वर चाउरंत चक्क वट्टीणं। अप्पडिहय वर नाण दंसण धराणं, विअट्टछउमाणं। जिणाणं जावयाणं, तिन्नाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं, मुत्ताणं, मोअगाणं। सव्वन्नूणं, सव्व दरिसीणं, सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइ नाम धेय ठाणं संपत्ताणं। नमो जिणाणं, जिअभयाणं।

[नमोऽस्तु अर्हद्भ्यो भगवद्भ्य आदिकरेभ्यस्तीर्थकरेभ्य-स्स्वयसम्बुद्धेभ्य। पुरुषोत्तमेभ्य पुरुषसिंहेभ्य पुरुषवरपुण्डरीकेभ्य-पुरुषवरगन्धहस्तिभ्य। लोकोत्तमेभ्य लोकनाथेभ्य लोकहितेभ्य लोकप्रदीपेभ्य लोकप्रद्योतकरेभ्य अभयदयेभ्य चक्षुर्दयेभ्य मार्गदयेभ्य शरणदयेभ्य बोधिदयेभ्य धर्मनायकेभ्य धर्मसारथिभ्य धर्मवरचातुरन्त चक्रवर्तिभ्य अप्रतिहतवरज्ञानदर्शनधरेभ्य व्यावृत्तछद्मभ्य जिनेभ्यो जापकेभ्य तीर्णेभ्यस्तारकेभ्य बुद्धेभ्यो बोधकेभ्य मुक्तेभ्यो मोचकेभ्य सर्वज्ञेभ्य सर्वदर्शिभ्य शिवम चलमरुजमनन्तमक्षयमव्याबाधमपुनरावृत्ति सिद्धिगति नामधेय स्थान संप्राप्तेभ्य नमो जिनेभ्य जितभयेभ्य।]

नमस्कार हो अरिहन्त भगवान् को [कैसे हैं वे भगवान सो कहते हैं —] धर्म की शुरुआत करने वाले, धर्म-तीर्थ की स्थापना करने वाले, अपने आप ही बोध को पाये हुए, पुरुषों में श्रेष्ठ, पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषों में प्रधान गन्धहस्ति के समान, लोगों में उत्तम, लोगों के नाथ, लोगों का हित करने वाले, लोगों के लिये दीपक के समान, लोगों में उद्योत करने वाले, अभय देने वाले, चक्षु देने वाले, धर्म-मार्ग के दाता, शरण देने वाले, बोधि अर्थात् सम्यक्त्व देने वाले, धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथि, धर्म में प्रधान तथा चार गति का अन्त करने वाले अतएव चक्रवर्ती के समान, अप्रतिहत तथा श्रेष्ठ ऐसे ज्ञान-दर्शन को धारण करने वाले, छद्म अर्थात् घाति कर्म रहित, [राग द्वेष को] स्वयं जीतने वाले, औरों को जिताने वाले, [संसार से] स्वयं तरे हुए दूसरों को तारने वाले, स्वयं बोध को पाये हुये दूसरों को बोध प्राप्त कराने वाले, [बन्धन से] स्वयं छूटे हुये दूसरों को छुड़ाने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी [तथा] निरुपद्रव, स्थिर, रोगरहित, अन्तरहित, अक्षय, बाधारहित, पुनरागमन रहित [ऐसे] सिद्धिगति नामक स्थान को अर्थात् मोक्ष को प्राप्त करने वाले । नमस्कार हो भय के जीतने वाले जिन भगवान् को ।

जे अ अइया सिद्धा, जे अ भविस्सतिणागए काले ।
सपइ अ वट्टमाणा, सव्वे तिविहेण वंदामि ॥१॥

ये च अतीता सिद्धा ये च भविष्यन्ति अनागत काले ।
सम्प्रति च वर्तमाना सर्वान् त्रिविधेन वन्दे ॥१॥

जो सिद्ध भूतकाल में हो चुके हैं, जो भविष्यत् काल में होंगे और [जो] वर्तमान काल में विद्यमान हैं उन सब को तीन प्रकार से (मन, वचन, काया से) वन्दना करता हूँ ॥१॥

१४–जावंति चेइआइ सूत्र ।

जावंति चेइआइ, उड्ढेअ अहे अ तिरिअ लोए अ ।
सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥

यावन्ति चैत्यानि, ऊर्ध्वे चाधश्च तिर्यग्लोके च ।
सर्वाणि तानि वन्दे, इह सन्तत्र सन्ति ॥१॥

ऊर्ध्वलोक में, अधोलोक में, और तिरछे लोक में जहाँ कहीं वर्तमान जितने बिम्ब हों उन सब को इस जगह रहता हुआ वन्दना करता हूँ ॥१॥

१५—जावंत केवि साहू सूत्र।

जावंत के वि साहू, भरहेरवय महाविदेहे अ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेणतिदंड विरयाणं ॥१॥

यावंत केऽपि साधव भरतैरवत महाविदेहे च।
सर्वेभ्यस्तेभ्य प्रणत त्रिविधेन त्रिदण्डविरतेभ्य ॥१॥

भरत, ऐरवत और महाविदेह क्षेत्र में जितने [और] जो कोई साधु हों त्रिकरण पूर्वक, तीन दण्ड से विरत, उन सभों को मैं प्रणत हूँ ॥१॥

१६—परमेष्ठि नमस्कार।

नमोर्हत्सिद्धाचार्योपाध्याय सर्व साधुभ्य ॥

श्री अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, और सब साधुओं को नमस्कार हो।

१७—उवसग्गहर स्तोत्र।

उवसग्गहर पासं, पासं वंदामि कम्मघणमुक्कं।
विसहर विस निन्नासं, मंगल कल्लाण आवासं ॥१॥
विसहर फुलिंगमंतं, कंठे धारेइ जो सया मणुओ।
तस्स गह रोग मारी, दुट्ठजरा जंति उवसामं ॥२॥

चिट्ठउ दूरे मंतो, तुज्झ पणामो वि बहुफलो होइ।
नर तिरिएसु वि जीवा, पावंति न दुक्खदोगच्चं ॥३॥
तुह सम्मत्ते लद्धे, चिंतामणिकप्पपायव महिए।
पावंति अविग्घेणं, जीवा अयरामरं ठाणं ॥४॥
इअ संथुओ महायस! भत्तिब्भर निब्भरेण हिअएण।
ता देव! दिज्ज बोहिं, भवे भवे पास जिणचंद ॥५॥

[उपसर्गहर-पार्श्वम् पार्श्वं वन्दे कर्मघनमुक्तम्।
विषधरविषनिर्णाशं मङ्गलकल्याणावासम् ॥१॥
विषधरस्फुलिङ्गमन्त्रं कण्ठे धारयति यः सदा मनुजः।
तस्य ग्रहरोगमारीदुष्टज्वरा यान्ति उपशमम् ॥२॥
तिष्ठतु दूरे मन्त्रः तव प्रणामोऽपि बहु फलो भवति।
नरतिर्यक्ष्वपि जीवा प्राप्नुवन्ति न दुःखदौर्गत्यम् ॥३॥
तव सम्यक्त्वे लब्धे चिन्तामणि कल्पपादपाभ्यधिके।
प्राप्नुवन्ति अविघ्नेन जीवा अजरामरं स्थानम् ॥४॥
इति संस्तुतो महायशः! भक्तिभर निर्भरेण हृदयेन।
तस्मात् देव! देहि बोधिं भवे भवे पार्श्व जिनचन्द्र ॥५॥]

कर्मों के समूह से छुटे हुये, साप के ज़हर का नाश करने वाले, मंगल तथा आरोग्य के स्थान भूत [और] उपसर्गों को हरण करने वाले पार्श्व नामक यक्ष के स्वामी [ऐसे] श्रीपार्श्वनाथ भगवान् को वन्दन करता हूँ ॥१॥

जो मनुष्य विषधर स्फुलिंग नामक मंत्र को कंठ में सदा धारण करता है उसके ग्रह रोग, मारी और दुष्ट कुपित ज्वर [आदि] उपशांति पाते हैं ॥२॥

मंत्र दूर रहो, तुमको किया हुआ प्रणाम भी बहुत फलदायक होता है। [क्योंकि उससे] जीव मनुष्य तिर्यंच गति में भी दुःख दरिद्रता नहीं पाते हैं ॥३॥

चिंतामणि और कल्प वृक्ष से भी अधिक [ऐसे] सम्यक्त्व को तुझ से प्राप्त कर लेने पर जीव विघ्न के सिवाय जरा मरण रहित स्थान को पाते हैं ॥४॥

हे महायशस्विन्! [मैंने] इस प्रकार भक्ति के आवेग से परिपूर्ण हृदय से [तेरी] स्तुति की इसलिये हे पार्श्व जिन चन्द्र देव! हर एक भव में मुझको सम्यक्त्व दीजिये ॥५॥

१८—प्रार्थना या जय वीयराय सूत्र।

जय वीयराय! जग गुरु! होउ ममं तुह पभावओ भयवं!
भव निव्वेओ मग्गाणुसारिआ इट्ठफल सिद्धी ॥१॥
लोग विरुद्धच्चाओ, गुरुजणपूआ परत्थकरणं च।
सुहगुरुजोगो तव्वयणसेवणा आभवमखंडा ॥ २ ॥
वारिज्जइ जइवि नियाण बंधण वीयराय! तुह समए।
तहवि मम हुज्ज सेवा, भवे भवे तुम्ह चलणाणं ॥३॥

दुक्खक्खओ कम्मक्खओ समाहि मरणं च बोहिलाभो अ।
संपज्जउ मह एअं, तुह नाह ! पणामकरणेणं ॥४॥
सर्वं मंगलमांगल्यं, सर्वं कल्याणकारणम्।
प्रधानं सर्व धर्माणां जैनं जयति शासनम् ॥५॥

जय वीतराग ! जगद्गुरो ! भवतु मम तव प्रभावतो भगवन् !
भवनिर्वेदो मार्गानुसारिता इष्टफलसिद्धिः ॥१॥
लोकविरुद्धत्यागो गुरुजन पूजा परार्थकरणं च।
शुभगुरुयोग तद्वचनसेवनाऽऽभवमखण्डा ॥२॥
वार्यते यद्यपि निदानं बन्धनं वीतराग ! तव समये।
तथापि मम भवतु सेवा भवे भवे तव चरणयोः ॥३॥
दुःखक्षय कर्मक्षय समाधिमरणं च बोधिलाभश्च।
सम्पद्यतां ममैतत्, तव नाथ ! प्रणाम करणेन ॥४॥

हे वीतराग ! हे जगद्गुरो ! [तेरी] जय हो। हे भगवन् ! तेरे प्रभाव से मुझको संसार से वैराग्य, मार्गानुसारिपन, इष्ट फल की सिद्धि, लोक-विरुद्ध कृत्य का त्याग, पूजनीय जनों की पूजा, परोपकार का करना, पवित्र गुरु का संग और उनके वचन का पालन जीवन पर्यन्त अखण्डित रूप से हो ॥१-२॥

हे वीतराग ! यद्यपि तेरे सिद्धान्त में निदान—नियाणा करने का निषेध किया जाता है तो भी तेरे चरणों की सेवा मुझको जन्म जन्म में हो ॥३॥

हे नाथ ! तुमको प्रणाम करने से दुःख का क्षय, कर्म का क्षय, समाधि मरण और सम्यक्त्व का लाभ यह सब मुझको प्राप्त हो ॥४॥

सब मंगलों का मंगल सब कल्याणों का कारण, सब धर्मों में प्रधान [एसा] जिन-कथित शासन—सिद्धांत विजयी हो रहा है ॥५॥

१६—अरिहंत चेइयाणं सूत्र ।

अरिहंतचेइयाणं करेमि काउस्सग्गं। वंदणवत्तियाए, पूअण वत्तिआए सक्कारवत्तियाए, सम्माण वत्तियाए, बोहि लाभ वत्तियाए निरुवसग्गवत्तियाए।

सद्धाए, मेहाए, धिइए, धारणाए, अणुप्पेहाए, वड्ढमाणीए, ठामि काउस्सग्गं ॥

[अर्हच्चैत्यानां करोमि कायोत्सर्गं ॥१॥ वंदन प्रत्यय, पूजन प्रत्यय, सत्कार प्रत्यय, सम्मान प्रत्यय, बोधिलाभ प्रत्यय निरुपसर्ग प्रत्यय ॥२॥

श्रद्धया, मेधया, धृत्या, धारणया, अनुप्रेक्षया, वर्द्धमानया, तिष्ठामि कायोत्सर्गम् ॥३॥]

श्री अरिहन्त के चैत्यों के अर्थात् बिम्बों के वंदन के निमित्त, पूजन के निमित्त, सत्कार के निमित्त [और] सम्मान

के निमित्त [तथा] सम्यक्त्व की प्राप्ति के निमित्त, मोक्ष के निमित्त, कायोत्सर्ग करता हूं ॥२॥

बढ़ती हुई श्रद्धा से बुद्धि से, धृति से अर्थात् विशेष प्रीति से धारणा से अर्थात् स्मृति से, अनुप्रेक्षा से अर्थात् तत्त्व-चिंतन से कायोत्सर्ग करता हूं ॥३॥

२०—कल्लाणकंद स्तुति ।

कल्लाण कंदं पढमं जिणिंद, संति तओ नेमिजिणं मुणिंद ।
पासं पयासं सुगुणिक्कठाणं, भत्तीइ वंदे सिरिवद्धमाणं ॥१॥
अपारसंसार समुद्दपारं, पत्तासिवं दितु सुइक्कसारं ।
सव्वे जिणिंदा सुरविंदवंदा, कल्लाणवल्लीण विसालकंदा ।२।
निव्वाणमग्गेवरजाणकप्पं, पणासियासेसकुवाइदप्पं ।
मयं जिणाणं सरणं बुहाणं, नमामि निच्चं तिजगप्पहाणं। ३
कुं दिंदुगोक्खीरतुसारवन्ना, सरोजहत्था कमले निसन्ना ।
वाएसिरीपुत्थयवग्गहत्था, सुहाय सा अम्ह सया पसत्था।४।

कल्याणकन्दं प्रथमं जिनेन्द्रं,
शान्तिं ततो नेमिजिनं मुनीन्द्रम् ।
पार्श्वं प्रकाशं सुगुणैकस्थानं,
भक्त्या वन्दे श्री वर्द्धमानम् ॥१॥
अपारसंसारसमुद्रपारं,
प्राप्ता शिवं ददतु शुच्येक सारम् ।

सर्वे जिनेन्द्रा सुरवृन्दवन्द्या,
कल्याणवल्लीषु विशाल कन्दा ॥२॥
निर्वाण मार्गे वरयानकल्पं,
प्रणाशिताऽशेष कुवादिदर्पम् ।
मतं जिनानां शरणं बुधानां,
नमामि नित्यं त्रिजगत्प्रधानम् ॥३॥
कुन्देन्दुगोक्षीरतुषारवर्णा,
सरोजहस्ता कमले निषण्णा ।
वागीश्वरी पुस्तकवर्गहस्ता,
सुखाय सा नः सदा प्रशस्ता ॥४॥

कल्याण के मूल, प्रथम जिनेन्द्र को, श्री शान्तिनाथ को, मुनियों के इन्द्र श्री नेमिनाथ को, प्रकाश [illegible] वाले श्री पार्श्वनाथ को तथा सद्गुणों के मुख्य स्थान-भूत श्री वर्द्धमान स्वामी को भक्तिपूर्वक वन्दना करता हूँ ॥१॥

संसार रूप अपार समुद्र के पार को पाये हुए देवगणों के भी वन्दन योग्य, कल्याण रूप लताओं के विशाल कन्द सब जिनेन्द्र पवित्र वस्तुओं में विशेष साररूप मोक्ष को देवें ॥२॥

मोक्ष मार्ग के विषय में श्रेष्ठ वाहन के समान, समस्त कदाग्रहियों के घमण्ड को तोड़ने वाले पण्डितों के लिये आश्रयभूत और तीन जगत् में प्रधान ऐसे जिनेश्वरों के मत को—सिद्धान्त को नित्य नमन करता हूँ ॥३॥

मोगरा के फूल, चन्द्र, गाय के दूध और बर्फ के समान वर्ण वाली अर्थात् श्वेत, हाथ में कमल धारण करने वाली, कमल पर बैठने वाली, हाथ में पुस्तक धारण करने वाली, [ऐसी] प्रशस्त–श्रेष्ठ वह–प्रसिद्ध वागीश्वरी–सरस्वती देवी हमेशा हमारे सुख के लिये हो ॥ ४ ॥

२१—संसार दावानल स्तुति ।

संसारदावानलदाहनीरं, संमोहधूलीहरणेसमीरं ।
मायारसा दारणसारसीरं, नमामि वीरं गिरिसारधीरं ॥ १ ॥
भावावनामसुरदानवमानवेन,
चूलाविलोलकमलावलिमालितानि ।
संपूरिताभिनतलोकसमीहितानि,
कामं नमामि जिनराजपदानि तानि ॥ २ ॥
बोधागाधं सुपदपदवीनीरपूराभिरामं,
जीवाहिंसाविरललहरीसंगमागाहदेहं ।
चूलावेलं गुरुगममणीसंकुलं दूरपारं,
सारं वीरागमजलनिधिं सादरं साधु सेवे ॥३॥
आमूलालोलधूलीबहुलपरिमलालीढलोलालिमाला,
झंकारारावसारामलदलकमलागारभूमिनिवासे !
छाया संभार सारे ! वरकमलकरे ! तारहाराभिरामे !
वाणी संदोहदेहे ! भवविरहवरं देहि मे देवि ! सारम् ॥४॥

संसार रूप दावानल के दाह के लिये पानी के समान, मोहरूप धूल को हरने में पवन के समान, मायारूप पृथ्वी को खोदने में पैने (तीक्ष्ण) हल के समान [और] पर्वत के तुल्य धीरज वाले श्री महावीर स्वामी को (मैं) नमन करता हूँ ॥१॥

भावपूर्वक नमन करने वाले देव, दानव और मनुष्य के स्वामियों के मुकुटों में वर्तमान चञ्चल कमलों की पंक्ति से सुशोभित, [और] नमे हुये लोगों की कामनाओं को पूर्ण करने वाले, प्रसिद्ध जिनेश्वर के चरणों को अत्यन्त नमन करता हूँ ॥२॥

ज्ञान से अगाध गंभीर, सुन्दर पदों की रचनारूप जल प्रवाह से मनोहर, जीव दया रूप निरन्तर लहरों से धारण कठिनाई से प्रवेश करने योग्य, चूलिकारूप तट वाले बड़े २ आलापक रूप रत्नों से व्याप्त [और] जिसका पार पाना कठिन है [ऐसे] श्रेष्ठ श्री महावीर के आगमरूप समुद्र की [मैं] आदर पूर्वक अच्छी तरह सेवा करता हूँ ॥३॥

रज पराग से भरी हुई सुगंधि में मग्न [और] चपल भौंरों की श्रेणियों की गूंज के शब्द से श्रेष्ठ [तथा] जड़ से लेकर धवल [ऐसे] स्वच्छ पत्र वाले कमल पर स्थित [एवं] गृह की भूमि में निवास करने वाली कान्तिपुञ्ज से शोभायमान हाथ में उत्तम कमल को धारण करने वाली स्वच्छहार से मनोहर [और] बारह¹ अङ्ग रूप वाणी ही जिसका शरीर है ऐसी ही देवि-हे श्रुतदेवि! मुझको सर्वोत्तम संसार-विरह-मोक्ष का वर दे ॥४॥

१—१ आचारांग २ सूत्र कृताङ्ग, ३ स्थानांग, ४ समवायांग, ५ व्याख्या प्रज्ञप्ति-भगवती ६ ज्ञाता धर्म कथा ७ उपासक दशांग, ८ अन्तकृत् दशांग, ९ अनुत्तरोपपातिक दशांग १० प्रश्न व्याकरण ११ विपाक और १२ दृष्टिवाद यह बारह अंग कहलाते हैं। इन अंगों की रचना तीर्थंकर भगवान् के मुख्य शिष्य जो गणधर कहलाते हैं वे करते हैं। इन अंगों में गूंथी गई भगवान् की वाणी को द्वादशांगी वाणी कहते हैं।

५—काव्य विभाग ।

१—देव दर्शन ।

दर्शनं देव देवस्य दर्शनं पाप नाशनम् ।
दर्शनं स्वर्ग सोपानं दर्शनं मोक्ष साधनम् ॥ १ ॥

दर्शनाद्दुरित ध्वंसी वंदनाद्वाञ्छितप्रद ।
पूजनात्पूरक श्रीणा जिन साक्षात्सुरद्रुम ॥२॥

तुभ्य नमस्त्रिभुवनार्त्ति हराय नाथ,
तुभ्यं नम क्षितितलामलभूषणाय ।

तुभ्य नमस्त्रिजगत परमेश्वराय,
तुभ्य नमो जिन भवोदधि शोषणाय ॥ ३ ॥

२—श्री चतुर्विंशति स्तुति ।

सुख करण स्वामी जगत नामी आदि करता दुखहरं ।
सुर इंद चंद फनिंद वंदत सकल अघहर जिनवरं ।
प्रभु ज्ञान सागर गुनहि आगर आदिनाथ जिनेश्वरं ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वरं ॥१॥

तप धरत धवल ध्यान पायो सब लोक प्रकाशनं ।
जिन आठ कर्म निवार दीने मोह तिमिर विनाशनं ।
दुख जाम मरण दूर कीनो अजितनाथ जिनेश्वरं ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वरं ॥२॥

अरि काम क्रोध तै लोभ मार्यो पाच इन्द्री बस कर ।
दुविकार विषया सत्र जीते योग मारग पग धर ।
इह भव समुद्रे पार पायो सम्भवनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥३॥

उपदेश दे जग भव्य तारे देव नर बहु पशु घने ।
मेटके मिथ्यात धर्म जैन बानी धरमने ।
दस दया दान दयाल भाख्यो अभिनन्दन जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥४॥

शुभ निर्मल वाणी जगत मानी जीव सब सशय हर ।
पशु देव असुर सुपुरुष नारी वंदना चरणन कर ।
अमल परम सरूप सुंदर सुमतिनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥५॥

सब राज ऋद्धि त्याग जिन जो दान दे इक वर्ष हीं ।
आठ कर्म जीते धार दीक्षा भयो सुर नर हर्ष हीं ।
जय जय करहि सब इन्द्र मिलके पद्मप्रभ जो जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥६॥

भय हरण दारिद्र जगत स्वामी भयो नामी जगतहिं ।
रवि शेष और नरेश पूजें इन्द्रलोक सुमतिहिं ।
सब भाव सूत्र धार विराजे सुपार्श्वनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो जिन परमेश्वर ॥७॥

सुशशाककर सम विमल विशद निह कलंक शरीर हीं ।
गिरि मेरु सम नित अचल स्वामी दधि समान गंभीरहीं ।
तिन शरण के हैं शरण जग गुरु चन्द्रप्रभ जी जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥८॥

नव तत्त्व सर्व सभेद भाष्यो यति श्रावक धर्म हीं ।
फनि दान शील सुभाव तपविधि षट् आवश्यक कर्म हीं ।
सब तार भवजल पार पायो सुविधिनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥९॥

सित चन्दन जिम शीतलं प्रभु करें शीतल दर्शनें ।
भव भव दावानल मेट देवे वानी वर्षा वर्षते ।
श्री मोक्ष मारग भव्य पाये शीतलं जो जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥१०॥

प्रभु तीन छत्र विराजमान देव दुन्दुभी वाजित ।
शुभ मान थंभ धर्मचक्र पुष्प वृष्टि सुगाजित ।
अशोक वृक्ष सुछाय शीतल श्रेयांसनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो जिन परमेश्वर ॥११॥

शुभ स्वर्ण आसन मन विमासन जोति लख रवि लाज हीं।
सित चमर चौसठ सीस ढारें सुर सुभक्ति सुभाज हीं।
तिन करो पूजा वासव प्रभु वासु पूज्य जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥१२॥

जे विमल मनसा करि आराधे विमल अक्षत पूजहीं।
धरि गंध धूप नैवेद्य दीपक करै आरति कूजहीं।
मन वचन काया शुद्ध करि प्रभु विमलनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥१३॥

भव ताप हरण सुखद करण विमल ज्ञान सुथापनं।
सब नरक टारा दुख निवारन मुक्ति रामा आपन। -
अनन्त गुण तुम माहि प्रभु जी अनन्तनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥१४॥

सब इत भीत न रहे कोइ समोसरन प्रताप हैं।
जात वैरभाव विहाय जावे मोर साप मिलापते ।
जिन धम को उपदेश भाखयो धर्मनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥१५॥

सदु शांति वरते जगत माहीं शान्ति शांति जो ध्यावहीं।
मद काम क्रोध ही शांत होवें शांत तोरे भाव हीं।
जो करे पूजा शांति आपे शांतिनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥१६॥

हरी तुहीं तुही गणपति तुहीं शङ्कर शेष हीं।
जिन तुहीं ब्रह्मा चन्द सूरज तुहीं विष्णु शिनेश ही।
सब कुंथु आदिक करत रक्षा कुंथुनाथ जिनेश्वर।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर॥ १७॥

शुभ भाव पूजा द्रव्य पूजा करे सुर नरनार हीं।
मेट के सब जगत् के दुःख लहे भव जल पार हीं।
जिस नाहिं कोई जगत में अरि अरःनाथ जिनेश्वरं।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥१८॥

सुर करे आरती शंख बाजे घटना रणकार हीं।
डफ भेरी झल्लर तार बाजे झांझरा झणकार हीं।
नट निरत निरतें ध्यान पूजे मल्लिनाथ जिनेश्वर।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वरं ॥१९॥

प्रभु क्षमा सागर शील आगर कोटि रवि जिम जोति हीं।
भवि ध्यान सुन्दर अमिय सरसी तृपति सब जिय होत हीं।
नित करो किरपा सेवक जान मुनिसुव्रत जिनेश्वर।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२०॥

अनन्त केवल ज्ञान सुन्दर अमित बल गुन आगर।
अमित रूप सरूप जिनवर अमित दर्शन सागर।
पग नमत सुरनर नाग किन्नर नमि [illegible] नाथ जिनेश्वर।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२१॥

जिन लाख जीवन बंध छोडी भये दयाल विशाल जी ।
तिय त्याग राजमति धार दिक्षा हुये शिवपुर लाल जी ।
बाल ब्रह्मचारी कहाये नेमिनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२२॥

सुर नाग नागर सेव करते सीस फन बरसात हीं ।
फूल अलसी तनुज वर्ण भनित जग विख्यात हीं ।
पारस ते तुम अधिक स्वामी पार्श्वनाथ जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२३॥

सहस्र सत गुण शोभते प्रभु सहस्र नाम भनन्त जी ।
अपर जग में वीर भनितो महावीर वहन्त जी ।
धवन धवन सुत वंश कुल वर्द्धमान जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२४॥

संतु जो रांम सु निद्धि गिरवनि मास फागुन सुदि षष्ठी ।
तीन दश निधि भूमि का गुन नागर करुणा कर लही ।
कर जोड़ के मुनि मेघ माघे शरण राखू जिनेश्वर ।
सब भविक जन मिल करो पूजा जपो नित परमेश्वर ॥२५॥

३—संक्षिप्त अष्टप्रकार पूजा।



जल पूजा।

गङ्गा नदी फुनि तीर्थ जलसे कनकमय कलशे भरी,
निज शुद्ध भावे विमल थावे न्हवन जिनवर को करी।
भव पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जग हित करी,
कर निर्मल आतम कारणे व्यवहार निश्चय मन धरी।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा-मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय जलं यजामहे स्वाहा।

चन्दन पूजा।

सरस चंदन घसिय केसर भेली माही बरास को,
नव अङ्ग जिनवर पूजते भवि पूरते निज आस को।
भव पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जगहित करी,
कर निर्मल आतम कारणे व्यवहार निश्चय मन धरी।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परमपुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरा मृत्यु निवारणाय श्रीमते जिनेन्द्राय चन्दनं यजामहे स्वाहा।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्मजरा मृत्यु निवारणाय श्रीमत जिनेन्द्राय नैवद्य यजामहे स्वाहा।

फल पूजा।

फल पूर्ण करने के लिये फल पूजना जिन कीजिये,
पण इन्द्रि दाती कम वामी शाश्वता पद लीजिये।
भव पाप ताप निवारणी प्रभु पूजना जगहित करो,
कर विमल आतम कारणे व्यवहार निश्चय मन धरो।

मन्त्र—ॐ ह्रीं श्रीं परम पुरुषाय परमेश्वराय जन्म-जरा मृत्यु निवारणाय श्रीमत जिनेन्द्राय फलानि यजामहे स्वाहा।

४—अष्टप्रकारी पूजा।



अष्टकजी—सताया हूँ मैं कर्मों का तेरे दरबार आता हूँ।
तुही भव का स्वामी है तुझे मस्तक झुकाता हूँ॥
अनादि की लगी जो मैल मेरी दूर होजावे,
इसी लिये तुझे जल से मेरे स्वामी नहलाता हूँ॥ १॥

अनादि काल की वस्तु मेरी भी नष्ट होजावे,

इसी लिये मैं ऐ भगवन् तुम्हें चन्दन लगाता हूं ॥ २ ॥

गुनाहों मोतिया खया जो हैं यह तीर विषयों के।

उनसे बचने के लिये मैं तेरी सेवा में लाता हूं ॥ ३ ॥

अनादि काल के सब कर्म मेरे भस्म हो जावें।

प्रभु मैं धूप को लाकर इसी लिये जलाता हूं ॥ ४ ॥

इसी दीपक की ज्योति सम मुनव्वर हो हृदय मेरा।

तेरे आगे इसी कारण मैं दीपक को जलाता हूं ॥ ५ ॥

तुम्हारी पूजा से भगवन् अक्षय सुख की तमन्ना है।

इसी लिये मैं अक्षत से तेरी पूजा रचाता हूं ॥ ६ ॥

तृप्ति भरी ना भगवन् मुकिवद हो मुझे हासिल।

इसीलिये मिठाई को तेरे दरबार लाता हूं ॥ ७ ॥

नारंगी आम पपइया पवित्र और उमदा फल।

मुक्ति फल पाने को भगवन् तेरे आगे चढ़ाता हूं ॥ ८ ॥

यह पूजा अष्टप्रकारी मिटावे अष्टकर्मों को।

यह हैं दुःख दर इसी लिये तेरी पूजा रचाता हूं ॥ ९ ॥

---

१. अपराध, २ इच्छा, ३ प्राप्त।

५—आरति ।

चाल—झांझरियां की ।

करू जिन आरतियां सुरगसे करू जिन आरतियां ।
सफल मनोरथ सफल हुये मम करू जिन आरतियां । अञ्चली ।

रतन कनक मय थाल ही ल्यायो कर सुभ आरतियां ।
आरति उतारो जिनवर आगे अन्न सब छांडतियां ॥ १ ॥
सात और एक बीस वार करी, करम विडारतियां ।
तिण तिण वार प्रदक्षिणा करीने जनम सुधारतियां ॥ २ ॥
जिम जिम जलधारा देइ जपे कपे मारतियां ।
बहु भव सचित पाप पणास भजन आरतियां ॥ ३ ॥
द्रव्य पूजा ले भाव सुहंकर आतम तारतियां ।
जिनवर सम नहीं तीन भवन में इम कहे आरतियां ॥ ४ ॥

६—मंगल दीपक ।

मंगलदीपक सारा रे मनमोहन प्यारा । अचली ।

भुवन प्रकासक जिन चिर नन्दो, अष्टादश दोष जारा रे ॥ १ ॥
चन्दसूर तुम मुखना लंछण, फिरता करे नित्य चारा रे ॥ २ ॥
इन्द्राणी मंगल दीपक करे, अमरी दीये बहु भारा रे ॥ ३ ॥
जिम जिम धूप घटी अति दहके तिम तिम पाप प्रजारा रे ॥ ४ ॥
उदकाक्षत कुसुमांजलि चन्दन धूपदीप फल सारा रे ॥ ५ ॥
नैवेद्य वन्दन जिनवर आगे करो निज आतम प्यारा रे ॥ ६ ॥

---

१ दुःख २ दूर करनेवाले ३ फल देनेवाले ४ मनाने ५ पाप ६ नाश करने ७ जलानेवाला ।

॥ इति ॥

श्री आत्मानन्द जैन सभा अम्बाला शहर

की

बिकाऊ हिन्दी पुस्तकें।

स्वामी दयानन्द और जैन धर्म	।)
दयानन्द कुतर्क तिमिर तरणी	।≈)
दिगम्बर मूर्ति मण्डन	।)
सम्यक्त्व शल्योद्धार	।)
वीर चन्द राघव जी गांधी का जीवन चरित्र	।≈)
परिशिष्ट पर्व भाग (१)	॥)
" " " (२)	॥)
जैन धर्म पर एक महाशय की कृपा	।)
श्रीमद्विजयानन्द सूरि का जीवन चरित्र	≈)
सचित्र चरित्र जैन रामायण	३)
विविध पूजा संग्रह	१।)
हंस विनोद	॥)
विद्यार्थी प्रश्नोत्तर	॥)
तत्त्व निर्णय प्रासाद	४)
महावीर शासन	।≈)
श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावली पहला भाग ।), दूसरा भाग	।≈)
रत्नाकर पच्चीसी (पद्यमय)	-)॥
अनमोल मोती (शिक्षाप्रद भजन)	-)॥
रत्न माला (भजन)	-)॥
जिन गुण मंजरी	।)
सुन्दर विलास	≈)
भजन विलास	≈)॥
श्री हीर विजय सूरि	०
मेरी भावना	०
भक्तामर और कल्याण मन्दिर स्तोत्र	≈)

श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी

अम्बाला शहर

की

निकाऊ हिन्दी पुस्तकें ।



पुस्तक	मूल्य	पुस्तक	मूल्य
जैन तत्त्व मीमांसा	)॥	दया दर्पण	)॥
जैन इतिहास भाग १	-)	द्रौपदी	=)॥
" " २	)॥	महासती सीता जी	=)
सप्त भंगीनय	-)	वीर हनुमान	=)
दी और मी पर विचार	-)॥	रूप किशोर	-)
मनुष्य कर्त्तव्य	)॥	उत्तम कुमार	=)
धनपाल चरित्र	-)॥	अकबर और जैन धर्म	=)॥
श्रीस्थना	-)॥	सती दमयंती	=)
सच्चा बलिदान	=)	स्थूलभद्र चरित्र	=)॥
समुचित शिक्षा १ भाग (प्रश्नप)	-)	श्री आदिनाथ चरित्र	=)
एक आदर्श जीवन	-)	श्री अजित नाथ और संभवनाथ चरित्र	=)
चन्दन बाला	-)	सत्य हरिश्चन्द्र (नाटक)	।=)
अनाथी मुनी	-)	तीर्थंकर चरित्र भूमिका	=)॥

नियमावली।

श्री आत्मानन्द जैन ट्रैक्ट सोसायटी

अम्बाला शहर।

१—इसका मेम्बर हर एक हो सकता है।

२—फीस मेम्बरी कम से कम २) वार्षिक है। अधिक देने का हर एक को अधिकार है। फीस अगाऊ ली जाती है जो महाशय एक साथ ५०) इस सोसायटी को देंगे वे इसके लाइफ मेम्बर समझे जावेंगे। उनसे वार्षिक चन्दा नहीं लिया जावेगा।

३—सोसायटी का वर्ष १ जनवरी से आरम्भ होता है। जो महाशय मेम्बर होंगे वे चाहे किसी मास में हों परन्तु चन्दा उनसे एक जनवरी से ३१ दिसम्बर तक का लिया जावेगा।

४—जो महाशय अपने खर्च से कोई ट्रैक्ट छपवाकर सोसायटी द्वारा बिना मूल्य वितरण करना चाहें उनका नाम ट्रैक्ट पर छपवाया जायगा।

५—जो ट्रैक्ट यह सोसायटी छपवाया करेगी वे हर एक मेम्बर के पास बिना मूल्य भेजे जाया करेंगे।

निवेदक—

मन्त्री।

श्री आत्मानंद जैन शिक्षावली

तीसरा भाग



सद्गुरु न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्री श्री १००८
श्रीविजयानन्द सूरि (आत्माराम) जी महाराज ।

*श्री वीतरागाय नम *

श्री आत्मानन्द—

जैन शिक्षावली



तीसरा भाग।



सम्पादक—

मास्टर भागमल्ल शर्म्मा



प्रकाशक :—

मंत्री-श्री आत्मानन्द जैन सभा,

अम्बाला शहर।



वीर संवत् २४५४ } प्रथमावृत्ति { विक्रम संवत् १९८५
आत्म संवत् ३३ } मूल्य ॥) { ईस्वी सन. १९२८

गिरधारीलाल कमल के प्रबन्ध से साहित्य प्रेस मेरठ में मुद्रित.

स्वर्गस्थ

श्रीमान् लाला जगतूमल जी रईस,

अम्बाला शहर,

की

पवित्र स्मृति

में।

आवश्यक निवेदन।



आज देव गुरु धर्म की कृपा से शिक्षावली का तीसरा भाग आपके सन्मुख उपस्थित किया जाता है। पहले दो भागों की तरह इस का भी बहुत कुछ अंश महसाणा की गुजराती शिक्षण माला का अनुवाद मात्र है। इतिहास विभाग, काव्य विभाग सर्वथा नये हैं। अन्य विभागों में भी कहीं २ आवश्यकतानुसार परिवर्तन किया गया है। आशा है कि जिस प्रकार पहले दो भागों को अपनाया गया है इसे भी अपनाया जायगा।

विनीत—

सम्पादक।

विषय सूची।

१—नीतिबोध विभाग

नाम २—इतिहास विभाग पृष्ठ

३—सामान्य ज्ञान विभाग

नाम पृष्ठ

४—सूत्र विभाग

५—काव्य विभाग

॥ श्री ॥

स्वर्गीय श्रीमान् लाला जगतमल जी रईस

अम्बाला शहर ।

स्वर्गस्थ लाला जी का चित्र सामने दिया गया है। पंजाब का जैन समाज आपके नाम से पूर्णतया परिचित है। आप के काम ऐसे शानदार है कि समाज को उन पर उचित गर्व हो सकता है।

आप का शुभ जन्म एक उच्च ओसवाल जैन कुल में हुआ था। बाल्यावस्था में आप की शिक्षा की ओर बहुत कम ध्यान दिया गया। इस त्रुटि को आपने पीछे से बहुत अनुभव किया। "विद्या मनुष्य का एक अनुत्तम भूषण है" यह जान कर आपने थोड़ा बहुत हिन्दी भाषा का ज्ञान प्राप्त कर ही लिया जिस से आपको धार्मिक ज्ञान प्राप्त करने में बहुत सहायता मिली, गाने बजाने में अच्छी रुचि थी। इसी से आप सदा प्रसन्न रहते थे। आप नित्य दिन कृत्य में खूब पक्के थे। आप के जीवन पर सद्गुरु न्यायाम्भोनिधि जैनाचार्य श्री १००८ श्री विजयानन्द सूरि (आत्माराम जी) महाराज के अनुपम सत्य और विद्वत्ता पूर्ण उपदेशों का विशेष प्रभाव पड़ा। आपके जीवन से स्थल २ पर इस का परिचय मिलता है।

आप के परिश्रम और धैर्य के कारण आपको व्यापार में भी विशेष सफलता प्राप्त हुई। आपने बहुतसा रुपया पैदा किया और शक्ति के अनुसार अपने जीवन में हजारों रुपये धार्मिक कार्यों पर उदारता से खर्च किये।



स्वर्गीय लाला जगतूमल जी जैन भावू

जैन समाज की दुरवस्था को देख कर आपका दिल बहुत दु खी होता था। आप घन्टों विचार में मग्न रहा करते थे। अगली सन्तान की उन्नति के लिये आप हर समय चिन्तित रहते थे। विद्या की कमी और सामाजिक त्रुटियों को आपने बहुत अनुभूत किया। श्री जैन कन्या पाठशाला जैन हाई स्कूल, जैन सभा अम्बाला शहर, जैन गुरुकुल गुजरांवाला, जैन महा सभा तथा अन्य धार्मिक संस्थाओं की उन्नति में आपने विशेष योग दिया। गुजरांवाला गुरुकुल के आप ट्रस्टी थे। जैन हाई स्कूल अम्बाला शहर की आर्थिक दशा का सुदृढ़ करने के लिये आपने अपनी बिरादरी की सम्मति से एक विशाल भवन श्री आत्मानन्द जैन गञ्ज-के बनाने में अपना बहुमूल्य समय अर्पण किया। और इस गञ्ज को अपनी देख रेख म तैयार कराया। इस में लगभग ८०००) की लागत के दो बड़े कमरे और एक सेहन ऊपर की मंज़िल म अपने खर्च से बनवाये जो इस समय जैन हाई स्कूल के काम में आते हैं करता है। इस गंज के किराये से स्कूल को बड़ी सहायता मिलती है। इस गंज को बनवाने में आपने लगभग दो साल तक परिश्रम किया। यह लाला जी की हिम्मत और उनके जाति प्रेम का जीवित उदाहरण है।

आप जैन हाई स्कूल की मैनेजिंग कमेटी के प्रधान थे। आप बिरादरी के एक पञ्च थे। रीति रिवाज के सुधार और अन्य ऐसे कामों और प्रबन्ध के विषय में आपने अति लाभ-दायक कार्य किये हैं।

गोदेव श्रीजी, श्रीहेम श्रीजी आदि पाच महा व्रत धारी, त्याग और वैराग्य को मूर्ति साध्वी जो को बीकानेर से पैदल चल कर पञ्जाब पधारना था। मार्ग कठिन था अतः किसी उद्यम शाली भद्र श्रावक के बिना इतनी लम्बी यात्रा करना बड़ा दुस्तर कार्य था अतः लुध्याना निवासी लाला हुकुमचन्द जी आदि भाइयों के साथ आपने बड़ी प्रसन्नता से इस सेवा को स्वीकार किया और मार्ग की कठिनाइयों को सहन करते हुये आप डेढ़ मास में पञ्जाब पहुचे।

आपने १९९२ के साल में अम्बालाशहर से श्रीहस्तिनापुर जी तीर्थ की यात्रा के निमित्त एक संघ निकाला जिस में अम्बाला शहर लुध्याना, गुजरांवाला, होश्यारपुर, बीकानेर के भाई शामिल हुये। श्री श्री देव श्री जी तथा श्री हेम श्री जी आदि साध्वियां भी संघ के साथ तीर्थ यात्रा के लिये पधारीं। कई दिनों के पश्चात् हस्तिनापुर पहुचकर श्रद्धा पूर्वक पूर्ण शांति से अपने धार्मिक कर्तव्य को पूर्ण किया। यहा आप पांच रोज ठहरे और फिर एक मास बाद अम्बाला शहर वापिस आये जहां जैनी भाइयों ने इस संघ का बडे उत्साह से स्वागत किया। आपने तन, मन और धन से संघपति के उत्तरदायित्व को निभाया। आपकी सदा यही इच्छा रहती थी किसी भी साथी को किसी प्रकार से भी कष्ट न पहुचे। सब लोगों ने आपके इस उत्साह की प्रशंसा की। इस यात्रा का खर्च लालाजी ने अपनी जेब से करके अपनी सम्पत्ति को सफल किया। आपने अन्य संस्थाओं को भी बहुत कुछ दान दिया।

अपने जीवन के अन्तिम भाग में अपने मन को सांसारिक कार्यों से बहुत कुछ हटा लिया। पूजा भक्ति और तपस्या पर बहुत जोर था। मृत्यु से कुछ वर्ष पहले आपने एक लंगर जारी कर रक्खा था जहां योग्य और असहाय दोनों को भोजन और वस्त्र भी दिये जाते थे।

अन्त में ४५ वर्ष की अवस्था म आप पर रोगों का विशेष आक्रमण हुआ। पूरी शक्ति के अनुसार चिकित्सा कराई गई। परन्तु अन्तिम घडी से कोन बच सकता है। लाला जी ने अपना अन्तिम समय निकट जान परलोक यात्रा की तैयारी आरम्भ की कई प्रकार के दान किये। क्योंकि आपके जीवन का उद्देश्य गृहस्थ में रहते हुये भी जाति और समाज की सेवा करना था अत इस समय भी आपने १२,५००) रुपये की रकम धर्म की सेवा के लिए दान की जिस के सदुपयोग के लिये आपने पांच ट्रस्टी मनोनीत किये। रुग्नावस्था में आप की कुशल क्षेम पूछने के लिये जो भी मित्र आते थे प्रत्येक से आपने मन वचन और काया से क्षमा मागी। इस प्रकार अपने चार पुत्रों सम्बन्धियों और मित्रों से १६ फरवरी, २६ को दिन के बारह बजे सदा के लिये विदा ले आपने अपनी इह लीला समाप्त की। प्रार्थना है कि आप की स्वर्गस्थ आत्मा को शांति प्राप्त हो। स्वर्गवास होते समय लाला जी का अपने परिवार को यही उपदेश था —

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जाय,
लाखों वर्षों तक जीऊ या मृत्यु आज ही आ जाव।
अथवा कोई कैसा ही भय या लालच दन आवे,
तो भी न्याय मार्ग स मेरा कभी न पद डिगने पावे॥

* श्री वीतरागाय नमः *

श्री आत्मानन्द जैन शिक्षावली

तीसरा भाग।



नीतिबोध विभाग।



१-हितबोध (१)



१. प्रात काल उठकर अपने इष्टदेव का स्मरण करना चाहिये।

२ जिस देव में कोई दोष न हो और जिस में सब वस्तु जानने और देखने की शक्ति हो अर्थात् जो सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो उसे सच्चा देव कहते हैं।

३ देव को नमस्कार करके फिर अपने गुरुजनों को विनय से वन्दना करनी चाहिये।

४. माता, पिता, बडे भाई तथा और दूसरों को, जो अपने से बडे हों, विद्या देने वाले या धर्म बताने वालों को गुरु जन समझना चाहिये।

५ देव और गुरुओं की सेवा भक्ति करनी चाहिए। सब जीवों पर दया रखनी चाहिये। धर्म ही यह सब सदाचार सिखाता है इस लिये धर्म क्या चीज है यह हमें जरूर जानना चाहिये।

६ इस जगत में सब कोई सुख को चाहता है परन्तु दुःख को कोई नहीं चाहता।

७ सुख दुःख का आधार अपनी करनी पर है। भले आचार और विचार से जीव को सुख मिलता है और बुरे आचार विचार से दुःख।

८ यदि हम सुखी होना चाहते हैं तो हमें बुरे आचार का त्याग करना चाहिये और सदाचारी बनना चाहिए।

९ जैसा अपना जीव है वैसा ही सब का जीव है। जितना अपने आप को दुःख होता है उतना ही दूसरे जीवों को दुःख होता है। इस लिये हमें किसी भी जीव को दुःख न देना चाहिये। प्रत्युत जहां तक हो सके उतना ही उन का भला करना चाहिये। यही सदाचार है और यही धर्म का मूल है।

१० जिस धर्म में दया और सदाचार का उपदेश नहीं-उसे धर्म नहीं कहना चाहिये।

दया धर्म का मूल है, पाप मूल अभिमान।
तुलसी दया न छोड़िये जब लग घटमें प्रान ॥१॥

२–हितबोध (२)

१ जीव का दुःख हटा कर उसे सुख पहुँचाना धर्म कहलाता है। अच्छा देश उत्तम कुल, शरीर का सुन्दर रूप, दोषरहित पाँचों इन्द्रियों की प्राप्ति। नीरोगता, यश, धन, राज में मान, उत्तम बुद्धि, भला परिवार और उत्तम सन्तान का होना इत्यादि संसार में जो जो सुख कहे जाते हैं यह सब धर्म करने से मिलते हैं।

२ संसार में जितने दुःख हैं वह अधर्म अर्थात् पाप का फल समझने चाहिये। शास्त्रों में लिखा है कि "जिस ने मनुष्य जन्म पाकर कोई भी अच्छा काम नहीं किया, अपना और दूसरों का भला नहीं किया उसे इस पृथिवी पर भार रूप पशु ही समझना चाहिये।

३ सब से उत्तम और महा दुर्लभ यह मनुष्य जन्म पाकर उसे वृथा नहीं गंवाना चाहिये–यही सार है।

४ यदि धर्म उत्तम वस्तु न होती और उससे सुख न मिलता तो प्राचीन समय में भर्तृहरि और भरत आदि राजे महाराजे बड़े बड़े राज्य छोड़ कर एक मात्र धर्म का सेवन न करते।

५ धर्म के आचरण के बिना मनुष्य पशु के समान है।

६ धर्म [illegible] और यह करना सोना है।

७ धर्म करते करते कोई अधर्म न होजाय पुण्य करते करते पाप न होजाय और भलाई करते २ कोई बुराई न होजाय इस के लिये विवेक-ज्ञान का होना जरूरी है।

८ यह काम करना योग्य है और यह नहीं, यह वस्तु अच्छी है और यह बुरी, यह काम करने से मुझे लाभ होगा और यह काम करने से हानि, यह वस्तु खाने योग्य है यह नहीं इत्यादि विचार करने की जो बुद्धि हो उसे विवेक कहते हैं।

९ विवेक ज्ञानी गुरू के उपदेश तथा विवेकी और धर्मात्मा मनुष्यों की संगति से प्राप्त होता है। इस लिये भलों का समागम करना चाहिये यह धर्म पालन का और सदाचारी बनने का अच्छा उपाय है।

१० अपने अन्दर किसी प्रकार का दुराचार न आवे, अपने को कोई दुर्व्यसन न छूवे और सब संसार में मान प्रतिष्ठा हो ऐसा गुणवान बनने के लिये गुणी पुरुषों का संग करना चाहिये और उनके गुणों को ग्रहण करने का प्रयत्न करना चाहिये।

३—हितबोध (३)

१ जो मनुष्य अपने कुल के आचार के अनुसार प्रति दिन देव पूजा करता है शास्त्र का पाठ करता है तथा धर्म की मोटी मोटी बातें जानता है परन्तु यदि लोक व्यवहार में निपुण नहीं, धर्म क्रिया में सार असार ।का जानने वाली विवेक बुद्धि नहीं रखता तो उसको उन सब धर्म क्रियाओं और ज्ञान से इच्छित फल नहीं मिल सकता। क्योंकि ऐसी क्रिया से और लोक विरुद्ध आचार से वह अपना अथवा दूसरे जीव का हित नहीं कर सकता।

२ धर्म के लिये प्रत्येक मनुष्य को नीति निपुण बनकर न्याय पूर्वक व्यापार करना चाहिये। किसी को ठग कर अन्याय नहीं करना चाहिये। यदि कोई हमें ठगले तो जैसा दुःख हमें होता है वैसा ही दूसरों को भी होता है यह विचारना चाहिये। जब तक शरीर में प्राण हैं तब तक सत्य-प्रिय होना चाहिये। किसी के साथ कभी विश्वास घात न करना चाहिये—इस प्रकार का सामान्य धर्म भी जो न पालता हो उसकी धर्म करनी की निन्दा होती है। नीति ही धर्म का उपाय है।

३. धर्माचरण के निमित्त यदि विवेक से काम किया जावे तो उसका पूरा पूरा फल मिलता है।

४ आलस्य और मूर्खता को छोड़ कर उद्यम और ज्ञान से प्रत्येक कार्य करना चाहिये।

५ आलसी और मूर्ख मनुष्य सब जगह तिरस्कार पाता है।

४--तीन तत्त्व

१ इस जगत में कई प्रकार की वस्तुएं हैं परन्तु उन में से जीव को सुख देने वाली केवल तीन ही हैं:-- (१) देव, (२) गुरु और (३) धर्म। इन को तीन तत्त्व कहते हैं। जिस प्रकार दूध का तत्त्व घी है उसी तरह संसार की सब वस्तुओं का सार यह तीन ही तत्त्व हैं।

२ जिसमें एक भी दूषण न हो ऐसे वीतराग परमेश्वर को देव कहते हैं।

३ जीव हिंसा, असत्य, चोरी, स्त्री सेवन तथा धन आदि की ममता, इन पापों का जिन्होंने पूरे तौर पर त्याग किया है और जो मन, वचन और काया से सब संसारी सम्बन्ध छोड़कर शुभ उपदेश और धर्म मार्ग बताते हैं एस गुणवान पुरुष गुरु कहलाते हैं।

४. जो ससार में पाप का आचरण करते हुय और दुःखदायक अवस्था में पड़ हुय जीव को बचाकर अच्छे आचरण स उत्तम सुख की अवस्था तक पहुँचादे उसे धर्म कहते हैं।

५ ऊपर जो कुछ कहा है उस का यही सारांश है कि हर एक प्राणी को इस भव में और परभव में उत्तमोत्तम सुख मिले इस के लिये यथा शक्ति विशेष धर्माराधन करना चाहिये, सद्गुरु के पास जाकर धर्माभ्यास करना चाहिये और निरन्तर अपने इष्ट देव की पूजा भक्ति करनी चाहिये।

५—धनपाल और शोभनाचार्य (१)

अवंति (उज्जयिनी) नगरी म **भोज** राजा राज करता था। यहा **सर्वधर** नाम पुरोहित रहता था। धनपाल और शोभन-उसके दो पुत्र थे।

एक दिन आचार्य श्री वर्धमान सूरि जी यहां पधारे। उन से सर्वधर की प्रीति होगई। एक दिन सर्वधर पुरोहित ने आचार्य वर्धमान जी से प्रार्थना की-"भगवन्! हमारे घर के आंगन में धन दबा हुआ है पर मिलता नहीं। यदि वह किसी प्रकार मिले तो ठीक हो।" गुरु महाराज ने हंसते २ कहा

"यदि यह मिल जाय तो तुम क्या करोगे ? पुरोहित ने कहा "आधा धन दे दूंगा"।

उसी समय आचार्य महाराज ने यह स्थान दिखा दिया जहाँ धन दबा हुआ था। पुरोहित ने धन निकाल लिया और आधा गुरु जी के लिये लेगया। आचार्य जी बोले "यह धन हम ले नहीं सकते। परन्तु तेरे घर की लक्ष्मी रूप तेरे दो पुत्र हैं उन में से एक देदे। पुरोहित यह सुन कर खिन्न हुआ और चुप कर गया। आचार्य महाराज वहाँ से विहार करके दूसरी जगह चले गये।

"मैं गुरु जी के उपकार का बदला नहीं देसका" यह सोच कर पुरोहित बड़ा दुःखी हुआ। हर समय चिन्तित रहने से वह बीमार होगया। और उस की मृत्यु निकट दीखने लगी परन्तु उसे किसी प्रकार भी शांति न हुई। यह देख कर दोनों पुत्रों ने उससे सब बात पूछी। पुरोहित ने सब वृत्तांत बतला दिया और कहा—यदि तुम दोनों में से एक दीक्षा लेले तो मुझे शांति मिल सकती है। यह सुन कर धन पाल तो चुप रहा परन्तु शोभन ने कहा "मैं दीक्षा ले लूंगा। यह सुन कर निश्चिन्त हो पुरोहित ने प्राण त्यागे।

पिता का अन्तिम संस्कार करके शोभन ने आचार्य महाराज के शिष्य के पास दीक्षा ली। उस दिन से धनपाल जैन

धर्म का द्वेषी हागया और उसने उज्जयिनी नगरी में साधुओं का विहार (आना जाना) बन्द कर दिया।

यह हाल जानकर, धनपाल को उपदेश देने के लिये, आचार्य महाराज ने शोभन मुनि को वाचनाचार्य बनाया और दो साधु साथ में देकर उसे उज्जयिनी की ओर भेज दिया।

अनुक्रम से शोभनाचार्य उज्जयिनी नगरी में पहुँचे। द्वार में प्रवेश करते ही धनपाल ने उन का उपहास किया परन्तु ज्योंही उसने उन को देखा तो लज्जित हो गया। फिर आचार्य महाराज ने बहुत से मंदिरों का दर्शन किया और सकल संघ (चतुर्विध संघ) को इकट्ठा करके सुन्दर धर्म उपदेश दिया। और पश्चात् धनपाल के घर गये। धनपाल ने उनका बड़ा सत्कार किया, चित्र शाला में निवास करने के लिये प्रार्थना की और माता तथा स्त्री को भोजन तैयार करने के लिये कहा परन्तु मुनि महाराज ने "हमारे निमित्त तैयार किया हुआ यह भोजन ग्राह्य नहीं" यह कहकर उन्हें रोक दिया और उन की आज्ञा से दूसरे साधु श्रावकों के घरों से आहार पानी लेने के लिये गये। धनपाल भी साथ गया। एक श्रावक ने "दही" भेट करना चाहा परन्तु साधुराज ने यह कहकर "यह तीन दिवस का है इस लिए

यह न लिया। धनपाल वह दही का पात्र लेकर शोभनाचार्य के पास गया और कहने लगा – ' आपके साधुओं ने दही नहीं लिया क्योंकि वह इसे अभक्ष्य समझते हैं। अब यदि आप इसमें जीव दिखादें तो मैं श्रावक हो जाऊंगा अन्यथा यह समझूंगा कि आप वृथा ढोंग बना कर लोगों को ठगते हैं। "

आचार्य महाराज ने वह पात्र लिया। और उस दही में एक सरकंडा गाड़ कर उसे रख दिया। थोड़ी देर के बाद जब दही को देखा तो उसमें जीव उत्पन्न हो गये थे जो हिलते जुलते सरकंडे के छिद्र के रास्ते बाहिर निकल रहे थे। यह देख कर धनपाल को जैन धर्म में श्रद्धा हो गई, उसमें सम्यक्त्व प्रगट हुआ। और फिर आचार्य महाराज के पास १२ व्रत ग्रहण करके वह परम श्रावक बन गया। अब उसके दिलमें जैन धर्म के सिवाय और कुछ न था।

इस प्रकार अपने भाई को सन्मार्ग पर लाकर शुद्ध जैन धर्म का श्रद्धालु बनाकर शोभनाचार्य ने गुरु के पास जाने के लिये विहार कर दिया।

८-"जहा सुमति तहा संपति नाना।"

एक दिन लक्ष्मी देवी ने स्वप्न में एक धर्मात्मा पुरुष को दर्शन दिया और कहा-"हे सेठ! अब मैं तुम्हारे घर

से जागी हूँ, इस लिये तू मुझ से कोई वरदान मांग ले।' सेठ ने जाग कर कहा-"बहुत अच्छा ! परन्तु मैं अभी वर नहीं मांग सकता। अपने कुटुम्बियों से सलाह कर के कल मांगूंगा"। लक्ष्मी भी "बहुत अच्छा" कह कर चली गई।

प्रात काल सेठ ने अपने कुटुम्बियों से स्वप्न का सब हाल कहा। एक बोला धन मांगो। दूसरा बोला "नहीं, कुछ और मांगना चाहिये"। हर एक अपनी २ मति के अनुसार जुदा २ सम्मति देता था। परन्तु सेठ को उनमें से किसी की भी बात पसन्द न आई। अन्त में एक छोटे लड़के ने कहा "पिता जी, लक्ष्मी रहे चाहे जावे,कुछ परवाह नहीं, परन्तु हमारे कुटुम्ब में स्नेह प्रीति या ऐक्यता की वृद्धि हो आप यह वर मांगें"। सेठको यह बात बड़ी पसन्द आई। रात को जब लक्ष्मी आई तो सेठ ने वही वर मांगा। लक्ष्मी बोली-"सेठ ! अब मैं तुम्हारे पास से नहीं जा सकती क्योंकि आपने वर ही ऐसा मांग लिया जिससे जुदा मैं रह नहीं सकती। जहां ऐक्य होगा वहां मेरा रहना जरूरी है।" यह कह कर लक्ष्मी अदृश्य हो गई और सेठ लक्ष्मी का भोग करता हुवा सुख से समय बिताने लगा।

इस ऊपरके दृष्टान्तसे हमें शिक्षा लेनी चाहिये। परस्पर के ऐक्य की कितनी जरूरत है और उसका कैसा अच्छा परिणाम

होता है, यह इस दृष्टान्त से भली भांति प्रगट होता है। आज कल जो कुटुम्ब दुखी दिखाई देते हैं वह इसी लिये दुखी हैं कि उनमें सुमति नहीं। इस लिये यह जरूरी है कि बाप बच्चों में, भाई भाइयों में सास बहुओं में कुमति न होनी चाहिये। क्योंकि कुमति का परिणाम तो लक्ष्मी का विनाश ही है। सुमति रखने में कोई मेहनत नहीं करनी पड़ती, कुछ खर्च भी नहीं करना पड़ता। प्रत्युत विनयादि अनेक प्रकार के गुण उत्पन्न हो जाते हैं। फिर भी यदि प्राणी पक्षपात न रखे तो उनकी कैसी भूल है।

एक दिन इन्द्र ने लक्ष्मी से कहा--

गुरवो यत्र पूज्यन्ते यत्र वित्तं नयार्जितम्।
अदन्तकलहो यत्र तत्र शक्र वसाम्यहम्॥

हे इन्द्र! जहां गुरुजनों की पूजा होती हो, जहां धन न्याय से कमाया जाता हो और जहां दन्त कलह और कुमति न हो वहां ही मेरा निवास होता है।

यह छोटा सा श्लोक बड़ा मनन करने योग्य है। एक घर में एक कुटुम्ब में एक जाति में, एक समुदाय में, एक ग्राम में इसी प्रकार एक देश में और सब स्थलों में कुमति का बुरा फल प्रत्यक्ष दीखता है। ऐसा होते हुए भी इस विचार से दूर

रहना यदि दुर्भाग्य नहीं तो [illegible] का दूर करने और सुगति [illegible] प्रयत्न करना चाहिये जिससे [illegible] धर्म का आराधन, पुण्य का [illegible] सुख की प्राप्ति होता है।

प्रत्युत इस एक गुण से उसके दूसरे ज्ञानादिक अच्छे गुण भी जाते रहते हैं क्योंकि ज्ञानी महाराज कहते हैं कि विनय के बिना विद्या नहीं मिलती और धर्म के बिना सम्यक्त्व या धर्म की सच्ची श्रद्धा भी नहीं होती। सम्यक्त्व बिना चारित्र और चारित्र के बिना मोक्ष नहीं मिलता। इस लिये मोक्ष का सर्वोत्तम सुख पाने का उपाय विनय ही है। विनय से गुरु शिष्य पर प्रसन्न रहता है और विद्या जल्दी आती है। धन से जो काम सिद्ध नहीं होता वह विनय से हो जाता है। तुमने सुना होगा कि श्री रामचन्द्रजी की विनय भक्ति करने से ही विभीषण को राज्य मिला और अहंकारी रावण को अपना राज्य और साथ ही प्राण भी छोड़ने पड़े। गर्व करने से दुर्योधन मारा गया।

विनय से कठिन कार्य भी सिद्ध हो जाते हैं यह नीचे के दृष्टान्त से प्रकट हो जायगा।

राजगृही नगरी में श्रेणिक राजा राज्य करता था। वहां एक चंडाल रहता था। एक समय जब उस चंडाल की स्त्री गर्भवती हुई तो उसे आमों का दोहद खाने की इच्छा हुई। उसने अपनी इच्छा चंडाल से कह दी। चंडाल कहने लगा- "इस ऋतु में आमों का दोहद नहीं मिल सकता इस लिये मैं कुछ उपाय नहीं कर सकता। परन्तु तेरी इच्छा को मैं मन

घर में पूरा कर दूंगा।" चंडालनी कहने लगी महारानी के बाग में एक आम का पेड़ है। वह सब ऋतुओं में फलता है इसलिए आप वहां से लाकर ला सकते हैं।"

अब वह चंडाल अपने मंत्र बल से उस बाग में से फल रोज तोड़कर लाने लगा। उस बाग के माली को खबर लगी कि आमों पर काहर कम होगया है इसलिए जरूर चोरी हुई होगी। यह बात उसने महाराजा श्रेणिक से कही। महाराजा ने बुद्धिशाली पुत्र अभयकुमार को चोर का पता लगाने के लिए नियुक्त किया। उसने चोरी करते पाए चंडाल को युक्ति से पकड़ लिया। और सब हकीकत पूछने पर चंडाल ने अपना अपराध स्वीकार कर लिया। और अपने मंत्रबल का वर्णन करके अपने अपराध की क्षमा मांगी।

अभय कुमार ने कहा "मैं तुझे क्षमा नहीं कर सकता। परन्तु यदि तू मेरे पिता राजा श्रेणिक को यह विद्या बतलादे तो मैं भी उन से प्रार्थना करूंगा कि तुझे छोड़ देवें।"

चंडाल ने इस बात को मानलिया। दोनों दरबार में गये और अभय कुमार ने सब हाल राजा से निवेदन कर दिया। अब चंडाल, राजा के सामने खड़ा था और थर थर कांप रहा था। उसने बार बार राजा को विद्या बतलाई परन्तु उनको याद न होती थी। तब अभय कुमार बोला—महाराज विद्या पढ़ने की यह रीति नहीं। जो आपने विद्या सीखनी हो

तो सामने आकर खड़े हो जाओ और इस सिंहासन पर विठाओ। राजा ने ज्यों ही ऐसा किया उसे विद्या याद हो गई।

इस दृष्टान्त से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि चण्डाल सरीखे की भी विनय किये बिना राजा श्रेणिक को विद्या न आई इस लिए विद्या पढ़ने के लिये विनय जरूर करनी चाहिये।

विनय-यह परम उत्तम वशीकरण मन्त्र है इस लिए यदि हम किसी को वश में करना चाहें तो हम उसे विनय से वश में करना चाहिये।

१०—श्रावक के नित्य नियम

१-श्रावकों को थोड़ी नींद लेनी चाहिये और सवेरे उठकर अपने देव और गुरु का याद करके उचित धर्म क्रिया (प्रति क्रमण सामायिक) करनी चाहिये।

२-सवेरे उठते ही मां बाप को नमस्कार करनी चाहिये।

३-श्रावकों के नहीं खाने योग्य जो जो अभक्ष्य वस्तुएं हैं वह नहीं खानी चाहियें।

४-अपनी शक्ति के अनुसार सवेरे नव चउकारसी आदि और सायंकाल विहार आदि का पच्चक्खान करना चाहिये।

५-जिनेश्वर की पूजा शुद्ध भावों से करके पीछे उपाश्रय में आकर सद्गुरु के पास विनय पूर्वक हर रोज थोड़ा थोड़ा विद्याभ्यास करना चाहिये।

६-धर्म सम्बन्धी द्रव्य श्रावक को कभी भी अपने उपयोग में नहीं लाना चाहिये। दूसरे लोग भी यदि उस धन का विनाश करते हों तो उन को भी रोकना चाहिये। उपस्थान का द्रव्य अपने पास न रखना चाहिये। जो रखे तो उसी क्षण चुका देना चाहिये। क्योंकि देव, गुरु और ज्ञानादिक का पैसा थोड़ा भी अपने उपयोग में यदि लाया जावे, या, शक्ति होते हुए भी इस धन के विनाश को न रोके तो बहुत से भवों को भारी दुःख भोगना पड़ता है ऐसा शास्त्रों में कहा है।

७-शुद्ध श्रावक आशातना के डर से मन्दिर के मकान को किराये पर नहीं लेते और नहीं उस में रहते हैं। इस लिये पास में रहने वाले जैनियों को यथा जैन शास्त्र के कथनानुसार आचरण करना चाहिये।

८-श्रावक को किसी का भी कर्जा न रखना चाहिये। यदि हो [illegible] नियत समय से पहिले ही बिना माँगे स्वयं चुका देना चाहिये।

९ श्रावकों को किसी प्रकार का भी

का धन उपार्जन नहीं करना चाहिये ।

१०-श्रावकों को मुख्यतया धर्मात्माओं के साथ व्यापार करना चाहिये ।

११-यदि बहुत सा धन नष्ट भी हो जाये तो भी धर्म के काम में आलस्य नहीं करना चाहिये ।

१२-यदि बहुतसा धन मिल जाये तो अहंकार नहीं करना चाहिये ।

१३-अपने मित्र, सम्बन्धी आदि जिस किसी ने अपने भरोसे काम सौंपा हो उस के साथ विश्वास घात नहीं करना चाहिये ।

१४-किसी को साक्षी किये बिना मित्र के पास भी धन न रखना चाहिये ।

१५-अपनी शक्ति अनुसार पोशाक पहननी चाहिये । जिस के कारण अपकीर्ति हो ऐसी भड़कीली या मैली पोशाक नहीं पहननी चाहिये ।

१६-धर्म के कार्मों में यथा शक्ति धन खर्च करना चाहिये विशेष करके ज्ञान तथा दूसरे धर्म के कार्मों में या मकानों के जीर्णोद्धार के लिये धन खरचना चाहिये ।

११-माता पिता के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये।

मन, वचन और काया से माता पिता की सेवा करनी चाहिये, सेवक की तरह विनय पूर्वक सेवा करने के लिये हर समय तैयार रहना चाहिये। पिता की आज्ञा का पालन तुरन्त ही कर देना चाहिये। उन के शरीर की सेवा करनी चाहिये, पैर धोना, मुट्ठी चांपी करना, उठाना, बिठाना, भोजन कराना इत्यादि कामों में विनय पूर्वक उन की सेवा करनी चाहिये। उन की सेवा का भार नौकर चाकरों को न सौंप कर आप ही सेवा करनी चाहिये। यदि माता पिता कठिन वचन कहें तो क्रोध नहीं करना चाहिये। माता पिता के धर्म सम्बन्धी मनोरथ पूरे करने चाहियें।

इसी प्रकार माता के साथ भी उचित आचरण करना चाहिये परन्तु पिता की अपेक्षा माता के अधिक मनोरथ पूरे करने चाहियें। देव पूजा में, गुरुसेवा में, धर्म करने में सात[1] क्षेत्रों में माता की इच्छा के अनुसार आचरण करना चाहिये। तीर्थ में, यात्रा में, अनाथ को आश्रय देने में, दीनों [illegible]

१-साधु, साध्वी, श्रावक, श्राविका, मन्दिर, प्रतिमा और ज्ञान।

उद्धार करने में इत्यादि कामों में माता का मनोरथ विशेष करके पूर्ण करना चाहिये।

माता पिता को धर्म में लगाना जगत् में इस से बढ़कर दूसरा कोई उपकार नहीं और दूसरे किसी भी प्रकार से माता पिता के उपकार का बदला पुत्र नहीं दे सकता। पशु जब तक दूध नहीं छोड़ते तभी तक माता को माता समझते हैं। मध्यम मनुष्य जब तक घर का काम काज करते हैं तब तक माता को माता समझते हैं परन्तु उत्तम पुरुष जब तक जीते हैं तब तक निरन्तर तीर्थ समान माता की सेवा भक्ति करते हैं।

इसी प्रकार माता भी यदि पुत्र से 'यह मेरा पुत्र है' केवल इतना ही प्रेम करती है तो वह अधम माता है। जब तक पुत्र कमाता रहे तब तक पुत्र से प्रेम करे उस माता को मध्यम माता जानना परन्तु जो अपने पुत्र को वीर, धीर, धर्माचारी और सदाचारी देखकर निरन्तर उस में प्रेम करती है वह उत्तम माता है।

१२-भाई बहिनों के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये।

छोटे भाइयों को चाहिये कि अपने बड़े भाइयों को पिता के समान समझें। हर बात में उन का मान करें और उन की

सम्मति से काम करें । यदि किसी बात से गुस्से होकर बड़ा भाई इस ताड़ना करे तो उस के सामने बोलना नहीं चाहिये, और नाही उस का अपमान करना चाहिये । इसी प्रकार बड़े भाइयों का भी चाहिये कि अपने छोटे भाइयों से पुत्र के समान प्रेम से वर्ताव करें ।

छोटे भाई की स्त्री, पुत्र और उस के परिवार के साथ अच्छा वर्ताव करना चाहिये । परस्पर प्रीतिभाव बढ़ता रहे ऐसा आचरण करना चाहिये । व्यापार रोजगार में छोटे भाइयों के योग्य जो बात हो उस में उन की सम्मति पूछनी चाहिये । मन में भेद रख कर कोई बात छोटे भाई से न छिपानी चाहिये । भाई से धन भी गुप्त न रखना चाहिये । व्यापार या अन्य किसी काम में दूसरे आदमी अथवा छोटे भाई की हानि न पहुंचा सकें इस लिये मीठे वचनों से छोटे भाई को शिक्षा देते रहना चाहिये । भाई यदि कुसंगति में पड़ा हो अथवा उसे कोई खराब आदत पड़ गई हो तो उस का तिरस्कार न करना चाहिये प्रत्युत प्रेम से उसे समझाना चाहिये या उस के मित्रों द्वारा उस को शिक्षा देना चाहिये । क्योंकि तिरस्कार या अपमान करने से वह निर्लज्ज, मर्यादारहित और बेपरवाह होकर भी इस दिल में बायता करने लग जायगा । इस लिये भाई से स्नेह के साथ वर्ताव करना चाहिये ।

अपने भाई अविनय करने न लगजायें इसलिये इस बात का विचार करके कि उसकी प्रकृति कैसी है फिर यथोचित वर्ताव करना चाहिये । अपने और भाई के परिवार के साथ खाने पीने तथा दूसरे कामों में समदृष्टि से वर्तना चाहिये । मन में किसी प्रकार की भी न्यूनाधिकता न रखनी चाहिये। धर्म कार्यों में भाइयों को प्रेरणा करनी चाहिये परन्तु खोटे कामों में उन की सहायता नहीं करनी चाहिये।

१३-पुत्र तथा सगे सम्बन्धियों के साथ कैसे वर्ताव करना चाहिये ?

पुत्र को बाल्यावस्था में पुष्टिकारक भोजन खिला कर उस का पोषण करना चाहिये और तरह तरह के खेल खिलाने चाहियें जिस से उस की बुद्धि, बल और कान्ति बढ़े और शरीर पुष्ट हो । फिर उसे देव, गुरु और धर्म और शुभ सज्जनों की संगति करानी चाहिये । उत्तम जाति वाले, अच्छे कुलाचार वाले और सुशील पुरुषों के साथ उस की मित्रता करानी चाहिये । बालक विद्याभ्यास करता हो उस समय उस का विवाह कर देना किसी प्रकार से उचित नहीं क्योंकि यह तो कच्ची नींव पर मकान बनाने के समान बड़ी मूर्खता है ।

बीस वर्ष से कम अवस्था में बालक का विवाह न करना चाहिये, अपने पुत्र का विवाह योग्य कन्या से करना चाहिये जिसका कुल जन्म, और रूप उत्तम हो, स्वभाव अच्छा हो, उसने योग्य विद्याभ्यास किया हो और योग्य उमर की हो। सब प्रकार का घर का भार उसे सौंप देना चाहिये। पुत्र के सामने उसकी प्रशंसा नहीं करनी चाहिये। विशेष करके पुत्र को व्यवहारीय योगी और धार्मिक विद्या देनी चाहिये। यही उत्तम आचरण है।

माता पिता और स्त्री के पक्ष के मनुष्य तथा स्त्रियां सगे सम्बन्धी कहलाते हैं। इन स्वजनों के कामों में हमेशा चित्त देकर काम करना चाहिये, स्वजन यदि दुःखी हों तो हमें भी उनके दुःख में दुःखी होना चाहिये। यदि स्वजन धनहीन हो तो यथाशक्ति सहायता करके उनको विपत्ति में से निकालना चाहिये। कहीं भी अपने स्वजनों की निन्दा नहीं करनी चाहिये। स्वजनों के दुश्मनों के साथ मित्रता नहीं करनी चाहिये। स्वजन के साथ हंसी, कलह अथवा लड़ाई झगड़ा नहीं करना चाहिये। देव, गुरु और धर्म के कामों में स्वजनों को भूलना नहीं चाहिये। यदि अपना कोई स्वजन परदेश में गया हो और पीछे उसकी स्त्री अकेली हो तो उसके घरमें अकेले नहीं जाना चाहिये। तथा जहां तक बन सके स्वजन के साथ लेने देने का व्यवहार

न रक्खे क्योंकि ऐसा करने से किसी समय झगडा हो जाना सम्भव है। व्यवहारिक कामों में स्वजन के साथ मेल मिलाप से रहना चाहिये, तथा जिनमन्दिर आदि के कामों में स्वजनों के साथ मिलकर काम करना चाहिये, ऐसा करने से यश और शोभा बनी रहती है।

१४-गुरु के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिये।

धर्माचार्य आदि गुरुजनों के लिये हृदय में प्रीति भाव रखना चाहिये। मन में उनके उत्तम गुणों का स्मरण करना चाहिये। किसी समय भी मन में उनके प्रति रोष न लाना चाहिये। यदि कदाचित् कोई अप्रीति वाला काम हो भी जाय तो उनके पास से नम्रता पूर्वक क्षमा माग कर उनको प्रसन्न करने का प्रयत्न करना चाहिये। गुरुजनों की आज्ञा को हर्ष सहित पालन करना चाहिये उनको जिस किसी वस्तु की जरूरत हो वह लाने के लिये सदा तत्पर रहना चाहिये। उनका हम पर भारी उपकार है यह मान कर मन, वचन और काया से उनकी शुद्ध सेवा में कसर न रखनी चाहिये।

गुरु की हितशिक्षा या उनके उपदेश को एकाग्र चित्त होकर बिना किसी प्रकार की शंका दिल में रक्खे, सुनना चाहिये। गुरु

महाराज के उपदेश यथा रीति और यथा अवसर दूसरों को भी सुनाना चाहिये। इस तरह कई प्राणियों के परिणाम शुद्ध होंगे गुणी पुरुषों की स्तुति करने वाले पुरुषों को इस गुण की प्राप्ति होगी। और संसार में कीर्त्ति होगी। उत्तम गुरुओं की प्रशंसा करने से सत्सग की इच्छा रखने वाले ज्ञानाभ्यासी पुरुष उनके सहवास से लाभ उठावेंगे।

हमारे जिस कार्य से अपने गुरुओं की निन्दा हो–वह काम हमें न करना चाहिये। गुरुजनों के दूषण देखना या उनके छिद्र तलाश करना, यह बुरी आदतें अपने म न डालनी चाहियें। इतना ही नहीं, प्रत्युत यदि कोई दूसरा भी महापुरुषों की निन्दा करता हो तो उसको भी योग्य शिक्षा देनी चाहिये जिस से फिर वह ऐसा न करे।

तात्पर्य्य यह है कि गुरुजनों की विनय, सेवा भक्ति, प्रफुल्लित चित्त से करनी चाहिये। गुरुओं की विनय करने से श्री गौतम आदि महापुरुषों ने बड़ा लाभ प्राप्त किया है। गुरु द्रोणाचार्य को देखे बिना ही, उसके गुणों को बहुमान देते हुये, उसकी मूर्त्ति स्थापन करके, उसी को साक्षात् गुरु द्रोणाचार्य मान कर निरंतर सेवा भक्ति करते हुये एक भील के लड़के ने बाणकला में निपुणता प्राप्त करली और बड़ा शक्तिमान हो गया। गुरुकी विनय का यह उत्तम फल है।

१५—अन्य आवश्यक शिक्षायें ।



अन्य मत वाले मनुष्य यदि भिक्षा के लिये हमारे घर आवें तो यथाशक्ति उनको भिक्षा देनी चाहिये। परन्तु ऐसा कोई काम न करना चाहिये जिससे अपने धर्म की निन्दा हो। इसी प्रकार राजा के मान का विशेष ध्यान रखना चाहिये। अपनी शक्ति के अनुसार उसे भेंट देनी चाहिये। कदाचित् कोई महापुरुष घर आवें तो उसके सामने खड़े रह कर यथा योग्य आदर सत्कार करना चाहिये। किसी को दुःखी देखकर उस पर दया लाकर उसकी सहायता करनी चाहिये। दुःखी जीवों पर दया करनी चाहिये। इसका तात्पर्य यह है कि दुःखी, अनाथ, अन्धे बहरे रोगी इत्यादि लोगों की दीनता को यथा शक्ति निवारण करना चाहिये। जिन शासन की नीति और उसके विवेक को बराबर समझ कर उसका आदर करना चाहिये क्योंकि इससे शासन की शोभा होती है।

जैसा अवसर हो उस के अनुसार आचरण करना गुणकारी होता है, हमारी लाज, उच्चार और हसी में भी असभ्यता न पाइ जाय सभामें बैठकर नखों में से मैल न निकालना चाहिये, निन्दा

या विकथा न करनी चाहिये, मुख खोलकर हसना उचित नहीं परन्तु होठों में हसना चाहिये। नखों से दांत न घिसाने चाहियें दांतों से नख नहीं काटने चाहिये। अभिमान न करना चाहिये। भाट-आदि के मुख से प्रशंसा सुनकर फूलना नहीं चाहिये। यदि छोटा आदमी हमारी निन्दा करे तो उस के उत्तर में उस को हलके वचन नहीं कहने चाहियें। ऐसा करने से अपना ही हलकापन जाहिर होता है, जिस बात का निश्चय न हो वह प्रगट नहीं करनी चाहिये। किसी को बुरा नहीं कहना चाहिये। तथा माता, पिता, पुत्र, भाई, बहन, बहनोई, तपस्वी, वृद्ध, बाल, सगोत्री, गरीब, रोगी, आचार्य, अभ्यागत, मित्र, और वैद्य इत्यादि किसी के साथ भी वचन आदि से क्लेश न करना चाहिये। किसी के साथ वैर न करना चाहिये। जिस काम में लाभ न हो वह काम न करना चाहिये। हर एक काम में लाभालाभ विचार लेना चाहिये। और धर्म, पुण्य, दया, दानादि शुभ कामों में बुद्धिमान को सब से आगे होना चाहिये। सुपात्र को दान देकर ईर्ष्या न करनी चाहिये। दरिद्री, पीडित साधर्मिक तथा जाति में जो बुद्धिमान हों, गुणवान हों इन सबका पालन करना चाहिये।

जो कार्य अपने उत्तम कुल को शोभा न देता हो वह करना नहीं चाहिये जाति भोजन आदि कामों में अपनी शक्ति से बढ़कर

खर्च नहीं करना चाहिये। विवेकी मनुष्य तल में, पानी में, शस्त्र में, मूत्र में और रुधिर में अपना मुख न देखे क्योंकि इससे आयु कम होती है। जो कुछ कहा जाय उसका पालन करना चाहिये।

---

१६ दान।

सुपात्र को दान देना बड़ा ही फल दायक होता है, इस लिये भोजन के समय विनती करके साधुओं को घर लाकर भक्ति पूर्वक अपने हाथ से दान देना चाहिये या स्त्री आदि के पास में दिलाना चाहिये बाद में दरवाजे तक उनके साथ जाना चाहिये। जिनके घर में साधु न पधारे हों उनको राह देखनी चाहिये और साधु को अपने घर पधारे देख कर यह समझना चाहिये कि हमारा आज का दिन सफल हुआ। उत्तम महा पुरुष या साधु आदि को घर में से भक्ति पूर्वक भोजन न दिया जावे तब तक सुश्रावक भोजन नहीं करते।

मुसाफिरी से थके हुये को, रोगी को, शास्त्राभ्यास करने वाले को, बालसाधु को, लोंच किये साधु को और पारणे के दिन तपस्वी को दान दिया जाय तो बहुत फल होता है। अभयदान और सुपात्र दान से मोक्ष मिलता है। अनुकम्पादान से सद्गति मिलती है और उचित दान तथा कीर्ति दान से सांसारिक सुख

भाग मिलता है । इस लिए भोजन के समय विशेष कर के स्वधर्मियों को भोजन कराना चाहिये । क्योंकि वह योग्य पात्र है उन में भी ध्यान का अभ्यास करना या कराने वाले सुख साधर्मी भाइयों को भोजन कराना उत्तम फल प्राप्ति का कारण होता है ।

१७—भोजन ।

भोजन करने की रीति यह है–कि प्रभात में, सन्ध्या समय (दोनों समय मिलते हुये) और रात को भोजन न करना चाहिये । सड़ी हुई, बासी और चलितरस वस्तुएं या फल नहीं खाने चाहियें । बाएं पैर पर हाथ रख कर, ऊपर हाथ करके, खुले आकाश में, अन्धेरे में, वृक्ष के नीचे बैठकर या उंगली को ऊंचा कर के कभी भोजन न करना चाहिये । नङ्गे शरीर, हाथ, पैर, धोये बिना, मैले वस्त्रों से या बाएं हाथ से नहीं खाना चाहिये । गीले वस्त्रों से, मस्तक लपेट कर, अपवित्रता से, व्यग्र चित्त से, अशुद्ध ज़मीन पर बैठकर, चारपाई पर बैठ कर, नीचे रखकर, ईशानादिक कोने की तरफ मुख कर के, चण्डाल आदि के देखते हुये तथा फूटे हुवे बरतन में नहीं खाना चाहिये । रजस्वला स्त्री से छुई हुई, गाय और कुत्ते से सूंघी हुई, अज्ञात और अभक्ष्य वस्तु कभी नहीं खानी चाहिये । खाते ? शब्द नहीं करना चाहिये । देव, और गुरु को स्मरण करके सम आसन पर बैठ कर घर के सब आदमियों को पूछकर,

अपने नियमादिक को स्मरण कर के शरीर और ऋतु का विचार करके पथ्य भोजन आनन्द के साथ करना चाहिये। भोजन करते हुए कलश नहीं करना चाहिये। भोजन करने की यही उत्तम विधि है।

---

*१८—कन्याओं के लिये हितवचन-भाग १

१ कन्याओं को माता पिता की आज्ञानुसार चलना चाहिये।

२ माता पिता का हम पर इतना उपकार है कि हम उसका बदला नहीं दे सकता।

३ छोटे और बड़े भाई बहिनों के साथ प्रेम पूर्वक बर्ताव करना चाहिये।

४ भाई बहिनों को मीठे वचनों से बुलाना चाहिये।

५ राने, पीटने और राड़ आदि बुरे शब्द कहने की बुरी आदत न डालनी चाहिये।

६ खराब शब्द बोलने से शोभा घटती है, मूर्ख समझी जाती है और पाप लगता है।

७ लड़कों के साथ नहीं खेलना चाहिये।

८ शरीर और वस्त्र स्वच्छ रखने चाहियें।

९ हर रोज देव दर्शन के लिये जाना चाहिये तथा यदि

---

* यह पाठ लड़कों को पढ़ाने की आवश्यकता नहीं।

साधु साध्वियां विराजमान हों तो उन के भी दर्शन के लिये जाना चाहिये ।

१० मन्दिर और उपाश्रय में अपने छोटे भाई बहिनों के साथ जाने की आदत डालनी चाहिये ।

११ विवाह के पश्चात् पति की आज्ञा में रहना चाहिये ।

१२ अहंकार, काम, क्रोध, तथा ईर्ष्या आदि दुर्गुणों का त्याग करना चाहिये ।

१३ मन में धैर्य रख कर स्वामी की सेवा में तत्पर रहना चाहिये।

१४ अयोग्य रीति से देखना, बैठना, उठना, और चलना फिरना भी उचित नहीं और नाहो किसी प्रकार का दुष्ट भाषण करना चाहिये ।

१५ दूसरे पुरुषों को पिता और भाई के समान समझना चाहिये ।

१६ पति को भोजन कराकर भोजन करना चाहिये। और स्वामी से पहिले सोना नहीं चाहिये ।

१७ स्वामी बाहर से घर आवे तो प्रसन्न और हंसते हुये मुख से और मधुर वचनों से पति का सत्कार करना चाहिये ।

१८ घर की वस्तुओं को स्वच्छ रखना चाहिये ।

१९ रसोई सुन्दर बनानी चाहिये और ठीक समय पर भोजन करना चाहिये ।

२० इन्द्रियों को वश में रखना चाहिये।

२१ स्वामी का कभी भी अपमान नहीं करना चाहिये।

२२ नीच स्त्रियों की संगति नहीं करनी चाहिये, और नाही उनके साथ भाषण करना चाहिये।

२३ गृह कार्यों में सदा उद्योगी रहना चाहिये।

२४ गहने और कपड़े आदि संभाल कर रखने चाहिये।

२५ किसी की हंसी नहीं करनी चाहिये।

२६ बहुत हंसना नहीं चाहिये। दरवाजे में, गलियों में और एकांत में नहीं बैठे रहना चाहिये।

२७ पर पुरुष के साथ अपने घर में या बाहिर कभी एकांत में न बैठना चाहिये।



१६-कन्याओं के लिये हित वचन-भाग २

१ वह काम न करना चाहिये जिससे क्रोध उत्पन्न हो।

२ सदा सत्य बोलना चाहिये। झूठ नहीं बोलना चाहिये।

३ स्वामी परदेश में गया हुआ हो तो शरीर की विशेष शोभा न करे और योग्य नियमों का पालन करे।

४ पति ने जिस वस्तु का त्याग कर रखा हो स्त्री को भी उसका त्याग कर देना चाहिये।

३२ पति को जो बात अप्रिय हो स्त्री को भी उससे अलग रहना चाहिये।

३३ सास सुसर को माता पिता के समान जानना चाहिये।

३४ सास सुसर की सदा सेवा करनी चाहिये।

३५ सास की आज्ञा पालन में सदा तत्पर रहना चाहिये।

३६ सास के साथ कभी वाद विवाद न करना चाहिये।

३७ कुटुम्बी जनों के साथ मेल मिलाप से रहना चाहिये।

३८ घर के सेवक वर्ग की सार संभाल करनी चाहिये और उन को सन्तुष्ट रखना चाहिये।

३९ सेवक वर्ग के काम पर लक्ष्य रखना चाहिये।

४० घर के आमदनी खर्च का हिसाब रखना चाहिये।

४१ पति की आमदनी पर विचार कर उसके अन्दर खर्च करना चाहिये।

४२ घर का काम काज भली भांति चलाना चाहिये।

४३ पति के कल्याण के लिये भूख, प्यास और नींद का त्याग करना चाहिये।

४४ पति के जागने से पहिले जागना चाहिये।

४५ स्वामी की बात को पेट में रखना चाहिये।

४६ दास दासी होते हुये स्वामी से काम काज न कराना चाहिये।

४७ पतिव्रता स्त्रियों का समागम करना चाहिये और सती स्त्रियों के आख्यान (कथायें) पढ़ना चाहिये।

४८ अभिमान नहीं करना चाहिये।

४९ अवकाश (फुरसत) के समय में पुस्तकें पढ़ने की आदत डालनी चाहिये।

५० हो सके तो हर रोज सामायिक और द्रव्य पूजा करनी चाहिये।

५१ दिल साफ रखना चाहिये, कपटी नहीं होना चाहिये।

५२ लड़कों पर प्रेम रखना चाहिये।

५३ अभक्ष्य वस्तुओं का त्याग करना चाहिये।

५४ मिथ्यात्वी के पर्व नहीं करने चाहिये।

५५ धर्म को परम हितकारी समझ कर जहां तक हो सके उसका आराधन करना चाहिये।

२०–श्रद्धा का अभाव (संवाद)।

चपक–तू अब तक कहां गया हुआ था?

चंदु–मैं अम्बा जी के मन्दिर में गया था। जब मैं बीमार था, उस समय मेरी माता ने मानता मानी थी। यह हमारी कुलदेवी है परन्तु मैं तो यह समझता हूं कि काम पड़ने पर जो अपने काम आवे वही अपना कुल देव है।

चंपक—तब अम्बा जी पर तुम्हारी आस्था (श्रद्धा) तो नहीं।

चंदू—आस्था यास्था तो मैं कुछ नहीं समझता परन्तु माता यही कहा करती है कि काम पड़ने पर एक के पश्चात् दूसरे देव को आजमाना चाहिये कोई तो काम आवेगा ही।

चंपक—तो तुम यह मानते हो कि देव बहुत से हैं।

चंदू—भाई जहां देवों के ढेर के ढेर हों वहां एक को मानकर दूसरे को न मानने से ही लाभ है इससे तो यही समझना चाहिये कि लग गया तो तीर नहीं तुक्का ही सही। इसी लिये हमने बीस पच्चीस देवों से आढ़त कर रक्खी है। लो अब उनके नाम सुनो।

अम्बा, भवानी, काली इत्यादि।

चंपक—तो तुम दवाई पर तो पैसे नहीं खरचते होगे?

चंदू—यह तो हम खरचते हैं। इसकी बाबत तो हमारी मौसी कहा करती है कि हम दोहरा लाभ लेते हैं। यदि देवता फायदा न करेगा तो दवाई तो करेगी ही।

चंपक—तुम्हारे जैसे शिक्षित के मुंह से इस प्रकार की बातें सुन कर मुझे शोक होता है। सोचो तो सही, यदि मानता से बीमारी हटती हो तो लोग दवाइयों पर क्यों लाखों रुपये खर्च करें। दवा से भी यदि फायदा न हो तो

देवाधिदेव वीतराग भगवान् की भाव से भक्ति करनी चाहिये।

चंदु-कई बार दवादारू से दरद न मिटा परन्तु मानता से मिट गया। ऐसा मेरा अनुभव है। मेरी मासी के मस्तक में फोड़ा हो गया था किसी भी उपाय से वह न हटा तो मेरी मासी ने देवता की मानना मानी और वह हट गया। अब तुम क्या जवाब दे सकते हो ?

चंपक-भाई ? ऐसा समझना तुम्हारी भूल है। सत्य बात तो यह है कि जो सुख दुःख हम भोगते हैं वह अपने किये हुये कर्मों का फल है। फोड़े पर दवा लगाने में कमी हुई होगी इस लिये वह पहिले न हटा। तुम कहते हो कि पहिले पांच सात देवों की मानता मानी परन्तु फोड़ा न हटा। इसका कारण केवल यह था कि फोड़ा कच्चा था। पीछे वह पक गया। यदि तुम दवा या मानता न भी करते तो समय आने पर आप ही आप मिट जाता।

बाकी देव ने दरद हटाया यह तो मैं नहीं मानता। तुम्हारी मासी की समझ उस लचपचिये बनिये जैसी है जिसकी मैं तुमको कथा सुनाता हूं।

एक बनिया और एक मुसलमान एक दरिया में अलग २ नावों पर बैठे सफर कर रहे थे। कुछ देर पश्चात् दरिया में

तूफान आ गया और नाव डूबने लगी। बनिया एक के बाद दूसरे देव को स्मरण करने लगा। एक देव सहायता भी करने लगे तो भी बनिया धैर्य को छोड़कर दूसरे देव को स्मरण करने लगजाय। इससे देवों ने समझ लिया कि इसकी हमम श्रद्धा नहीं इस लिये उन में से किसी ने भी उसकी सहायता न की और अन्त म नाव-डूब गई। दूसरी ओर मुसलमान भाई तो "या अल्लाह! या खुदा! या मेरे अरवरदिगार! अगर तेरी मरजी मुझे बचाने की है तो मेरा बाल भी बांका न होगा" इस तरह एक देव की प्रार्थना करने लगा। परिणाम यह हुआ कि उसकी नाव ठोकरें खाती तीर पर आ गई और वह बच गया। इससे यह समझना चाहिये कि केवल एक ही देव को शुद्ध भाव से आराधन करना चाहिये जिससे कुछ फल भी हो। परन्तु जिस प्रकार तुम्हारी मान्यी मानती है वह तो अज्ञानी लोगों का अज्ञाण है। इस लिये तू इस बात को समझले और जैसा म कहता हूं उस पर आचरण कर।

चदु-भाई! ठीक है। मैं आज तक अंधेरे में था। आज से मैं तुम्हारी बात को अङ्गीकार करता हूं और तुम्हारा बड़ा उपकार मानता हूं। लो अब आज्ञा दो "जय जिनेश्वर देव"। "जय जिनेश्वर देव"। पीछे दोनों चले गये।

२१–पितृभक्ति (सम्वाद)

मोतीलाल–भाई कान्त ! तुम इस समय किधर जा रहे हो ?

कान्त–मैं दवाखाने दवाई लेने जा रहा हूँ ।

मो० ला०–किसके लिये दवाई लाओगे ?

कान्त–भाई ! घर में बूढ़ा बीमार पड़ा है । न मरता है न चारपाई ही छोड़ता है । मैं तो सेवा करता २ भी थक गया ।

मो० ला०–कान्त ! तेरे जैसे बालक के मुंह से यह शब्द शोभा नहीं देते ।

कान्त–शोभा दें, ना दें ! परन्तु मैं तो बहुत तङ्ग आ गया । मुझसे तो इसकी सेवा नहीं हो सकती । इसके मल, मूत्र की दुर्गन्ध से तो मेरा मस्तक फटा जाता है ।

मो० ला०–कान्त ! भूल गया । तुझे पालने, और पढ़ाकर योग्य बनाने के लिये इस बूढ़े ने कितना प्रयत्न किया ?

कान्त–यह तो इसका कर्तव्य ही था । इसमें किस पर एहसान है ?

मो० ला०–तू यह सेवा करता है ? इसका एहसान किस के सिर पर है ? अरे मूर्ख यह तो तेरा पिता है । यदि

कोई दूसरा भी होता तो उसकी भी यथा शक्ति सेवा करना हमारा धर्म है। मनुष्य की सेवा यदि मनुष्य न करेगा तो क्या पशु करने के लिये आवेंगे। क्या तुझे तेरी बाल्यावस्था याद नहीं। तेरे माता पिता ने तेरी कितनी दुर्गंध सही थी। उस समय यह उनका कर्तव्य था जो उन्होंने पालन किया। अब तेरा कर्तव्य है तू पालन कर। उपकारी माता पिता की सेवा करने का अवसर मिले यह तो सौभाग्य का चिन्ह समझना चाहिये।

कान्त—यह दोनों बातें सत्य हैं परन्तु इन का स्वभाव इस समय बहुत बिगड़ गया है। सेवा करते २ भी यह क्रुद्ध रहते हैं जिस से मनमें यह आता है कि इनको छोड़कर कहीं चला जाऊं। पीछे से इन पर जो कुछ बने यह सहैं।

मो०—वाह रे वाह ! माता पिता बच्चों को क्या इस लिये पाल कर बड़ा करते हैं ? उनके दरद का दुःख कितना होगा ? इसका विचार कर और अपना कर्तव्य पूरा कर।

कान्त—भाई ऐसी २ बातें तो सब कर लेते हैं परन्तु जब सिर पर आ पड़ती है तो पता लगता है कि कितने बीसी सो होते हैं। मुझे तो यह सेवा धर्म बड़ा कठिन प्रतीत होता है।

मो०—भाई ! यह तेरा कहना ठीक है। भर्तृहरि जी ने भी यही कहा है —

"सेवा धर्मः परमं गहनो योगिनामप्यगम्यः ॥"

परन्तु मुशकिल धर्म का फल भी कितना बड़ा होता है, इस बात का भी विचार कर लेना चाहिये। दु ख के पश्चात् सुख तो मिलता ही है। अपना कर्तव्य पालन करना मनुष्य का धर्म है। यदि वह यह न करे तो मनुष्य और पशु में क्या अन्तर है। यह हमारी विद्यार्थी अवस्था है। यदि हम इस समय इन बात को समझ लेंगे तो हमारा जीवन सुख से व्यतीत होगा। सेवा करना यह हमारा परम कर्तव्य है। इस को तू मन में धारण कर अपने मात पिता की खूब सेवा कर।

कान्त–भाइ मोतीलाल ! आज तुमने मुझपर बड़ा उपकार किया जो मेरी भूल मुझे बताई। उस के लिये मैं पछताता हू। अन्त समय तक मैं अपने माता पिता की सेवा करता रहूगा— लो 'जय जिनेश्वर देव'

२२-राजा शालिवाहन।

एक दिन राजा शालिवाहन अपने घोड़े को दूर तक जङ्गल में ले गया। राजा घोड़े से उतर कर एक वृक्ष की ओर गया जहा एक भील बैठा था। भील ने उसका आदर सत्कार किया और खाने के लिये भोजन दिया। रात को,

सख्त सरदी में भी, भील बाहर ही सोया परन्तु राजा को झोंपड़े में सुलाया। सख्त सरदी लगने से भील मरगया। राजा शालिवाहन उसकी स्त्री को दस हज़ार रुपया देकर अपने नगर में आया। पीछे से राजा को यह शङ्का हुई कि भील ने मेरा आगत स्वागत किया यहां तक कि मेरी खातिर दुःखी हो मर भी गया। परन्तु उसको क्या फल हुआ यह जानना चाहिये। उसकी समझ में कुछ न आया। फिर उसने पण्डितों से इस बात का खुलासा पूछा। बड़े २ पण्डितों ने साक्षात् सरस्वती देवी को बुलाकर इस प्रश्न का उत्तर पूछा। देवी ने कहा—इस गाम में धनपति नामक एक व्योपारी है। आज से एक महीने बाद उसके घर पुत्र उत्पन्न होगा। वह तुम्हें बुलावेगा। उस समय उस से तुम राजा के प्रश्न का उत्तर पूछना।

एक महीना गुज़रने पर धनपति सेठ के घर पुत्र उत्पन्न हुआ। उसने स्पष्ट वाणी से वररुचि को बुलाया। वररुचि राजा को लेकर वहां गया। पीछे लड़का कहने लगा—हे महाराज आप की जय हो—मैं वही भील हूं जो उस दिन जंगल में आप की खातिर मर गया था। उस सेवा के प्रभाव से आज मैं ना करोड़ सुवर्ण के स्वामी इस सेठ के घर उत्पन्न हुआ हूं। सेवा का इतना फल है।

यह बात सुनकर राजा की शंका दूर होगई और उस दिन से वह यथा शक्ति मृग की सेवा करने लगा।

हमें भी इस कथा से उचित शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और ऐसा आचरण करना चाहिये जिससे इस लोक और पर-लोक में सुख हो।

२३–पोष्य का पोषण

घर में हमारे आधार पर माता पिता, भाई, बहिन, दास, दासी, और पशु आदि जो जीव हैं वह पोष्य कहलाते हैं। इन सब की सार संभाल हमें करनी चाहिये और इनका भरण पोषण करना चाहिये। पशु पक्षी भी अपने बच्चों की सार सभाल लेते हैं। इनान के दाने लाकर चोगा देते हैं अर्थात् बच्चों के मुह में डालते हैं। उनको उड़ना सिखाते हैं। उनके वास्ते घोंसले बनाते हैं।

श्रीमान्—धनवान् लोग अपने २ घर में यदि एक एक गरीब के लड़के का पोषण करें तो जैन कौम की स्थिति बहुत कुछ सुधर जाय। कहीं कोई भूखा और दुखी न रहे। याद रहे कि घर के पोष्य वर्गों के पोषण और दूसरे गरीबों की भली आशिष हमारे सुख का मूल है। इस लिये जहां तक हो सके

उनके हृदय को शांत रखना चाहिये। उनके साथ बुरा बर्ताव कभी नहीं करना चाहिये।

जो मनुष्य विवाह हो जाने पर स्वार्थवश अपने माता, पिता, भाई, इत्यादि से जुदा हो जाते हैं और फिर उस पोष्य वर्ग का ध्यान नहीं रखते, उनकी सार संभाल नहीं करते और उनको निराधार स्थिति में छोड़ जाते हैं वे अधम मनुष्य कहलाते हैं और पृथ्वी पर भार रूप हैं। उचित सार संभाल करने वाले जगत् को प्रिय होते हैं और जहाँ तहाँ लोग उनका कीर्तन करते हैं। घर के आदमी उसकी इच्छा के अनुकूल काम करने लग जाते हैं जिससे वह व्यवहार और परमार्थ के कामों को भली प्रकार बिना किसी विघ्न के, करके अपने मनुष्य जीवन को सफल करते हैं। जो पोष्य वर्ग का पोषण नहीं करते उनकी दशा इससे उलटी होती है।

सागर सेठ की स्त्री का देहान्त हो गया और घर का सब भार उसके लड़कों की बहुओं के सिर पर पड़ा। परन्तु सेठ जब किसी को अच्छा भोजन करता या अच्छे वस्त्र पहिने देखता तो झगड़ा किया करता। यदि कोई भिक्षुक घर आये,तो वह एक मुट्ठी अनाज भी उसको न देता था। सेठ के इस बर्ताव से घर के सब आदमी तंग आगये।

कुछ समय के पश्चात् वहां एक योगिनी आई। उसने बहुओं को आकाशगामिनी विद्या दी। पीछे से वहुएं रात्रि को गुप्त रीति से खाने पीने लगीं और लक्कड़ के तख्ते पर बैठ

कर आकाश में फिरने लगा। एक नौकर को जब इस बात का पता लगा तो वह भी तख्ते पर बैठ गया। पहुए सुवर्ण द्वीप में जाकर नीचे उतरा। नौकर ने गुप्त रीति से देखा तो वहां सुवर्ण ही सुवर्ण था। जब बहुए कहीं गए तो नौकर ने जितना उससे हो सकता था, सुवर्ण उठा लिया। ऐसे करते २ थोड़े ही दिनों में वह धनवान बन गया। और उसने नौकरी का ध्यान छोड़ दिया। सागर सेठ ने खोज करके इसका कारण मालूम किया। नौकर के पास से सारा हाल सुनकर रात को वह भी लकड़ी के तख्ते पर बैठगया और बहुओं के साथ सुवर्ण द्वीप में गया। यहां स्थल २ पर सोना देख कर उसे लोभ हुआ और उसने खूब सोना इकट्ठा किया। अब तख्ते पर भार अधिक हो गया। बहुओं ने सागर सेठ को वहां देख कर कुछ विचार किया। जब तख्ता उड़कर आकाश में जाता हुआ समुद्र के ऊपर पहुंचा तो उन्होंने सागर सेठ को समुद्र में धक्का दे दिया। और घर आकर सुख मनाने लगीं। दूसरी तरफ सागर सेठ बुरे हाल में मरकर दुखी हुआ।

जो पुरुष उचित सार संभाल नहीं रखते उन का यही हाल होता है। इस लिए यही उचित है कि घर में जो कोई भी अपने आश्रित हों उनकी खान, पान, वस्त्र तथा औषधि आदि से सार संभाल करनी चाहिये—यही इस पाठ का सार है।

२—इतिहास विभाग।

१—श्री शान्तिनाथ जी।

श्री शांतिनाथ प्रभु १६ वें तीर्थंकर थे। सम्यक्त्व की प्राप्ति करके १२ वें* भव में आपने मोक्षपद को प्राप्त किया।

दसवें भव में यह जम्बुद्वीप के पूर्व महा विदेह में पुण्डरीकिणी नामा नगरी म धनरथ नामक महारथी राजा के पुत्र थे। धनरथ की दो रानियां थीं प्रियमती और मनोरमा। यह प्रियमती के पुत्र थे और उस समय उनका नाम मेघरथ था। मनोरमा का भी एक पुत्र था। उनका नाम दृढ़रथ था।

जब दोनों पुत्र योग्य अवस्था को प्राप्त हुये तो पिता ने उनका विवाह कर दिया। कुछ समय बीतने पर लोकांतिक देवताओं की प्रेरणा से मेघरथ को राज्य का भार सौंपकर राजा धनरथ ने दीक्षा लेली और अनुक्रम से केवल ज्ञान प्राप्त कर तीर्थ प्रवर्त्ताने लगे।

---

*तीर्थंकरों के भवों की गिनती उनको सम्यक्त्व प्राप्त होने वाले भव से की जाती है। इस अवसर्पिणी में जो २४ तीर्थंकर हुये हैं उनमें से श्री ऋषभदेव जी १३ वें, श्री शान्तिनाथ १२ वें, नेमिनाथ ९, पार्श्वनाथ १०, और भगवान महावीर २७ और बाकी ३ भव के बाद मोक्ष को प्राप्त हुये कहे गये हैं।

एक दिन राजा मेघरथ पाषध (पौसह) में बैठा था। उस समय भय से थर २ कांपता हुआ एक कबूतर इनके पास आकर बैठ गया। राजा ने उसे अभयदान दिया। उस कबूतर के पीछे एक बाज आ रहा था और उसको पकड़कर खाना चाहता था। कबूतर को राजा के आधीन देखकर बाज कहने लगा— "राजन् ! मेरा भोजन आप के पास है। वह मुझे दे दो।" राजा कहने लगा—"ऐ मूर्ख पक्षी ! एक क्षण भर के सुख के लिये प्राणी हिंसा करके तू क्यों नरक में जाने की इच्छा करता है ?" बाज कहने लगा—"राजन् ! एक तरफ तो आप कबूतर को बचाकर दया दिखा रहे हैं और दूसरी तरफ मेरी भूख की परवाह नहीं करते। आप जानते हैं मांस ही मेरा भोजन है इस लिये मेरा भोजन मुझे दे दो।"

यह सुन राजा ने बाज से कहा— "चिन्ता न कर ! मैं अपने शरीर से इस कबूतर के बराबर मांस तुम्हें दे देता हूँ।" इतना कहते ही राजा ने एक तराजू मंगवाया। उसके एक पलड़े में कबूतर को रक्खा और दूसरे में अपने शरीर में से काटकर मांस डालने लगे।

ज्यों २ राजा अपना मांस काट कर तराजू में डालते थे त्यों २ कबूतर का तोल बढ़ता था, बढ़ते २ वह इतना बढ़ गया कि राजा को अपना शरीर तराजू में डालना पड़ा। सब लोग हा २

कार करने लगे। लोगों ने उनसे प्रार्थना की– "प्रभु जी ! आप यह क्या करने लगे हैं। एक पक्षी के लिये अपना अमूल्य शरीर नष्ट करके अपनी प्रजा को क्यों अनाथ बना रहे हैं ? यह कोई साधारण कबूतर नहीं जान पड़ता। यह तो कोई मायावी देव होगा। क्योंकि कबूतर में इतना भार नहीं होता।" राजा ने उत्तर दिया—"नहीं। मैं इस पक्षी को अभयदान दे चुका हूं। मैं अपने दिये हुये दान को वापिस नहीं ले सकता।"

राजा को अपने प्रण में इस प्रकार दृढ़ देखकर कबूतर में प्रतिष्ठित देवता प्रत्यक्ष हुआ और कहने लगा कि "हे राजा ! ईशानेन्द्र की सभा में मैंने आपकी प्रशंसा सुनी थी। मैं उसे सह न सका। इस लिये आपकी परीक्षा करने के लिये ही मैंने यह काम किया था। अब आप मेरे अपराध को क्षमा करें।" यह कह कर देवता अपने स्थान को चला गया।

दूसरे दिन राजा ने पोसह का पारना किया। पहिले दिन की घटना से उसे वैराग्य हो गया था। अपने पुत्र मेघसेन को राज्य देकर अपने छोटे भाई दृढ़रथ के साथ राजा मेघरथ ने दीक्षा ली और बहुत वर्षों तक चारित्र पालकर दोनों भाई काल करके देवता हुये।

१—श्री शान्तिनाथ जी–२।

देवलोक में आयु पूर्ण करके मेघरथ का जीव ज्येष्ठ वदि त्रयोदशी के दिन जम्बुद्वीप के भरतक्षेत्र में हस्तिनापुर नगर में राजा विश्वसेन की रानी अचिरा की कुक्ष से पुत्रपने उत्पन्न हुआ। माता पिता ने इनका नाम शान्तिनाथ रखा। क्योंकि जब आप गर्भ में थे उस समय कुरुदेश में महामारी आदि जो उपद्रव फैल रहे थे वह सब शान्त हो गये थे। प्रभु के शरीर पर मृग का चिन्ह था और रङ्ग सुवर्ण जैसा था।

बाल्यावस्था के व्यतीत हो जाने पर जब प्रभु युवा हुये तब राजा विश्वसेन ने अनेक राज कन्याओं के साथ इनका विवाह कर दिया और २५ हजार वर्ष की अवस्था में पिता ने इनको राज्य का भार सौंपा।

दृढ़रथ का जीव श्री शान्तिनाथ की रानी यशोमती की कुक्ष से पुत्रपने उत्पन्न हुआ।

एक दिन श्री शान्तिनाथ जी की आयुधशाला में चक्ररत्न उत्पन्न हुआ। प्रभु ने छ खण्ड पृथ्वी को जीता। देवताओं और दूसरे मुकुटबद्ध राजाओं ने चक्रवर्तीपने का अभिषेक किया और यह उत्सव बारह साल तक रहा। श्री शान्तिनाथ जी चौदह रत्न (जिनमें से हर एक रत्न के एक हज़ार यक्ष अधिष्ठाता थे), नौ महानिधि, चौंसठ हज़ार स्त्री, ८४ लाख

हाथी, ८४ लाख घोड़े, ८४ लाख रथ, ६६ करोड़ ग्राम, ६६ करोड़ पैदल और ३२ हजार मुकुट बद्ध राजाओं के स्वामी थे।

एक दिन लोकांतिक देवताओं ने आकर प्रभु से प्रार्थना की कि आप तीर्थ प्रवर्त्तावो। फिर एक वर्ष तक दान देकर प्रभु ने अपने पुत्र चक्रायुध को राज्य सोंपकर ज्येष्ठ वदि चौदश के दिन सहस्राम्रवर्ण नामक उद्यान में १००० राजाओं के साथ दीक्षा ली। और दूसरे दिन मंदिरपुर के राजा सुमित्र के घर परमान्न से पारना किया। एक वर्ष तक विहार करके प्रभु उसी वन में आये और छट्ठ करके नन्दी वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर खड़े हो गये। वहां पौष सुदि नवमी के दिन प्रभु को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। देवताओं ने समवसरण की रचना की और भगवान ने वहां बैठकर उपदेश दिया। उपदेश को सुनकर पेंतीस राजाओं के साथ चक्रायुध ने भी दीक्षा ले ली।

अनुक्रम से विहार करते २ प्रभु अनेक जीवों का कल्याण करते रहे और अन्त में अपना निर्वाण काल समीप जानकर समेत शिखर पर पधारे। वहां ६०० मुनियों के साथ एक मास का अनशन ग्रहण करके ज्येष्ठ वदि त्रयोदशी के दिन भगवान् ने निर्वाण पद को प्राप्त किया। उस समय भगवान् की आयु एक लाख वर्ष की थी।

३-श्री धर्मनाथ जी ।

रत्नपुर के राजा भानु की रानी सुव्रता ने माघ सुदि ३ के दिन पुत्र रत्न का जन्म दिया। उनके शरीर पर वज्र का चिह्न था। बालक का नाम धर्मनाथ रखा गया क्योंकि जब यह गर्भ में था तो रानी को धर्म करने का दोहद उत्पन्न हुआ था।

युवावस्था को प्राप्त करके अपने भोग्य कर्मों को भोगने के लिए प्रभु ने पाणिग्रहण किया। अढ़ाई लाख वर्ष की आयु में यह राज्य सिंहासन पर बैठे। पांच लाख वर्ष तक राज्य करके प्रकाचन नामक उद्यान में माघ सुदि त्रयोदशी के दिन छट्ठ का तप करके १००० राजाओं के साथ प्रभु ने दीक्षा ली। दूसरे दिन सौमनपुर नगर में धर्मसिंह राजा के घर प्रभु ने पारना किया। तत्पश्चात् विहार करने लगे। दो वर्ष पश्चात् उसी वन में आकर दधिपर्ण वृक्ष के नीचे प्रभु ने ध्यान लगाया और पौष पूर्णिमा के दिन केवल ज्ञान प्राप्त किया।

केवल ज्ञान प्राप्त कर दो कम अढ़ाई लाख वर्ष तक विहार करके प्रभु अनेक जीवों का कल्याण करते रहे। इसके अनन्तर अपना मोक्षकाल समीप जानकर श्री धर्मनाथ जी समेत शिखर पर पधारे। यहां १६० मुनियों के साथ अनशन-व्रत ग्रहण करके ज्येष्ठ सुदि पंचमी को प्रभु ने मोक्षपद को प्राप्त किया।

प्रभु अढ़ाई लाख वर्ष कुमारपन में, पांच लाख वर्ष राज्य में और अढ़ाई लाख वर्ष व्रत में रहे। उनकी आयु १० लाख वर्ष की थी और यह पंद्रहवें तीर्थंकर थे।

१४-श्री अनन्तनाथ जी।

इस जम्बुद्वीप में अयोध्या नामा नगरी में सिंहसेन राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम सुयशा था। उसकी कूख से वैशाख वदि त्रयोदशी के दिन पुत्र उत्पन्न हुआ। उनके शरीर का रङ्ग सुवर्ण जैसा था और बाज का चिन्ह था। माता पिता ने उसका नाम अनन्तजित रक्खा। क्योंकि इनके गर्भ में होते हुए पिता ने अपने शत्रुओं को अनन्त बल से जीता था।

युवावस्था को प्राप्त होने पर अनेक राज कन्याओं से इनका विवाह कर दिया गया और साढ़े सात लाख वर्ष की आयु में पिताने इनको राज्य भार सौंप दिया। प्रभु पंद्रहलाख वर्ष तक राज्य का पालन करते रहे।

एक समय लोकान्तिक देवताओं की प्रेरणा से प्रभु ने छट्ठ तप करके वैशाख वदि चतुर्दशी के दिन सहस्राम्र नामक उद्यान में दीक्षा ली। दूसरे दिन वर्धमान नगर में विजय राजा के घर पारणा किया। तीन वर्ष तक विहार करके भगवान् फिर उसी वन में आये और अशोक वृक्ष के नीचे ध्यान लगा दिया। वैशाख वदि चतुर्दशी के दिन प्रभु को केवल ज्ञान हुआ।

पृथ्वी पर विहार करते २ प्रभु ने अनेक जीवों का कल्याण किया और तत्पश्चात् अपना निर्वाण काल निकट जानकर प्रभु समेत शिखर पर आये और वहा सात हजार साधुओं सहित एक मास का अनशन कर दिया। एक मास के अन्त में तीस लाख वर्ष की आयु पूरी करके चैत्र शुदि पंचमी के दिन प्रभु ने निर्वाण पद को प्राप्त किया। यह चौदहवें तीर्थंकर थे।

५-श्री विमलनाथ जी।

कांपिलपुर के राजा कृतवर्मा की श्यामा रानी की कूख से माघ शुदि तृतीया के दिन प्रभु का जन्म हुआ। प्रभु के यौवनावस्था को प्राप्त होने पर पिता ने अनेक राजकन्याओं के साथ उनका विवाह कर दिया। और १५ लाख वर्ष की अवस्था में उनको राज्यासन पर बिठा दिया। तीस लाख वर्ष तक राज्य करके प्रभु ने वरसी दान दिया और फिर माघ शुदि चतुर्थी के दिन सहस्राम्रवन में एक हजार राजाओं के साथ प्रभु न दीक्षा ली। तीसरे दिन धान्यकुट नगर में जय राजा के घर पारणा किया। दो वर्ष तक विहार करके प्रभु सहस्राम्रवन में आये और वहा जम्बु वृक्ष के नीचे कायोत्सर्ग किया। पौष शुदी ६ के दिन प्रभु को केवल ज्ञान हुआ। फिर भगवान् विचर कर उपदेश देने और अनेक भव्य जीवों का उपकार करने लगे।

1

तत्पश्चात् अपने मोक्षकाल को समीप जानकर भगवान् समेत शिखर पर पधारे और वहां अनशन करके एक मास बीतने पर छः हज़ार साधुओं के साथ आषाढ़ वदि ७ मी के दिन ६० लाख वर्ष की आयु पूरी करके निर्वाण को प्राप्त हुये। यह तेरहवें तीर्थंकर थे।

६- श्री वासु पूज्य जी।

जम्बुद्वीप के भरतार्द्ध में चंपा नामा नगरी में वसु पूज्य राजा की रानी जया की कुख से ज्येष्ठ शुदि नवमी के दिन प्रभु का जन्म हुआ, इन के शरीर पर भैंसे का चिन्ह था।

इन के युवा अवस्था को प्राप्त होने पर पिता ने इन का विवाह कर देने के लिये बड़ा आग्रह किया। परन्तु इन का भोगफल कर्म शेष नहीं था इस लिये इन्होंने विवाह करने और राज्यासन पर बैठने से इन्कार कर दिया। और पिता को समझा कर लोकांतिक देवताओं की प्रेरणा से फाल्गुण वदि अमावस के दिन ६०० राजाओं के साथ दीक्षा लेली और अगले दिन महापुर नगर में सुनन्द राजा के घर पारणा किया।

एक मास छद्मस्थ दशा में विहार करके प्रभु वासिल विहार-गृह नामक वन में आये और गुलाब के पेड़ के नीचे ध्यान लगा कर खड़े होगये। माघ शुदि द्वितीया के दिन प्रभु को केवल ज्ञान हो गया।

अनेक नगरों और ग्रामों में विहार करते २ और जीवों का कल्याण किया और तदनन्तर अपना मोक्ष काल समीप जानकर प्रभु चंपा नगरी में पधारे। वहां छ सौ मुनियों के साथ प्रभु ने अनशन व्रत ग्रहण किया और एक मास के अन्त में आषाढ़ शुक्ल चतुर्दशी के दिन भगवान् ने मोक्ष पद प्राप्त किया।

प्रभु १८ लाख वर्ष कुमारावस्था में और चव्वन लाख वर्ष दीक्षा में रहे। इस प्रकार उन की कुल आयु ७२ लाख वर्ष की थी। वह १२ वें तीर्थंकर थे।

७—श्री श्रेयासनाथ जी।

सिंहपुर नगर में विष्णुराज नामक राजा राज्य करता था। उस की रानी का नाम विष्णु था। भाद्रपद वदी द्वादशी के दिन इन के घर पुत्र पैदा हुआ। उस का रंग सुवर्ण जैसा था और उन के शरीर पर गंड का चिन्ह था। माता पिता ने उस का नाम श्रेयासनाथ रक्खा।

अनुक्रम से यौवनावस्था को प्राप्त करके प्रभु ने विवाह किया और २१ लाख वर्ष की आयु में राज्यासन पर बैठे और ४२ लाख वर्ष तक राज्य किया।

तत्पश्चात् वरसी दान देकर फाल्गुण वदि १३ के दिन दीक्षा ली। अगले दिन सिद्धार्थ नगर में नंद राजा के घर पारणा किया।

२ मास तक विहार करके प्रभु फिर सहस्राम्र वन में आये और अशोक वृक्ष के नीचे ध्यान लगाकर खड़े हुये । कर्मों को क्षय करके ज्येष्ठ वदी १५ को प्रभु को केवल ज्ञान प्राप्त हुआ। अनुक्रम से विहार करते करते प्रभु ने अनेक जीवों का कल्याण किया।

पश्चात् अपना मोक्षकाल निकट जानकर प्रभु समेत शिखर पर्वत पर पधारे । और वहां १००० मुनियों के साथ अनशन व्रत ग्रहण किया। एक मास के अन्त में श्रावण शुदि ३ के दिन हजार मुनियों के साथ प्रभु ने निर्वाण पद को प्राप्त किया।

प्रभु इक्कीस लाख वर्ष कुमारावस्था में, बयालीस लाख वर्ष राज्य में और इक्कीस लाख वर्ष दीक्षा में रहे । इस प्रकार उन की कुल आयु चौरासी लाख वर्ष की थी। यह ११ वें तीर्थंकर थे।

८—श्री शीतलनाथ जी।

भरतक्षेत्र के भद्दिलपुर नामक नगर में राजा दृढ़रथ की नन्दा नामा रानी से माघ वदि द्वादशी के दिन पुत्र उत्पन्न हुआ। राजा ने उसका नाम शीतलनाथ रक्खा। क्योंकि इसके गर्भ में होते हुये रानी के स्पर्श से राजा का तप्त अङ्ग शीतल हो गया था।

अनेक धातृ माताओं के द्वारा पालित प्रभु दूज के चन्द्रमा की तरह दिनों दिन बढ़ने लगे। जब यह यौवन अवस्था को प्राप्त हुए तो पिता ने अनेक राज-कन्याओं के साथ उनका पाणिग्रहण करा दिया।

जब उनकी आयु २५ हज़ार पूर्व की हुई तब पिता के आग्रह से उन्होंने राज्य भार संभाला और ५० हज़ार पूर्व तक भली भांति उसका पालन किया। पर दिन लोकान्तिक देवताओंने आकर दीक्षा लेकर तीर्थ प्रवर्तन के लिए उनसे प्रार्थना की। १वर्ष तक दानदेकर छट्ठका तप करके माघ वदि १२के दिन सहस्राम्र नामक उद्यान में आकर एक हज़ार राजाओं के साथ प्रभु ने दीक्षा ली। दूसरे दिन रिष्ट नगर के राजा पुनर्वसु के घर परमान्न से पारणा किया।

यहां से विहार करके प्रभु ३ मास तक विचरते रहे, और वापिस आकर पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यान लगाया। पौष वदि ४ को भगवान् को केवल ज्ञान हुआ। देवताओं ने समवसरण की रचना की। यहां बैठकर भगवान् ने उपदेश दिया। यहां से चलकर विहार करते रहे और अनेक भव्य जीवों का उपकार किया।

तत्पश्चात् निर्वाण काल समीप जानकर प्रभु समेत शिखर पर्वत पर पधारे और वहां एक हज़ार मुनियों के साथ अनशन

किया। एक मास के अन्त में वैशाख वदि दूज के दिन प्रभु ने उन मुनियों सहित मोक्षपद को प्राप्त किया। भगवान् की आयु १ लाख पूर्व वर्ष की थी। और यह १०वें तीर्थंकर थे।

६—श्री पुष्पदन्त जी।

काकन्दी नगरी में सुग्रीव नामक राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम रामा था। उसकी कूख से मार्गशीर्ष वदि ५ के दिन पुत्र रत्न का जन्म हुआ। उसके शरीर पर मकर (मगर) का चिह्न था। इसको पुष्पदन्त कहते थे क्योंकि पुष्प के दोहद से प्रभु के दन्त आये थे। परन्तु माता पिता ने इनका नाम सुविधिनाथ रक्खा था।

यौवन अवस्था को प्राप्त करके पिता के आग्रह से प्रभु ने अनेक राज कन्याओं से विवाह किया फिर पिताने उनको राज्य भार सौंप दिया। उस समय उन की आयु ५० हजार पूर्व की थी। प्रभु ने ८८ पूर्वांग सहित ५० हजार पूर्व तक राज्य किया।

लोकान्तिक देवताओं की प्रेरणा से प्रभु ने सांवत्सरिक दान दिया और छट्ठ का तप करके मार्गशीर्ष वदि ६ के दिन १००० राजाओं के साथ सहस्राम्र वन में दीक्षा लेली। अगले दिन श्वेतपुरनगर में पुष्प राजा के घर प्रभु ने क्षीर से पारणा किया।

वहां से चलकर प्रभु ४ मास तक विहार करते रहे और फिर उसी वन में वापिस आये। यहां मालुर वृक्ष के नीचे ध्यान लगाया। कार्तिक सुदि ३ के दिन प्रभु को केवल ज्ञान हुआ। अब भगवान् विचर कर उपदेश देने और अनेक जनों का उपकार करने लगे। अपने निर्वाण का समय समीप जानकर प्रभु समेत शिखर पर पधारे और वहां १ हजार मुनियों के साथ अनशन व्रत किया। एक मास के अन्त में कार्तिक वदि ६ के दिन भगवान् निर्वाण पद को प्राप्त हुये।

प्रभु ५० हजार पूर्व कुमारावस्था में, ८८ पूर्वांग सहित ५० हजार पूर्व राजा अवस्था में और ८८ पूर्वांग कम १ लाख पूर्व दीक्षा में रहे इस प्रकार २ लाख पूर्व वर्षों की आयुष भोगकर सुविधिनाथ जी मोक्ष में गये। यह नवमें तीर्थंकर थे।

१०—श्री हेमचन्द्राचार्य।

धंधूका नगरी में चागिल नामक एक वणिक रहता था। उसकी स्त्री पाहनी ने एक रात स्वप्न में देखा कि उसने एक चिंतामणि रत्न साधु महाराज को दिया। उस समय नगरी में श्री देवचन्द्र सूरिजी विराजमान थे। पाहनी ने उन से अपने स्वप्न का फल पूछा। वह कहने लगे-तेरे एक पुत्र रत्न उत्पन्न होगा और वह दीक्षा लेकर जैनधर्म की उन्नति करेगा।

मुनि महाराज तो विहार करके दूसरी जगह चले गये। ठीक समय पर विक्रम सवत् ११४५ कार्तिक पूर्णिमा को पाहनीने पुत्र को जन्म दिया। माता पिता ने बड़े प्रेम के साथ उसका जन्मोत्सव किया और उसका नाम चङ्गदेव रखा।

कुछ समय बाद श्री देवचन्द्र सूरिजी फिर उस नगरी में पधारे। पाहनी पुत्र सहित उनके दर्शन करने के लिये गई। खेलते २ चङ्गदेव सूरि महाराज के आसन पर जा बैठा। यह देख सूरि महाराज ने पाहनी से कहा—"अपनी पहिली बात को याद कर और यह पुत्र हमें देदे"। उसने अपना पुत्र उन्हें दे दिया। उस समय चङ्गदेव ५ वर्ष का था। सूरि महाराज ने उसे उदयन मन्त्री को सौंप दिया जहां उसका पालन पोषण होता रहा और वह विद्याभ्यास करता रहा। नौ वर्ष की अवस्था में सूरि महाराज ने उसे दीक्षा देदी और उसका नाम सोमदेव रखा।

एक समय मुनि सोमदेव जी फिरते २ नागपुर में आये। धनद नामक निर्धन वणिक के घर गोचरी (आहार लेने) को लिये गये। धनद बोला—"महाराज! मैं बहुत निर्धन हूं।" सोमदेव जी ने आचार्य महाराज से कहा "कि इसके घर के आगन में सोने की मोहरों से भरा हुआ घडा गडा हुआ है।" जब खोदा तो सचमुच घडा निकला। धनद ने आचार्य महाराज से कहा—"कृपानाथ! आप इन्हें (सोमदेव जी को) आचार्य

पदवी प्रदान करें। उत्सव में जितना धन खर्च होगा मैं दूंगा।" सूरि महाराज ने यह बात मानली। मुनि सोमदेव जी को आचार्य पदवी दी गई और उनका नाम हेमचन्द्राचार्य रखा गया। यह सम्वत् ११६२ की बात है।

एक दिन श्री हेमचन्द्र जी महाराज और सिद्धराज का मिलाप हुआ। महाराज जी ने उसको उपदेश दिया। उसने शिकार करना भी छोड दिया और हर साल एक करोड़ मोहरें धर्म के कामों में खर्च करने लगा। फिर श्री हेमचन्द्र जी महाराज ने संस्कृत का एक व्याकरण बनाया जिसकी हाथी की सवारी में पधार कर सिद्ध राजा ने बड़ा उत्सव किया। जो सिद्ध हेम व्याकरण के नाम से प्रसिद्ध है।

सिद्ध राजा के कोई सन्तान न थी। आचार्य महाराज से यह सुनकर "कि उसके सन्तान नहीं होगी और उसका राज्य कुमारपाल भोगेगा" सिद्ध राजा को बड़ा दुःख हुआ। उसने कुमारपाल को मरवाने का प्रयत्न किया परन्तु वह देशांतर में चला गया। जब सिद्ध राजा मर गया तब वह पाटन में आया और सिंहासन पर बैठा।

श्री हेमचन्द्राचार्य जी ने उसे कई सङ्कटों से बचाया क्योंकि वह समझते थे कि इसके द्वारा धर्म की बडी उन्नति होगी। उन्होंने उसे धर्मोपदेश दिया जिस से राजा कुमारपाल की

जैनधर्म पर श्रद्धा हो गई। आचार्य महाराज के उपदेश से उसने १४ हज़ार नये जैन मन्दिर बनवाये और सोलह हज़ार पुराने जैन मन्दिरों का जीर्णोद्धार (मरम्मत) कराया।

एक दिन राजा कुमारपाल ने श्री आचार्य जी महाराज से निवेदन किया। मैं अंजनशलाका (नई मूर्तियों की प्रतिष्ठा) करना चाहता हूं। श्री हेमचन्द्राचार्य ने उसे मुहूर्त बताया और यह काम एक शिष्य को सौंपा गया। कुमारपाल का भतीजा अजयपाल राज्य लेना चाहता था। जिस शिष्य को मुहूर्त का काम सौंपा गया था उससे उसकी मित्रता थी। शिष्य ने कहा यदि किसी प्रकार मुहूर्त टल जाय तो राजा और आचार्य महाराज दोनों काल कर जायेंगे। अजयपाल ने प्रतिष्ठा का लोभ देकर उनसे मुहूर्त टला दिया।

आचार्य महाराज को भी सब बात मालूम हो गई और उन्होंने कुमारपाल से भी कह दिया। आचार्य महाराज के मस्तक में मणि थी। एक योगी उसको प्राप्त करना चाहता था। उसने समय पाकर आचार्य महाराज के आहार में (जबकि एक शिष्य आहार ला रहा था) विष डाल दिया, जिससे आचार्य महाराज का स्वास्थ्य बिगड़ गया। विष का हाल जान कर अपना मृत्यु को सामने देखकर उन्होंने अपने चेलों से कहा "जिस जगह मेरी चिता लगाओ वहा मेरे सिर के नीचे दूध से

भरी हुआ पात्र रख देना जिससे मेरे मस्तक की मणि उसमें गिर पड़े। उस मणि का सम्भाल कर रखना। यह मणि यागी का कदापि न देना।" यह कह कर आशा व्रत कर दिया और ८४ वर्ष की अवस्था में विक्रम सम्वत् १२२६ में स्वर्ग पधारे। थोड़े ही समय बाद राजा कुमारपाल की भी मृत्यु हो गई।

११—श्री हरि विजय जी सूरि।

श्री हरि विजय जी सूरी का जन्म विक्रम सम्वत् १५८३ मार्गशीर्ष वदि नवमी को पालनपुर नगर में हुआ। आपके पिता का नाम कुराशाह और माता का नाथी था। आपके माता पिता ने बड़े स्नेह भाव के साथ आपका पालन पोषण किया। परन्तु कुछ ही समय बाद इस बालक को अकेला छोड़कर परलोक सिधार गये। उस समय इनकी अवस्था १३ वर्ष की थी। यह पाटन नगर में जहां इनकी बहिन ब्याही थी चले गये। कुछ ही दिनों बाद श्री विजयदान सूरि के पास इन्होंने दीक्षा ले ली। और खूब विद्याभ्यास करने लगे। २५ वर्ष की अवस्था में आप को पाठक की पदवी दी गई और दो ही वर्ष बाद आप को आचार्य बना दिया गया।

मुगल बादशाह अकबर को जो उस समय देहली में राज्य करता था, इन्हें मिलने की इच्छा हुई। उसने अपने दो आदमी

सूरि जी को लाने के लिये भेजे। सूरि जी महाराज यह समाचार पाकर बड़े प्रसन्न हुये और इस विचार से कि राजा को उपदेश देने से वह धर्म की कुछ उन्नति कर सकेंगे राजसभा में जाने को तैयार हो गये। राज कर्मचारियों ने हाथी, घोड़े, द्रव्य आदि उन्हें देने चाहे परन्तु मुनि जी ने यह कहकर "जैन साधु यह वस्तुए अङ्गीकार नहीं करते" सब लौटा दी और पैदल चल पड़े।

जब अकबर को उनके आने का समाचार मिला उसने थानसिंह आदि को भेजा कि वह बड़ी धूमधाम से मुनि महाराज का स्वागत करें। सूरीश्वर का स्वागत करके उनको दरबार में लाये। एक दो दिन विश्राम करने के बाद धर्म चरचा होने लगी।

सूरि जी वहां बहुत दिन ठहरे। उनकी विद्वता, सरलता और सदाचार का अकबर पर इतना प्रभाव पड़ा कि वह उन्हें उपहार में बहुत सी उत्तम और बहु मूल्य वस्तुएं देने लगा। परन्तु मुनि जी ने वह सब लौटा दीं। अकबर के बहुत आग्रह करने पर सूरीश्वर ने यह वर मांगा—

"कैदीगण को छोड़ा करदो पिञ्जरों के पक्षी स्वच्छन्द,
और आठ दिन "पर्युषण" में करो जीव हिंसा सब बन्द॥"

अकबर ने यह बातें स्वीकार कीं। सब कैदी छोड़ दिये गये पिञ्जरे में से पक्षी भी निकाल दिये गये। और पर्यूषणों में आठ दिन ही नहीं किन्तु १२ दिन तक जीव हिंसा बन्द करदी गई।

पश्चात् २ अकबर ने अपने जन्म दिन, नौरोज और सब रविवार और पर्यूषणों के १२ दिनों के लिये जीव हिंसा बन्द करदी। और सूरीश्वर को जगद्गुरु की पदवी दी।

जगद्गुरू फतहपुर सीकरी आदि अन्य स्थानों में विचर कर धर्मोपदेश देते चले गये। और अपने पीछे मुनि शान्तिचन्द्र जी को अकबर के दरबार में छोड़ गये। अकबर ने उनको भी उपाध्याय की पदवी दी। यह भी अकबर को धर्मोपदेश देते रहे और उसकी प्रशंसा में 'कृपारस कोष' पुस्तक रची जिसमें अकबर की उदारता आदि का वर्णन था। इसके बदले में अकबर ने उनको एक फरमान लिख दिया जिस से अधिक दिनों तक जीव हिंसा बन्द की। जजिया नामक कर (टैक्स) जो केवल हिन्दुओं से लिया जाता था हटा दिया। यह सब इन्हीं का प्रताप था कि अकबर ने साल में छ मास के लिये जीव हिंसा बन्द करदी थी। शत्रुंजय के यात्रियों से कर लेना बन्द कर दिया, और बहुत से फरमान लिख दिये जिनसे पता चलता है कि जैनधर्म ने उस पर कितना प्रभाव डाला था। अन्त में आपने सम्वत् १६४६ में शरीर त्याग दिया।

१२—श्री विजयानन्द सूरि जी।

श्री विजयानन्द सूरि जी का जन्म चैत्र शुक्ला प्रतिपदा सम्वत् १८९३ गुरुवार को लहरा* ग्राम में हुआ। आपके पिता का नाम गणेशदास और माता का नाम रूपा देवी था। माता पिता ने आप का नाम आत्माराम रखा।

लहरा में कोई पाठशाला न थी इस लिये १० वर्ष की अवस्था में इनको ग्राम ही के एक पण्डित के सपुर्द किया गया परन्तु कुछ ही दिनों बाद इनके पिता काल कर गये। इस लिये जीरे के लाला जोधामल जो इनके पिता के मित्र थे इनको अपने पास ले आये। यह जोधामल स्थानक वासी जैन थे (जिनको ढूंढक या ढूंढिया भी कहते हैं) और यह स्थानकवासी साधुओं के पास आया जाया करते थे। और आत्माराम जी को भी अपने साथ ही ले जाया करते थे।

साधुओं के पास आने जाने से इनका भी संसार छोड़ देने का विचार हो गया और इन्होंने सवत् १९१० में स्वामी जीवनराम जी के पास दीक्षा लेली और साधु हो गये। आप अब सूत्र शास्त्रों का अभ्यास करने लगे परन्तु आपका दिल उस तरफ न जमा

---

* यह ग्राम पंजाब में ज़िला फीरोजपुर की तहसील ज़ीरा में जीरा नगर से २ मील पर है।

और आपने इस सम्प्रदाय की दीक्षा छोड़ दी। १५ और साधुओं ने भी आप का साथ दिया। आप सब पैदल ही अहमदाबाद पहुंच। वहां पहुंच कर तपगच्छीय मुनि श्री बुद्धि विजय जी के पास आपने फिर दीक्षा ले ली। जो १५ साधु आप के साथ आये थे वह आप ही के शिष्य हुये। दीक्षा लेने पर आप का नाम आनन्द विजय रखा गया। आपने जैन धर्म का खूब प्रचार किया। जगह २ फिर कर अहिंसा का उपदेश दिया और कई जीवों का कल्याण किया।

सन् १८९३ ईस्वी में अमेरिका देश के चिकागो नामक शहर में संसार भर के धर्मों की सभा हुई। आपको भी वहां से निमंत्रण आया। परन्तु आप जा नहीं सकते थे, क्योंकि जैन साधुओं को किसी प्रकार की सवारी करने की आज्ञा नहीं और इतनी दूर। समुद्र, पार बिना जहाज़ों में सवार हुये जाना असंभव था। आपने वीरचन्द राघव जी गांधी को पढ़ा कर विद्वान् बनाया और उन्हें वहां भेजा। उन्होंने जाकर वहां खूब व्याख्यान दिये और धर्म का प्रचार किया। लोगों पर उनके व्याख्यानों का कैसा प्रभाव पड़ा यह संसार से छिपा नहीं।

आपने जैनधर्म सम्बन्धी अच्छी २ पुस्तकें भी लिखी हैं जिन में से जैनतत्त्वादर्श, तत्वनिर्णय प्रासाद, अज्ञानतिमिर भास्कर चिकागो प्रश्नोत्तर अधिक प्रसिद्ध है।

संवत् १२५३ ज्येष्ठ शुक्ला अष्टमी मंगलवार को गुर्जरवाले में आपने शरीर छोड़ दिया।

१३—राजा कुमारपाल।

कुमारपाल सिद्ध राजा का बन्धु था और बड़ा गुणवान् मनुष्य था। वह बारम्बार श्री हेमचन्द्राचार्य जी के पास उपदेश सुनने के लिये आया करता था। इन का जन्म ११४९ विक्रम संवत् में हुआ था। इनके पिता का नाम त्रिभुवनपाल और माता का नाम काश्मीर देवी था। सिद्ध राजा के कोई संतान न थी इस लिये राज्य का अधिकारी कुमारपाल ही था। परन्तु सिद्ध राजा को यह पसन्द न था इस लिये उसने कुमारपाल को मरवाने के लिये अनेक उपाय किये। कुमारपाल का पुण्य प्रबल था इस लिये वह सब उपाय वृथा हुये। कुमारपाल देश देशान्तरों में फिरता रहा। जब सिद्ध राजा का काल हो गया कुमारपाल पाटण में आ गया।

सिद्ध राजा ने मरते समय अपने मन्त्रियों से कहा था—"यदि तुमने हमारा नमक खाया है तो कुमारपाल को राजगद्दी न देना।" परन्तु मन्त्रियों ने कुमारपाल को योग्य जान कर राजा बना ही दिया।

राजा बनते ही कुमारपाल ने अपने उपकारियों का खूब सम्मान किया परन्तु अपने परमोपकारी श्री हेमचन्द्राचार्य को बिलकुल ही भूल गया।

एक दिन आचार्य महाराज ने मंत्री से कहा—आज रात्रि में राजा को महल में मत आने दो क्योंकि वहां उपसर्ग होने वाला है। मंत्री ने राजा का रोक लिया। रात को महल पर बिजली गिरी और रानी मर गई। राजा ने मंत्री से पूछा कि इस आने वाले संकट का उस पहिले से ही कैसे पता लगा। मंत्री ने श्री हेमचन्द्राचार्य जी का नाम लिया। नाम सुनते ही उस अपने पुराने उपकारी याद आ गये। आचार्य महाराज को राज सभा में बुलाया। सूरीश्वर जी के आने पर राजा ने उन को वंदन किया और बड़े आदर सत्कार से उनको उचित स्थान पर बैठा कर विनय भक्ति करने लगा। राजा ने कहा "भगवन्! आपके उपकारों का बदला मैं किसी प्रकार भी नहीं दे सकता। इस लिये आप मुझे आज्ञा दें मैं किस प्रकार आपकी क्या भक्ति करूं"। यह सुन कर आचार्य महाराज कहने लगे "तुम्हारे लिये यही काम है कि तुम जैन धर्म आराधन करो और शासन की उन्नति करो।"

इस उपदेश को सुनते ही उसने जैन धर्म पर श्रद्धा की और श्रावक के १२ व्रत लिये। अपने मित्र मालवाधिपति अर्णोराज

को जैनधर्म बनाया। चौदह हजार नये जैन मन्दिर बनवाये। सोलह हजार जैन मंदिरों का जीर्णोद्धार कराया। तारगा जी पर बड़ा ऊंचा और विस्तार वाला जैन मंदिर बनवा कर उसमें श्री अजितनाथ जी की मूर्ति स्थापन की और श्री हेमचन्द्राचार्य जी के चरण स्थापित किये। इस प्रकार धर्म की खूब प्रभावना की।

इनका भतीजा अजयपाल राज्य लेना चाहता था। उस ने इनके मारने के लिये बहुत कुछ किया। अन्त में उसी अजयपाल ने विक्रम संवत् १२३० में इनको विष दिया जिससे इनकी मृत्यु हो गई।

१४-सेठ जगडू शाह।

जिस समय गुजरात में वाघेला वंश का राजा विशलदेव राज्य करता था उस समय पाटण में जगडूशाह नामक एक बड़ा धनाढ्य सेठ रहता था। वह बड़ा दयालु, परोपकारी, और जैनधर्म में दृढ़ श्रद्धा वाला था।

एक दिन उसके घर एक योगी आया। जगडूशाह ने उसका आदर सत्कार किया और उसको भोजन खिलाया। जाता हुआ योगी सेठ जी से कहने लगा-"सेठ जी ! आज से ५ साल पीछे इस देश में अकाल पडेगा जिस में अन्न और घास के अभाव से जीवों को बड़ा कष्ट होगा।"

यह सुनते ही जगडूशाह ने अपने आदमी देश देशांतरों में भेज दिये और घास और धान इकट्ठा करना आरम्भ किया। ५ साल के अन्दर उसने अपने पास बड़ा भारी संग्रह कर लिया।

पांच वर्ष बाद भारी अकाल पड़ा। सेठ जगडूशाह ने जगह २ दानशालाएं खोलदी और दीन दुखियों को अन्नदान देने लगा। जगह २ कुए, बावली, और तालाब खुदवा दिये। कच्छ के प्राचीन भद्रेश्वर जी के जैन मन्दिर का जीर्णोद्धार कराया। दुष्काल में दीनों का संकट दूर कर के और धर्म की प्रभावना कर दयालु सेठ प्रख्यात हुआ।

प्यारो! तुम्हें भी, जहां तक तुम से हो सके, दीन दुखियों की सहायता करनी चाहिये।



२—सामान्य ज्ञान विभाग।

१—विहरमान भगवान्

जो तीर्थंकर आज कल विद्यमान हैं और ग्राम प्रति ग्राम विचर कर लोगों को उपदेश देते हैं वह विहरमान जिन कहलाते हैं। आजकल उनकी संख्या २० है। उनके नाम नीचे दिये जाते हैं। उनमें से पहिले चार जम्बुद्वीप के महा विदेह क्षेत्र में हैं, दूसरे ८ धातकी खण्ड के विमहाविदेह क्षेत्र में हैं और अन्त के ८ अर्द्ध पुष्करवर द्वीप के विमहाविदेह क्षेत्र में हैं। यह अढ़ाई द्वीप कहलाते हैं*।

१ सीमंधर	११ वज्रधर
२ युगमंधर	१२ चन्द्रानन
३ बाहु	१३ चन्द्रबाहु
४ सुबाहु	१४ भुजङ्ग
५ सुजात	१५ ईश्वर
६ स्वयं प्रभ	१६ नेमि प्रभ
७ ऋषभानन	१७ वीरसेन
८ अनन्तवीर्य	१८ महाभद्र
९ सुर प्रभ	१९ देव यशा
१० विशाल	२० अजित वीर्य

* शिक्षक महानुभावों को यह पाठ पढ़ाते समय अढ़ाई द्वीप के नक्शे को प्रयोग में लाना चाहिये।

कण्ठ करने की सुगमता के लिये नीचे संस्कृत श्लोक में इनके नाम दिये गए हैं।

सीमन्धरं स्तौमि युगन्धरञ्च बाहुं सुबाहुं च सुजातदेवम्।
स्वयम्प्रभं श्रीऋषभाननमनन्तवीर्यं विशालनाथम् ॥१॥
सूरप्रभं वज्रधरञ्च चन्द्राननं नमामि प्रभुभद्रबाहुम्।
भुजङ्ग नमि प्रभमीश्वरनाथमथापरं श्रीजिनवीरसेनम् ॥२॥
महाभद्रमपि च महायशं श्री देवयशस तथा।
अजितमजितवीर्यं, वन्दे विंशतिमर्हताम् ॥३॥

२—पञ्च परमेष्ठी।

जगत् में अच्छे पुरुष बहुत हो गये हैं, बहुत हैं और बहुत होंगे। परन्तु उन सब में उच्चासन पर विराजमान उत्तम पुरुष पञ्च परमेष्ठी कहलाते हैं और वह पाँच प्रकार के होते हैं। सब से पहिले 'तीर्थंकर' कहे जाते हैं जिनकी सेवा में इन्द्र, करोड़ों देवता और राजे महाराजे हाज़िर रहते हैं। उनकी यह भावना होती है कि वह समस्त संसार को धर्मी बनावें। इसी भावना को लिये हुये वह अपनी आत्मशक्ति से कर्मरूपी शत्रुओं का नाश करते हैं। यही अरिहन्त भगवान् (तीर्थंकर) जब सब कर्मों का क्षय करके मोक्ष को प्राप्त होते हैं तो 'सिद्ध' कहलाते हैं। और यह दूसरी प्रकार के परमेष्ठी हैं। इन दोनों में बड़े तो सिद्ध हैं परन्तु अरिहन्तों के उपदेश से ही हम इन्हें जान सकते हैं इस लिये अरिहन्तों को पहिली प्रकार में गिनते हैं।

इनके पश्चात् साधुवर्ग में जो सब से बड़े साधु हों उन्हें 'आचार्य' कहते हैं। वह पांच आचारों को पूर्णतया पालते हैं। और बाकी साधु उनको देखकर शक्ति प्रमाण आचारों का पालन करते हैं। आचार्य महाराज अपने ऊपर बड़े से बड़ा कष्ट उठाकर भी जैन धर्म की रक्षा करते हैं। उन्हें अपने और दूसरों के धर्म शास्त्रों का अच्छा ज्ञान होता है। उनका स्वभाव बड़ा शान्त और गम्भीर होता है यह तीसरे प्रकार के परमेष्ठी कहे जाते हैं।

चौथे स्थान पर 'उपाध्याय' कहे जाते हैं। वह स्वयं शास्त्रों का अभ्यास करते हुये दूसरे साधुओं को भी अभ्यास कराते हैं। राजा के काल करने पर जैसे युवराज गद्दी पर बैठता है वैसे ही आचार्य महाराज के स्वर्गवास होने पर उपाध्याय उनके स्थान पर विराजमान होते हैं। उपाध्याय एक भी क्षण व्यर्थ नहीं गवाते।

परमेष्ठी के पांचवें प्रकार में साधु मुनिराज कहे जाते हैं। यह सदैव मोक्ष प्राप्ति के लिये उद्यम करते रहते हैं। संसारी जनों की खटपट में वह नहीं पड़ते और मान अपमान की परवाह न करके यह सब को धर्म उपदेश सुनाते हैं। उन के मन में हमेशा यही भावना होती है कि हमसे दूसरों का किसी प्रकार का भला हो जाय तो ठीक है।

अपना कल्याण चाहने वाले स्त्री-पुरुषों को इन पंच परमेष्ठी महा पुरुषों की सदा तन, मन, धन से सेवा भक्ति करनी चाहिये।

३—आशातना।

हम श्री मन्दिर जी में भगवान् के दर्शनार्थ जाते हैं इस अभिप्राय से कि भगवान् के दर्शन करके और उनके गुणों की चिन्ता करके हम शांति प्राप्त हों। परन्तु यदि हम वहां पर ऐसा वैसा काम करने लगें तो हम कभी फल नहीं मिल सकता। उस लाभ के नाश को आशातना कहते हैं। कुल ८४ आशातना कही जाती हैं जो इस प्रकार हैं—

१-श्री जिन मन्दिर में सोना। २-जुआ आदि खेलना। ३-कलह (क्लेश) झगड़ा करना। ४-धनुष आदि कला सीखना। ५-कुरला करना। ६-तांबूल (पान) खाना। ७-पान का थूक गिराना। ८- गाली देना। ९-मलमूत्र करना। १०-हाथ (आदि अङ्ग) धोना। ११-बाल सवारना। १२-नख समारना। १३-रुधिर या लहू गिराना। १४-मिठाई आदिक खाना। १५-फोड़े का खुरण्ड गिराना। १६-औषधि (दवाई) खाकर पित्त गिराना। १७-वमन या उलटी करना। १८-दांत गिराना। १९-हाथ पैर मसलना। २०-घोड़ा आदिक बांधना। २१-दांत का मैल गिराना। २२-आंख का मैल गिराना। २३-नख का मैल गिराना। २४-गाल का मैल गिराना। २५-नाक का मैल गिराना। २६-माथे का मैल गिराना। २७-शरीर का मैल गिराना। २८-कान का मैल

गिराना। २९-भूत आदि कीलने का मन्त्र साधना या राजा आदिक के काम का विचार करना। ३०-विवाहादिक की पंचायत करना। ३१-व्यापार का हिसाब करना। ३२-राज का काम बांट के देना या भाई, मनुष्य का धन आदि का हिस्सा बांट कर देना। ३३-घर का भण्डार (खजाना) मन्दिर में रखना। ३४-पैर पर पैर रख (कुआसन कर) के बैठना। ३५-मन्दिर की दीवार से गोबर को पाथिया या गोबर का ढेर लगाना। ३६-कपड़े सुखाना। ३७-दाल दलना। ३८-पापड़ आदि सुखाना। ३९-बड़े बनाना या शाक आदि सुखाना। ४०-राजा, भाई या दूसरे लेनदार के भय से छोड़कर मूल गंभार में छुप जाना। ४१-पुत्र स्त्र्यादि के मर जाने पर रोना। ४२-स्त्री कथा, भोजन कथा, राज कथा, देश कथा-यह चार विकथा करना। ४३-गन्ने या पौंडे की गंडेरिया बनाना या धनुष आदि शस्त्र बनाना। ४४-गाय बैल आदि मन्दिर में रखना। ४५-शीत (जाड़ा) दूर करने के लिये अग्नि तपाना। ४६-धान्य आदि पकाना। ४७-रुपये परखना। ४८-विधि से नैषेधि (निस्सही) न करना। ४९-छत्री मन्दिर के बाहिर न छोड़ना। ५०-जूता, जुराब मन्दिर के बाहिर न छोड़ना। ५१-शस्त्र (हथियार) मन्दिर के बाहिर न छोड़ना। ५२-चामर मन्दिर के बाहर न छोड़ना। ५३-मन एकाग्र न करना। ५४-तेल आदि की मालिश करना। ५५-शरीर के रोग के

सचित पुष्प आदि का त्याग न करना । ५६-हार, मुद्रा, कुण्डल आदिक को बाहिर छोड़ना । ५७-भगवान को देखकर हाथ । जोड़ना । ५८-एक साड़ी का उत्तरासंग न करना । ५९-मस्तक पर मुकुट रखना । ६० सिर पर मौड़ रखना । ६१-फूलों का सेहरा रखना । ६२-नारियल आदि का छिलका गिराना । ६३-गेंद से खेलना । ६४-पिता आदि को प्रणाम करना । ६५-हंसी मजौल करना । ६६-तिरस्कार के वचन कहना । ६७-रोने के वास्ते ज़िद करना । ६८-संग्राम या लड़ाई करना । ६९-मस्तक के केश (माथे के बाल) सुखाना । ७०-पालठी मारकर (टांग पर टांग चढ़ाकर) मान प्रासन करके बैठना । ७१-काष्ट पादुकादि पैर में रखना । ७२-पैर पसारना । ७३-सुख के वास्ते मुड़मुड़ी दबाना । ७४-अपना शरीर धोकर कीचड़ कूड़ा करना । ७५-पैर की धूली झाड़ना । ७६-मैथुन (काम क्रीड़ा) करना । ७७-जुआ गिराना । ७८-भोजन जीमना । ७९-गुप्त चिन्ह ढक के न बैठना । ८०-वैद्यक (हिकमत) करना । ८१-लेन देन का व्यापार करना । ८२-शय्या बनाकर सोना । ८३-पानी पीने के वास्ते पानी का मटका रखना या मन्दिर के परनाले का पानी लेना । ८४-स्नान करने की जगह बनाना ।

मन्दिर जी में अत्यत पवित्रता होनी चाहिये । जितनी अधिक पवित्रता होगी, सुगंधित धूप फैली हुई होगी उतना ही अधिक मन प्रसन्न होगा, प्रभु भक्ति का काम बड़े उत्साह और

आनन्द से किया जायगा। और इस प्रकार अपने को अपूर्व लाभ मिलेगा। ऊपर लिखी आशातना करने से मंदिर अपवित्र होता है और अपना और दूसरों का भी मन दुःखी रहता है जिससे प्रभु भक्ति करने में अन्तराय (विघ्न) होती है। इस लिये इन ८४ अशातनाओं से सदैव दूर रहना चाहिये।

४—सात शुद्धि।

प्रभु की पूजा करते समय हमें सात शुद्धि रखने की आवश्यकता है। अर्थात् उस समय सात वस्तुए शुद्ध होने से हमें पूजा का पूरा २ फल मिल सकता है।

१-अपना शरीर शुद्ध होना चाहिये।

२-वस्त्र शुद्ध और साफ होने चाहियें।

३-मन साफ होना चाहिये, अथात् प्रभु पूजा के अतिरिक्त और किसी प्रकार के विचार मन में न होने चाहियें।

४-श्री मंदिर जी की तथा आसपास की ज़मीन साफ होनी चाहिये।

५-पूजा की वस्तुए (चन्दन, केसर, पुष्प आदि) शुद्ध होनी चाहियें।

६-पूजा की वस्तुओं के लिये जो द्रव्य खर्चा जाय वह भी शुद्ध अर्थात् न्याय से उपार्जित किया हुआ होना चाहिये

७-प्रभुपूजा की जो विधि हो उसे कुशलाई से ठीक २ करना चाहिये। अर्थात् विधिवत् पूजा करनी चाहिये।

अङ्ग, वसन, मन, भूमिका पूजोपगरण सार।
न्यायद्रव्य, विधिशुद्धता, शुद्धि सात प्रकार॥

५—नवकार वाली (माला)।

प्रभु के गुणों का याद करने के लिये नवकार वाली (माला) का उपयोग किया जाता है। इस में १०८ मनके होते हैं। उनके बीच में दूसरा दूसरे प्रकार का एक और मनका होता है उसे मेर कहते हैं।

माला दो तरह गिनी जाती है। १—नमस्कार मंत्र पढ़ कर एक मनका छोड़ना या २-एक बार पढ़कर एक मनका छोड़ना। पहिली प्रकार से एक माला गिनने से १०८ नमस्कार मंत्र पढ़े जाते हैं और दूसरी प्रकार से १२।

परन्तु माला गिनने की और विधि भी है—नमस्कार मंत्र न गिन कर केवल पंचपरमेष्ठी के गुणों को चिन्तन करना एक गुण चिन्तन करके एक मनका छोड़ना। इस प्रकार एक माला गिनने से पंचपरमेष्ठी के १०८ गुण स्मरण किये जाते हैं उस से और भी लाभ होता है और मन में शांतता और पवित्रता आती है।

पंचपरमेष्ठी के १०८ गुण इस प्रकार होते हैं:—
अरिहंत के १२, सिद्ध के ८, आचार्य के ३६, उपाध्याय के २५ और साधु के २७।

माला जपते समय स्थिर आसन करके और माला को हृदय के सामने करके गिनना चाहिये। जब एक माला पूरी हो जाय तो उसे उलट कर गिनना चाहिये। मेरु का कभी उल्लंघन न करना चाहिये।

६—अष्टापद तीर्थ।

आबु १ अष्टापद २ गिरनार ३। समेत शिखर ४ शत्रुञ्जय सार५॥

जैन शास्त्रों में यह पांच तीर्थ बड़े कहे गये हैं। इन में अष्टापद तीर्थ अयोध्या शहर की उत्तर दिशा में है। विद्यावान मनुष्य यहां आ सकते हैं। यह अष्टापद नामक पर्वत के ऊपर है। पर्वत की चार २ कोस की ८ सीढ़ियां हैं। श्री ऋषभ देव भगवान् के पुत्र भरत चक्रवर्ती ने इस पर्वत पर अपने २ शरीर मितनी और वर्ण के अनुसार २४ भगवान् की प्रतिमाएं स्थापित की थीं। उन प्रतिमाओं में से पूर्व दिशा में पहिले और दूसरे भगवान् की, दक्षिण दिशा में तीसरे से छठे (चार) भगवान् की, पश्चिम दिशा में सातवें से चौदहवें (८) भगवान् की, और उत्तर दिशा में पन्द्रहवें से चौबीसवें (दस) भगवान् की मूर्त्तियां हैं। उन सब के आसन तो ऊंच नीचे

अवश्य है परन्तु नासिकाग्र सब का एक सीध में है। भगवान् श्री ऋषभदेव जी ने इसी पर्वत पर मोक्ष प्राप्ति की थी। इस पर्वत के आस पास बड़ी गहरी खाई खुदी हुई है और उसमें पानी भरा हुआ है। यह पर्वत हरगिरि, कैलास और स्फटि-काद्रि के नाम से भी प्रसिद्ध है। रावण ने नाटक पूजा करके इसी तीर्थ पर तीर्थंकर होने की या बना पैदा की है। भगवान् श्री महावीर स्वामी के प्रथम गण धरो इन्द्र भूति गौतम स्वामी ने इस तीर्थ की यात्रा करके नीचे उतर कर १५०० तापसों को प्रतिबोध दिया था। जग चिन्तामणि चैत्य वन्दन में "चत्तारि अट्ठदस दोय वंदिया" जो पाठ आता है यह इसी तीर्थ के 'सिद्ध निपहया' नामा भरत चक्रवर्ती के बनवाये हुये मन्दिर में स्थापन किये हुये २४ बिम्ब के हिसाब से है और यह हिसाब दक्षिण दिशा के दरवाजे से किया जाता है।

७—६ आवश्यक।

भोजन करना, व्यापार करना इत्यादि हमारे रोज़ के आवश्यक कर्म हैं। इनके बिना संसार का काम काज नहीं चलता इसी प्रकार हमारे धार्मिक कर्त्तव्य भी हैं जिनका नित्य प्रति पालन करना आवश्यक है। वह छः हैं। इसी लिये उन्हें छः आवश्यक कहते हैं। उनका वर्णन देव सिराई (दैवसिक रात्रिक) प्रति क्रमण की विधियों में आता है।

पहिला आवश्यक 'सामायिक' है। देवसी प्रतिक्रमण करने के बाद पहिला 'करेमी भंते' का पाठ बोला जाता है वह इस आवश्यक की क्रिया है। इसमें समता की वृद्धि होती है।

दूसरा आवश्यक 'चउविसन्थो'(चतुर्विंशतिस्तव) है इस का अर्थ है चौबीस जिन की स्तुति। इसे लोगस्स भी कहते हैं। आचार की आठ गाथाओं का कायोत्सर्ग करने के पश्चात् जो लोगस्स पढ़ा जाता है वह दूसरा आवश्यक है।

तत्पश्चात् जो गुरु को वन्दना की जाती है वह 'वंदना' नाम का तीसरा आवश्यक है।

'सात लाख', 'अठार पाप स्थानक', 'वंदितु' इत्यादि यह 'प्रतिक्रमण' नामक चौथा आवश्यक है।

उसके अनन्तर जो दो लोगस्स आदि का कायोत्सर्ग किया जाता है वह 'कायोत्सर्ग' नामक पांचवा आवश्यक है।

छठा आवश्यक 'चउविहार' आदिक 'पच्चक्खान' (प्रत्याख्यान) है। इस से तप का लाभ मिलते हुये इन्द्रियों पर विजय प्राप्त होती है और बहुत से पाप कर्म क्षय होते हैं। ऐसे सुन्दर आवश्यक हम जरूर करने चाहियें।

८-प्रतिक्रमण-भाग १

पाप से पीछे हटने का नाम प्रतिक्रमण है। इस के पांच भेद हैं—देवसी, राई, पक्खी, चौमासी और सम्वच्छरी प्रतिक्रमण।

१—देवसी (दैवसिक) प्रति दिन सायकाल में जो प्रति क्रमण किया जाता है उसे देवसी प्रतिक्रमण कहते हैं। इस से दिन भरके किय हुये पापों की आलोचना की जातीहै।अथात् उन का चिन्तन करके उनसे बचने का उपाय किया जाता है।

२—राई (रात्रिक) यह प्रति दिन प्रात काल किया जाता है इस से रात भर के पापो की आलोचना की जाती है।

३—पक्खी (पाक्षिक) प्रति क्रमण पक्ष (१५ दिन) के पश्चात् हर चतुर्दशी का साय काल में किया जाता है इससे १५ दिन के पापों की आलोचना की जाती है।

४—चौमासी (चातुर्मासिक) प्रति क्रमण ४ मास के पश्चात् कार्तिकशुक्ला १४, फाल्गुन शुक्ला १४ और आषाढ़ शुक्ला १४ को सायकाल में किया जाता है। इस से चार मास के पापों की आलोचना की जाती है।

५—संवच्छरी (सांवत्सरिक) प्रति क्रमण एक वर्ष के पश्चात भाद्रपद शुक्ला ४ की साझ को किया जाता है। इस से १२ महीनों के पापों की आलोचना की जाती है।

देवसी प्रति क्रमण ऐसे समय शुरु करना चाहिये कि— यदितु 'पढ़ते समय सूय अस्त हो रहा हो, और राई प्रतिक्रमण सूर्योदय से पहिले २ समाप्त हो जाना चाहिये। राई प्रतिक्रमण धीमे २ करना चाहिये। यदि हम ऊचे २ बोलेंगे तो सम्भव है कि घर के आस पास के रहने वाले लोग जाग पड़ें और अपने २ ऐसे काम को आरम्भ करदें जिन से पाप लगता हो और इस

प्रकार सारे दोष के हम भागी बनें । यदि किसी समय किसी कारणवश प्रतिक्रमण ठीक समय पर न हो सके तो देवसी प्रतिक्रमण रात के १२ बजे तक और राई प्रति क्रमण दिन के १२ बजे तक किया जा सकता है । तो भी यह याद रखना चाहिये कि जो काम समय पर किया जाये वह उत्तम फलदायक होताहै इस लिये यथा शक्ति हर एक काम समय पर करना चाहिये ।

६--प्रतिक्रमण-भाग दूसरा ।

सांसारिक कारोबार में हम सदा यह देखते हैं कि जो काम हम दिल लगाकर करते हैं वह हो जाता है और जिस काम म हमारा मन न हो वह नहीं हो सकता । जो विद्यार्थी मन लगा कर अपना पाठ याद करता है वह परीक्षा म पास हो जाता है और जिस का ध्यान सदा खेल कूद में रहता है वह अवश्य ही फेल होता है । ठीक इसी प्रकार धार्मिक कामों में भी समझना चाहिये । यदि प्रतिक्रमण करते समय हम हर एक क्रिया विधि सहित शुद्ध मन से करते रहें तो हम उस का पूरा पूरा फल मिलेगा परन्तु यदि उस समय हमारे मन म खराब विचार हों तो लाभ तो क्या उलटा पाप का बन्धन होगा । इस लिये प्रति क्रमण करते समय हमारे परिणाम अच्छे होने चाहियें । और तभी हम पाप को क्षय कर सकेंगे ।

प्रतिक्रमण करते समय अपने पहिले किये हुये पापों के लिये पश्चात्ताप करना ही उन के नाश के लिये काफी नहीं ।

प्रत्युत साथ २ यह भावना भी रखनी चाहिये कि फिर कभी हम ऐसे पाप न करें । और इस के लिये सदा तत्पर रहना चाहिये । यदि हम एक तरफ तो प्रति क्रमण करते जायें और दूसरी तरफ पाप का नवीन बन्धन भी करते जायें तो हम कभी भी पापों से नहीं छूट सकते ।

१०—काउस्सग्ग का परिमाण ।

इसमें प्रति क्रमण में कायोत्सर्ग (काउस्सग्ग) करना पड़ता है । सामान्यतया लोगस्स के २८ पद हैं । एक श्वासोच्छ्वास में केवल एक पद पढ़ा जाता है इस प्रकार २५ श्वासोच्छ्वास में २५ पद गिने जाते हैं । अतः हर एक कायोत्सर्ग २५ पद (चंदेसु निम्मलयरा) तक करना चाहिये ।

रात्रि और सवेरे के चार लोगस्स के कायोत्सर्ग में कुछ अन्तर है । रात्रि के कायोत्सर्ग का परिमाण ११२ श्वासोच्छ्वास है इस लिये पूरे २८ पदों के ४ लोगस्स पढ़ने चाहियें । और प्रातःकाल खराब स्वप्न आया हो तो १०८ श्वासोच्छ्वास का कायोत्सर्ग करना चाहिये । उसके लिये सागर वरगम्भीरा (२७ पद) तक चार लोगस्स या चंदेसु निम्मलयरा (२५ पद) के चार लोगस्स और एक नमस्कार मन्त्र पढ़ना चाहिये, क्योंकि एक नवकार ८ श्वासोच्छ्वास का कहा गया है ।

११—कुछ पच्चक्खान।

हम प्रात काल और सांझ को प्रतिक्रमण करते समय कुछ पच्चक्खान (प्रत्याख्यान) करते हैं। उनका कुछ हाल नीचे दिया जाता है—

बहुत से मनुष्य रात को भी कुछ खाते नहीं और प्रात काल भी देर से दातन कुल्ला करते हैं। परन्तु यह नियम नहीं करते कि अमुक समय तक कुछ नहीं खाना*। इसप्रकार नियम (बंधन) म आना पच्चक्खान कहलाता है।

प्रात काल सूर्य उदय होने के ४८ मिनट पीछे, बैठकर, मुट्ठी बंद करके, तीन बार नवकार पढ़ कर पच्चक्खान पारना-इस नवकारसी का पच्चक्खान कहते हैं। नारकी जीव अत्यंत दु ख सहन करके सौ वर्ष म जितने पापकर्म क्षय करता है उतने पाप रोज़ नवकारसी करने से हमेश क्षय होते रहते हैं इससे परिश्रम थोड़ा, परन्तु फल अधिक है।

सूर्य के उदय के पीछे दिन का चौथा भाग बीतने पर उपरोक्त विधि अनुसार यदि व्रत पारा जाये तो उसे पोरिसी कहते हैं। जितने पाप नारको जीव १००० वर्ष में खपाता है उतने एक पोरिसी करने से क्षय होते हैं।

---

* यह विधि गृहस्थियों के लिये है।

सूर्योदय के पीछे पोरिसी से ज्योढा समय बीतने पर उप रोक्त विधि अनुसार यदि व्रत पारा जाये तो उसे साढ़पोरिसी कहते हैं। जितने पाप नारकी जीव १० हजार वर्ष में खपाता है उतने एक साढ़पोरिसी करने से क्षय होते हैं।

सांझ को चऊविहार करने से चारों[1] प्रकार के आहारों का त्याग हो जाता है और हर रोज चऊविहार करने से महीने में १५ उपवास करने का फल मिलता है।

तिविहार करने से तीन प्रकार के आहार का त्याग हो जाता है। केवल पानी ही पिया जा सकता है।

दुविहार के पच्चक्खान में पानी और सोपारी, इलायची आदि मुंह को सुगन्धित करने वाली वस्तुओं का उपयोग किया जा सकता है।

ऐसे २ सहल पच्चक्खान तो यथा शक्ति हरेक को सदा ही करने चाहिये।

---

१ अशन (अनाज, मिठाई, तथा दूध, दही, घी तेल, गुड आदि), पान (पीने की वस्तुए), खादिम (सूखे मेवे फल आदि) और स्वादिम (मुंह को स्वाद करने वाली वस्तुए)

१२–२२ अभक्ष्य।

जिन वस्तुओं के खाने से त्रस जीवों का और बहुत से स्थावर जीवों का घात होता हो, जो प्रमाद के बढ़ाने वाले हों जो अनिष्ट हों तथा भले पुरुषों के खाने योग्य नहीं उन्हें अभक्ष्य कहते हैं और वह बाइस हैं। उनके नाम नीचे दिये जाते हैं। श्रावकों के लिये उचित है कि इनका त्याग करने का उद्यम करें।

१—बड़ (वृक्ष) के फल। २—पीपल के फल। ३—पिलखन के फल। ४—कठूमर के फल। ५—गूलर के फल। इन पांच प्रकार के फलों में बहुत जीव होते हैं।

६—मधु (शहद)। ७—मक्खन। ८—मांस। ९—मदिरा (शराब)। इन चारों में उसी रंग के असंख्य जीव होते हैं। और यह वस्तुएं अधिक विकार पैदा करने वाली हैं।

१०–बर्फ (प्राकृतिक–जो पहाड़ों पर गिरती है)।

११–अफीम आदि विषैले पदार्थ जिनके खाने से मृत्यु हो जाती है।

१२–ओले (गड़े)।

१३–सब प्रकार की मिट्टी।

१४–रात्रि भोजन।

१५–बहुत बीज वाले फल (अजीर आदि)।

१६—अनन्त मूल (मूली, गाजर, आलू, अरवी, शकरकन्दी, प्याज लहसुन, शलगम, हरा अदरक, हरी हल्दी, हरा कचूर, इत्यादि) इनमें से हर एक के छोटे से छोटे भाग में भी अनन्त जीव होते हैं।

१७—द्विदल—मूंग, उड़द, चना आदि ऐसे अनाज, दलने में जिनकी दो दल हो जाते हैं, कच्चे दही, दूध, छाछ, के साथ मिलाने से इनमें जीवोत्पत्ति हो जाती है इस लिये द्विदल को अभक्ष्य माना जाता है। परन्तु यदि इन्हें खूब गर्म कर मिलाया जाय तो अभक्ष्य नहीं होते।

१८—अज्ञात फल—जिसको जानते न हों। संभव है वह जहरीला हो या उसमें कोई और दोष हो। इस लिये वह भी नहीं खाने चाहियें।

१९—तुच्छ फल (बहुत ही छोटे २ फल जिनमें खाद्य पदार्थ तो बहुत थोड़ा हो परन्तु फेंकने के लिये बहुत हो) जिसके बहुत खाने पर भी तृप्ति न हो।

२०—चलितरस (बासी रोटी, सीरा, पूरी दाल चावल खीर दूधपाक आदि जल वाले ढीले पदार्थ तथा ऐसी मिठाई जो दर की हो और इसी कारण जिसका स्वाद भी बदल गया हो) क्योंकि ऐसे पदार्थों में कई किस्म के जीव पैदा हो जाते हैं और उनके खाने से कई प्रकार के रोग हो जाने का भी डर है।

२१—बैंगन।

२२-अचार-२४ पहर से अधिक समय का अचार भी अभक्ष्य हो जाता है।

१३-श्रावक के बारह व्रत।

श्रावक कुल में जन्म लेने से ही कोई सच्चा श्रावक नहीं कहा जा सकता। सच्चा श्रावक वही है जो श्रावक के १२ व्रतों को पालता हो। आज हम तुम्हें उन्हीं १२ व्रतों का कुल हाल बतायेंगे। १२ व्रत यह हैं।

१ अहिंसा-अमुक मर्यादा पूर्वक किसी जीव को न मारना, अर्थात् हिलते जुलते त्रस जीवों के मारने का त्याग करना गृहस्थ का स्थूल प्राणातिपात विरमण नामक प्रथम व्रत कहा जाता है।

२-सत्य कन्या के, पशुओं के, ज़मीन के, और किसी की धरोहर (अमानत) के संबन्ध में (किसी की अमानत दबा लेने के विचार से) झूठ न बोलना और झूठी गवाही न देना। स्थूलमृषावाद विरमण नामक दूसरा व्रत है।

३ अचौर्य किसी की जेब काटने का, सेंध लगाने और चोरी करने का, चोरी के माल को लेने का त्याग करना अर्थात् ऐसे कार्यों का त्याग करना जिनके करने पर राजा दण्ड देता हो और लोग निन्दा करते हों। इस व्रत का नाम स्थूल अदत्ता दानव्रत है।

४-स्वदार संतोष अपनी विवाहिता स्त्री के अतिरिक्त संसार भर की बाकी सब स्त्रियों को मा, बहन, और लड़की के समान समझना।

५ परिग्रह परिमाण धन, धान्य, दास, दासी आदि पदार्थों के रखने का परिमाण करना। अर्थात् अमुक सीमा तक वह वस्तुएं रखनी और शेष का त्याग।

६ दिग् दिशा परिमाण, अर्थात् जीवन भर के लिये दिशाओं (पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण) और विदिशाओं अग्नि, नैऋत्य, वायव्य, ईशान, और ऊर्ध्व व अधो दिशा में अमुक सीमा से परे सांसारिक काम के लिये नहीं जाना, ऐसा नियम करना।

७ भोगोपभोग परिमाण अभक्ष्य (न खाने योग्य) वस्तुओं का त्याग और खाने योग्य वस्तुओं का परिमाण करना।

८-अनर्थ दण्ड विरमण निरर्थक क्रिया करना, निन्दा करना विकथा करना, पाप का उपदेश देना, धर्म-कार्य में आलस्य आदि क्रियाओं का त्याग करना। सारांश जिस क्रिया से सांसारिक या धार्मिक कोई भी प्रयोजन सिद्ध न होता हो ऐसी निष्फल क्रियाओं का त्याग करना।

९ सामायिक सांसारिक पदार्थों के विचारों को छोड़ कर शांत चित्त बैठना और दो घड़ी तक आत्मध्यान करना।

१० देशावकाशिक दिग्व्रत के परिमाण को संक्षेप करना अर्थात् आज मैं अमुक स्थान से आगे न जाऊँगा ॥

११ पौषधोपवास आठ पहर या चार पहर पर्यन्त सांसारिक व्यापारादि का त्याग कर धर्म साधना।

१२ अतिथि संविभाग सुपात्र को, अतिथि को, मुनि को भोजन देकर फिर आप भोजन करना, अथवा साधर्मी का पोषण करना, दीन दुःखी का उद्धार करना इत्यादि।

इनमें से पहिले ५ अणुव्रत, दूसरे ३ गुणव्रत और अन्तिम ४ शिक्षा व्रत कहलाते हैं।

१४—आरे।

समय विशेष को जैन शास्त्रों में आरा का नाम दिया गया है। एक कालचक्र होता है। मुख्यतया इस कालचक्र के दो भेद किये गये हैं। एक है अवसर्पिणी यानी उतरता और दूसरा है उत्सर्पिणी यानी चढ़ता। अवसर्पिणी के छः भेद हैं। जैसे (१) एकान्त सुषमा, (२) सुषमा (३) सुषम दुःषमा (४) दुःषम सुषमा (५) दुःषमा और (६) एकान्त दुःषमा। इसी तरह उत्सर्पिणी के उल्टे गिनने से छः भेद होते हैं। अर्थात् (१) एकान्त दुःषमा (२) दुःषमा (३) दुःषम सुषमा (४) सुषम दुःषमा (५) सुषमा, और (६) एकान्त सुषमा इन्हीं बारह भेदों का समय जब पूर्ण होता है तब कहा जाता है कि अब एक कालचक्र समाप्त हो गया है।

नरक, स्वर्ग, मनुष्य लोक और मोक्ष ये चार स्थान जीवों के रहने के हैं। उनमें से अन्तिम स्थान में-अर्थात् मोक्ष में तो केवल कर्म मुक्त जीव ही रहते हैं। बाकी तीन में कर्म लिप्त जीव रहते हैं। नरक के जीवों के चौदह (१४) भेद किये गये हैं। स्वर्ग के जीवों के एकसौ (१९८) भेद किये गये हैं।-और मनुष्य लोक के जीवों के ३५१ भेद किये गये हैं। मनुष्य लोक के कुछ शब्दों में 'आर्य' का उपयोग होता है। इसलिये हम यहां मनुष्यलोक के विषय में थोड़ासा लिख देना उचित समझते हैं।

मनुष्य लोक में मुख्यतया ३ खंडों में मनुष्य बसते हैं। (१) जम्बू द्वीप (२) धातकी खंड और (३) पुष्करार्द्ध। जम्बूद्वीप की अपेक्षा धातकी खंड दुगना है और पुष्करार्द्ध धातकी खंड की बराबर ही है, यद्यपि पुष्कर द्वीप धातकी खंड से दुगना है तथापि उसके आधे हिस्से ही में मनुष्य बसते हैं इस लिये वह धातकी खंड के बराबर ही माना जाता है। जम्बूद्वीप में, भरत ऐरवत, महाविदेह, हिमवन्त, हिरण्यवन्त, हरिवर्ष, रम्यक वर्ष, देवकुरु और उत्तर कुरु ऐसे नौ क्षेत्र हैं। धातकी खंड में इन्हीं नामों के क्रम से दुगने क्षेत्र हैं और धातकी खन्ड के बराबर ही पुष्करार्द्ध में हैं। इनमें के प्रारम्भिक यानी भरत, ऐरवत और महाविदेह कर्म भूमि[१] के क्षेत्र हैं और बाकी के

१ जहां असिर (शस्त्र का) मसि (लिखने पढ़ने का) और कृषि (खेती का) व्यवहार होता है उसे कर्मभूमि कहते हैं।

अकर्म भूमि के इन्हीं कर्म भूमि के पांच भरत, पांच एरवत, और पांच विदहमें इन आरों का प्रभाव उपयोग होता है, और क्षेत्रों में नहीं।[२]

महाविदेह में केवल चौथा 'आरा' ही सदा रहता है, भरत और एरवत म उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी का व्यवहार होता है। प्रत्येक आरे में निम्न प्रकार से जीवों के दुःख सुख की घटा बढ़ी होती रहती है।

१ एकान्त सुषमा, इस आरे में मनुष्यों की आयु तीन पल्योपम तक की होती है। शरीर तीन कोस तक होता है। भोजन ये चार दिन में एक बार करते हैं। संस्थान[१] उन का समचतुरस्र

---

२ जहां इनका व्यवहार होता है और कल्प वृक्षों से सब कुछ मिलता है उन्हें अकर्म भूमि कहते हैं।

१ सस्थान छः होते हैं। शरीर के आकार विशेष को संस्थान कहते हैं। (१) सामुद्रिक शास्त्रोक्त शुभ लक्षण युक्त शरीर को 'समचतुरस्र' संस्थान कहते हैं। (२) नाभि के ऊपर का भाग शुभ लक्षण युक्त हो और नीचे का हीन हो उसे 'न्यग्रोध' संस्थान कहते हैं। (३) नाभि के नीचे का भाग यथोचित हो और ऊपर का हीन हो उसे 'सादी' संस्थान कहते हैं। (४) जहां हाथ, पैर, मुख, गलादि यथा लक्षण हों और छाती, पेट पीठ आदि विकृत हों उसे 'वामन' संस्थान कहते हैं। (५) जहा हाथ और पैर हीन हों बाकी अवयव उत्तम हों उसे 'कुब्जक' संस्थान कहते हैं। (६) शरीर के समस्त अवयव लक्षण हीन हों उसे 'हुण्डक' संस्थान कहते हैं।

होजाते हैं, संहनन उनका वज्र ऋषभ नाराच होजाता है वे क्रोध रहित, निरभिमानी, निर्लोभी और अल्पत्यागी होजाते हैं उस समय उनको असि मसि, और कृषि का व्यापार नहीं करना पड़ता है अकर्म भूमि के मनुष्यों की भांति इन्हें भी उस समय दस कल्पवृक्ष सारे पदार्थ देते हैं जैसे- (१) मद्यांग नामक कल्पवृक्ष मद्य देते हैं।

---

७ संहनन भी छः प्रकार होते हैं। शरीर के संगठन विशेष को संहनन कहते हैं। (१) जो हाड़ दोनों तरफ से मर्कट बंध द्वारा बंधे हों, ऋषभ नाम का तीसरा हाड़ उन्हें पट्टी की तरह लपेटे हो और उन दोनों हड्डियों में एक हड्डी ठुकी हुई हो, ये वज्र के समान दृढ़ हों, ऐसे संहनन को वज्र ऋषभ नाराच कहते हैं। (२) उक्त हड्डियां हों परन्तु कीली की तरह ठुकी हुई हड्डी न हो उसे 'ऋषभनाराच' संहनन कहते हैं। (३) दोनों ओर हाड़ मर्कट बंध तो हों, परन्तु कीली और पट्टी का हाड़ न हो उसे 'नाराच' संहनन कहते हैं। (४) जहां एक तरफ मर्कट बंध और दूसरी तरफ कीली होती है उसे 'अर्द्धनाराच' संहनन कहते हैं। (५) जहां केवल कीलों से हाड सधे हुए हों मर्कटबंध पट्टी न हों उसे कीलक संहनन कहते हैं। (६) जहां अस्थियां केवल एक दूसरे से अड़ी हुई ही हों, कीली, नाराच, और ऋषभ न हों, जो जरासा धक्का लगते ही भिन्न हो जाय उसे 'सेवट्ट' संहनन कहते हैं।

(२)भृतांग पात्र-बर्तन देते हैं। (३)तूर्यांग तीन प्रकार के वाजित्र देते हैं। (४-५) दीपशिखा, और ज्योतिष्क प्रकाश देते हैं। (६) चित्रांग विचित्र पुष्पों की मालाएं देते हैं। (७) चित्ररस नाना भांति के भोजन देते हैं। (८) मण्यंग इच्छित भूषण देते हैं। (९) गेहाकार गंधर्व नगर की तरह उत्तम घर देते हैं। और (१०) अनग्न नामक कल्पवृक्ष उत्तमोत्तम वस्त्र देते हैं। उस समय की भूमि शर्करा से भी अधिक मीठी होती है। इनमें जीव सदा सुखी ही रहते हैं। यह आरा चार कोटा कोटि सागरोपम[२] का होता है। इसमें आयुष्य, सहनन, आदि और कल्पवृक्षों का प्रभाव क्रमशः कम होता जाता है।

१-आंख फुरकती है इतने समय में असंख्यात समय हो जाते हैं। अथवा वह सूक्ष्मातिसूक्ष्म क्षणरूप काल जिसके भूत भविष्य का अनुमान न हो सके, जिसका फिर भाग न हो सके उसको 'समय' कहते हैं ऐसे असंख्यात समयों की एक 'आवली' होती है। ऐसी दो सौ और छप्पन आवलियों का एक 'क्षुल्लक भव' होता है, इसकी अपेक्षा किसी छोटे भव की कल्पना नहीं हो सकती है। ऐसे सत्तर क्षुल्लक भव, से कुछ अधिक में एक श्वासोच्छ्वास रूप प्राण की उत्पत्ति होती है। ऐसे सात प्राणोत्पत्ति काल को एक 'स्तोक' कहते हैं। ऐसे सात स्तोक को एक 'लव' कहते हैं। ऐसे सतहत्तर लव का एक मुहूर्त

२—सुखमा—यह आरा तीन कोटाकोटि सागरोपमका होता है। इसमें मनुष्य दो पल्योपम की आयु वाले, दो कोस ऊंचे शरीर वाले और तीन दिन में एक बार भोजन करने वाले होते हैं। इसमें कल्पवृक्षों का प्रभाव भी कुछ कम हो जाता है, पृथ्वी के स्वाद में भी कुछ कमी हो जाती है और जलका माधुर्य भी घट जाता है, इस में सुख की प्रबलता रहती है, दुःख रहता है मगर थोड़ा। [illegible]

(दो घड़ी) होता है। इस (एक मुहूर्त में १६७,७७,२१६ आवलिया होता है।) तीस मुहूर्त का एक 'दिन रात' होता है, पन्द्रह दिन रात का एक 'पक्ष' होता है। दो पक्षों का एक महीना होता है। बारह महीनों का एक वर्ष होता है। (दो महीने का एक 'ऋतु' होती है। तीन ऋतुओं का एक 'अयन' होता है। दो अयन का एक वर्ष होता है।) असंख्यात वर्षों का 'एक पल्योपम होता है। दश कोटाकोटी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। बीस कोटाकोटी सागरोपमका एक कालचक्र होता है ऐसे 'अनन्त' कालचक्र का एक पुद्गल परावर्तन होता है।

(नोट—यहां 'अनन्त' शब्द और 'असंख्यात' शब्द अमुक संख्या के द्योतक हैं। शास्त्रकारों ने इन के भी अनेक भेद किये हैं। इस छोटी सी भूमिका रूप पुस्तक में उन सब का वर्णन नहीं हो सकता। इन शब्दों ('असंख्यात या अनन्त) से यह अर्थ न निकालना चाहिये कि जिस की संख्या ही न हो सके, जिस का कभी अन्त ही न आये।)

३-सुषमा दु:षमा-यह आरा दो कोटाकोटि सागरोपमका होता है इसमें मनुष्य एक पल्योपमकी आयुवाले, एक कोस ऊंचे शरीर वाले, और दो दिन में एक बार भोजन करने वाले होते हैं। इस आरेमें भी ऊपर की तरह प्रत्येक पदार्थ में न्यूनता आती जाती है। इसमें सुख और दु:ख दोनों का समान रूप से दौर दौरा रहता है। फिर भी प्रमाण में सुख ज्यादा होता है।

४-दु:षमा सुषमा-यह आरा बयालीस हज़ार कम एक कोटाकोटि सागरोपमका होता है। इसमें न कल्पवृक्ष कुछ देते हैं, न पृथ्वी स्वादिष्ट होती है और न जल में ही माधुर्य रहता है। मनुष्य एक करोड़ पूर्व आयुष्य वाले और पांच सौ धनुष ऊँचे शरीर वाले होते हैं। इसी आरे से असि मसि और कृषि का कार्य प्रारंभ होता है। इसमें दु:ख और सुख की समानता रहने पर भी दु:ख प्रमाण में ज्यादा होता है।

५-दु:षमा-यह आरा इकीस हज़ार वर्ष का होता है। इस में मनुष्य सात हाथ ऊंचे शरीर वाले और सौ वर्ष की आयु वाले होते हैं। इसमें केवल दु:ख का ही दौरदौरा रहता है। सुख होता है मगर बहुत ही क्षीण।

६-एकान्त दु:षमा-यह भी इकीस हजार वर्ष का होता है इसमें मनुष्य एक हाथ ऊंचे शरीर वाले और सोलह वर्ष की आयु वाले होते हैं। इसमे सर्वथा दु:ख ही होता है।

इस प्रकार छठे आरे के इकीस हजार वर्ष पूरे हो जाते हैं, तब पुन उत्सर्पिणीकाल प्रारम होता है उसमें भी उक्त प्रकार ही से ६ आरे होते हैं। अन्तर केवल इतना होता है कि अवसर्पिणी के आरे एकान्त सुषमा से प्रारभ होते हैं और उत्सर्पिणी के एकान्त दु षमा से। स्थिति भी अवसर्पिणी के समान ही उत्सर्पिणी के आरों की भी होती है। पाठकों को यह ध्यान में रखना चाहिये कि ऊपर आयु, और शरीर की ऊंचाई आदि का जो प्रमाण बताया है वह आरे के प्रारम्भ में होता है। जैसे जैसे काल बीतता जाता है वैसे ही वैसे उन में न्यूनता होती जाती है और वह आरा पूर्ण होता है तब तक उस न्यूनता का प्रमाण इतना हो जाता है, जितना अगला आरा प्रारभ होता है उसमें मनुष्य की आयु और शरीर की ऊंचाई आदि होते हैं।

ऊपर जिन आरों का वर्णन किया गया है उन में से, तीसरे और चौथे आरे में तीर्थंकर होते हैं।

४-सूत्र-विभाग।

पुक्खर-वर-दीवड्ढे सूत्र।

* पुक्खरवरदीवड्ढे, धायइसंडे अ जंबुदीवे अ।
भरहेरवयविदेहे धम्माइगरे नमंसामि ॥१॥

भावार्थ—जम्बूद्वीप, घातकी-खण्ड और अर्ध पुष्कर-द्वीप के भरत, ऐरवत, महाविदेह क्षेत्र में धर्म की प्रवृति करने वाले तीर्थङ्करों को मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥

(तीन गाथाओं में श्रुत की स्तुति।

*तम तिमिर-पडल-विद्धं सणस्स सुर-गणनरिंदमहियस्स।
सीमाधरस्स वंदे, पप्फोडिअ मोह-जालस्स ॥२॥

† जाई-जरा-मरण-सोग-पणासणस्स।
कल्लाण-पुक्खल विसाल सुहावहस्स॥
को देवदाणवनरिंदगणच्चियस्स।
धम्मस्स सारमुवलब्भ करे पमायं ॥३॥

---

* पुष्करवरद्वीपार्धे धातकीषण्डे च जम्बूद्वीपे च।
भरतैरवतविदेहे धर्मादिकरान्नमस्यामि ॥ १ ॥

* तमस्तिमिरपटलविध्वंसनस्य सुरगणनरेन्द्र महितस्य।
सीमाधरस्य वन्दे प्रस्फोटित मोहजालस्य ॥ २ ॥

† जातिजरामरण शोकप्रणाशनस्य।
कल्याण पुष्कल विशाल सुखावहस्य।
को देवदानव नरेन्द्रगणार्चितस्य।
धर्मस्य सारमुपलभ्य कुर्यात् प्रमादम् ॥३॥

† सिद्धे भो ! पयओ णमो जिणमए नंदी सया संजमे।
देवंनागसुवन्नकिन्नरगणस्सब्भूअभावच्चिए ॥
लोगो जत्थ पइट्ठिओ जगमिणं तेलुक्कमच्चासुर ।
धम्मो वड्ढउ सासओ विजयओ धम्मुत्तर वड्ढउ ॥४॥

भावार्थ—मैं श्रुत धर्म को वंदन करता हूं, क्योंकि यह अज्ञानरूप अंधकार को नष्ट करता है, इस की पूजा नृपगण तथा देवगण तक ने की है, यह सबको मर्यादा में रखता है और इसने अपने आश्रितों के मोह जाल को तोड दियाहै ॥२॥

जो जन्म जरा मरण और शोक का नाश करने वाला है जिसके आलम्बन से मोक्ष का अपरिमित सुख प्राप्त किया जा सकता है, और देवों, दानवों तथा नरपतियों ने जिसकी पूजा की है ऐसे श्रुतधर्म को पाकर कौन बुद्धिमान् गाफिल रहेगा ? कोइ भी नहीं ॥३॥

जिसका बहुमान किन्नरों, नागकुमारों, सुवर्णकुमारों और देवों तक ने यथार्थ भक्ति पूर्वक किया है, ऐसे सयम की वृद्धि

---

† सिद्धाय भो ! प्रयतो नमो जिनमताय नन्दि सदा संयमे ।
देवनागसुवर्णकिन्नरगणसद्भूतभावार्चिते ॥
लोको यत्र प्रतिष्ठितो जगदिदं त्रैलोक्यमर्त्यासुर ।
धर्मो वर्धतां शाश्वतो विजयतो धर्मोत्तरं वर्धतां ॥ ४ ॥

जिन कथित सिद्धान्त से ही होती है। सब प्रकार का ज्ञान भी जिनोक्त सिद्धान्त में ही निःसन्देह रीति से वर्तमान है। जगत के मनुष्य असुर आदि सब प्राणिगण जिनोक्त सिद्धान्त में ही युक्ति प्रमाण पूर्वक वर्णित है। हे भव्यो! ऐसे नय-प्रमाण सिद्ध जैन सिद्धान्त को मैं आदर सहित नमस्कार करता हूँ यह शाश्वत सिद्धान्त उन्नत होकर एकान्तवाद पर विजय प्राप्त करे, और इससे चारित्र धर्म की भी वृद्धि हो।

सुअस्स भगवओ करेमि काउस्सग्गं वंदण वत्तियाए इत्यादि० ॥

अर्थ—मैं श्रुत धर्म के वन्दन आदि निमित्त, कायोत्सर्ग करता हूं।

२३-सिद्धाणं बुद्धाणं सूत्र।

[सिद्ध की स्तुति।]

* सिद्धाणं बुद्धाणं, पारगयाणं परंपरगयाणं।
लोअग्गमुवगयाणं नमो सया सव्वसिद्धाणं ॥१॥

१—इस सूत्र की पहली तीन ही स्तुतियों की व्याख्या 'श्रीहरिभद्रसूरि' ने की है, पिछली दो स्तुतियों की नहीं। इस का कारण उन्होंने यह बतलाया है कि "पहली तीन स्तुतियां नियम पूर्वक पढ़ी जाती हैं पर पिछली स्तुतियां नियम पूर्वक नहीं पढ़ी जातीं। इस लिये इन का व्याख्यान नहीं किया जाता" (आवश्यक टीका पृ० ७९६, ललितविस्तरा पृ० ११२)।

* सिद्धेभ्यो बुद्धेभ्यः पारगतेभ्यः परम्परागतेभ्यः।
लोकाग्रमुपगतेभ्यो, नमः सदा सर्वसिद्धेभ्यः ॥१॥

भावार्थ—जो सिद्ध है, बुद्ध हैं, पारगत हैं, क्रमिक आत्म विकास द्वारा मुक्ति पद पर्यन्त पहुंच हुए हैं और लोक के ऊपर के भाग में स्थित हैं उन सब मुक्त जीवों को सदा मेरा नमस्कार हो ॥१॥

[महावीर की स्तुति]

* जो देवाणवि देवो, जं देवा पञ्जली नमंसंति ।
त देवदेव-महिअं, सिरसा वंदे महावीरं ॥२॥
* इक्कोवि नमुक्कारो जिणवरवसहस्स वद्धमाणस्स ।
संसारसागराओ, तारेइ नरं व नारिं वा ॥३॥

भावार्थ—जो देवों का देव है, देवगण भी जिसको हाथ जोड़ कर आदर पूर्वक नमन करते हैं और जिसकी पूजा इन्द्र तक करते हैं उस देवाधिदेव महावीर को सिर झुका कर मैं नमस्कार करता हूं।

जो कोई व्यक्ति चाहे वह पुरुष हो या स्त्री भगवान् महावीर को एक बार भी भाव पूर्वक नमस्कार करता है वह संसार रूप अपार समुद्र को तर कर परम पद को पाता है ॥२॥ ॥३॥

---

* यो देवानामपि देवो य देवा प्राञ्जलयो नमस्यन्ति ।
तं देवदेव महितं शिरसा वन्दे महावीरम् ॥ २ ॥
* एकोऽपि नमस्कारो जिनवरवृषभस्य वर्द्धमानस्य ।
संसारसागरात्तारयति नरं वा नारीं वा ॥ ३ ॥

[अरिष्टनेमि की स्तुति]

† उज्जित सेलसिहरे, दिक्खा नाणं निसीहिआ जस्स ।
तं धम्मचक्कवट्टिं, अरिट्ठनेमिं नमसामि ॥ ४ ॥

भावार्थ—जिस के दीक्षा, केवल ज्ञान और मोक्ष ये तीन कल्याणक गिरिनार पर्वत पर हुए हैं, जो धर्मचक्र का प्रवर्त्तक है उस श्री नेमिनाथ भगवान् को नमस्कार करता हूँ ॥४॥

[२४ तीर्थङ्करों की स्तुति]

* चत्तारि अट्ठ दस दो, य वंदिया जिणवरा चउव्वीसं ।
परमट्ठनिट्ठिअट्ठा, सिद्धा सिद्धिं मम दिसंतु ॥५॥

भावार्थ—जिन्होंने परम पुरुषार्थ मोक्ष प्राप्त किया है और इससे जिनको कुछ भी कर्तव्य बाकी नहीं है वे चौबीस जिनेश्वर मुझ को सिद्धि प्राप्त करने में सहायक हों ।

इस गाथा में चार, आठ, दस, दो इस क्रम से कुल चौबीस की संख्या बतलाई है इसका अभिप्राय यह है कि अष्टापद पर्वत पर चार दिशाओं में उसी क्रम से चौबीस प्रतिमाएं विराजमान हैं ॥५॥

---

† उज्जयन्तशैलशिखरे दीक्षा ज्ञानं नैषेधिकी यस्य ।
तं धर्मचक्रवर्तिनमरिष्टनेमिं नमस्यामि ॥ ४ ॥

१-देखो आवश्यकनिर्युक्ति गा० २२९-२३१, २४४, ३०७ ।

* चत्वारोऽष्टदश द्वौ च वन्दिता जिनवराश्चतुर्विंशतिः ।
परमार्थनिष्ठितार्थाः सिद्धाः सिद्धिं मम दिशन्तु ॥ ५ ॥

२४-वेयावच्चगराण सूत्र ।

* वेयावच्चगराणँ संतिगराण सम्मदिट्ठि समाहि-गराण करेमि काउस्सग्गं । अन्नत्थ० इत्यादि० ।

भावार्थ—जो देव, शासन की सेवा शुश्रूषा करने वाले हैं, जो सब जगह शान्ति फैलाने वाले हैं और जो सम्यक्त्वी जीवों को समाधि पहुचाने वाले हैं उनकी आराधना के लिये मैं कायोत्सर्ग करता हू ।

२५-भगवान् आदि को वन्दन ।

* भगवान , आचार्यहं उपाध्यायहं, सर्वसाधु ।

अर्थ—भगवान् को, आचार्य को, उपाध्याय को, और अन्य सब साधुओं को नमस्कार हो ।

२६—देवसिअ पडिक्कमणे ठाउं ।

इच्छाकारेण संदिसह भगवं देवसिअो पडिक्कमणे ठाउं इच्छं ।

† सव्वस्सवि देवसिअ दुच्चितिअ दुब्भासिअ दुच्चिट्ठिअ मिच्छामि दुक्कडं ।

---

* वैयावृत्त्यकराणां शान्तिकराणां सम्यग्दृष्टिसमाधिकराणां करोमि कायोत्सर्गम् ।

* भगवद्भ्य आचार्येभ्य , उपाध्यायेभ्य , सर्वसाधुभ्य ।

१— भगवानहं' आदि चारों पदों में जो हं शब्द है वह अपभ्रंश भाषा के नियमानुसार छठी विभक्ति का बहुवचन है और चौथी विभक्ति के अर्थ में आया ।

† सर्वस्याऽपि देवसिकस्य दुश्चिन्तितस्य दुर्भाषितस्य दुश्चेष्टितस्य मिथ्या मे दुष्कृतम् ।

भावार्थ—दिवस में मैंने बुरे विचार से, बुरे भाषण से और बुरे कामों से जो पाप बांधा है वह निष्फल हो।

२७—इच्छामि ठाइउ सूत्र।

‡ इच्छामि ठाइउं काउस्सग्गं।

* जो मे देवसिओ अइयारो कओ, काइओ वाइओ माणसिओ उस्सुत्तो उम्मग्गो अकप्पो अकरणिज्जो दुज्झाओ दुव्विचिंतिओ अणायारो अणिच्छिअव्वो असावग-पाउग्गो नाणे दंसणे चरित्ताचरित्ते सुए सामाइए, तिण्हं गुत्तीणं चउण्हं कसायाणं पंचण्हमणुव्वयाणं तिण्हं गुणव्वयाणं चउण्हं सिक्खावयाणं-बारसविहस्स सावगधम्मस्स-जं खंडिअं जं विराहिअं तस्स मिच्छामि दुक्कडं।

भावार्थ—मैं काउस्सग्ग करना चाहता हूँ, परन्तु इसके पहिले मैं इस प्रकार दोष की आलोचना कर लेता हूं। ज्ञान, दर्शन, देशविरति-चारित्र, श्रुतधर्म और सामायिक के विषय में मैंने दिन में जो कायिक वाचिक मानसिक अतिचार सेवन

---

‡ इच्छामि स्थातुं कायोत्सर्गम्।

२—'ठामि' यह पाठान्तर प्रचलित है किन्तु आवश्यक सूत्र पृ० ७७८ पर 'ठाइउं' पाठ है जो अर्थ-दृष्टि से विशेष संगत मालूम होता है।

* यो मया दैवसिकोऽतिचारः कृतः, कायिको वाचिको मानसिक उत्सूत्र उन्मार्गोऽकल्प्योऽकरणीयो दुर्ध्यातो दुर्विचिन्तितोऽनाचारोऽनेष्टव्योऽश्रावकप्रायोग्यो ज्ञाने दर्शने चारित्राचारित्रे श्रुते सामायिके, तिसृणां गुप्तीनां चतुर्णां कषायाणां पञ्चानामणुव्रतानां त्रयाणां गुणव्रतानां चतुर्णां शिक्षाव्रतानां द्वादशविधस्य श्रावकधर्मस्य यत् खण्डितं यद्विराधितं तस्य मिथ्या मे दुष्कृतम्।

किया हो उस का पाप मेरे लिये निष्फल हो। मार्ग अर्थात् परंपरा विरुद्ध तथा कल्प अर्थात् आचार-विरुद्ध प्रवृत्ति करना कायिक अतिचार है दुर्ध्यान या अशुभ चिन्तन करना मानसिक अतिचार है। सब प्रकार के अतिचार अकर्तव्य रूप होने के कारण आचरने व चाहने योग्य नहीं हैं, इसी कारण इन का सेवन श्रावक के लिये अनुचित है।

तीन गुप्तिओं का तथा बारह प्रकार के श्रावक धर्म का मैंने कषायवश जो देशभङ्ग या सर्वभङ्ग किया हो उस का भी पाप मेरे लिये निष्फल हो।

२८—आचार की गाथायें।

[पांच आचार के नाम]

* नाणम्मि दंसणम्मि अ, चरणम्मि तवम्मि तह य विरियम्मि।
आयरणं आयारो, इअ एसो पंचहा भणिओ ॥१॥

१—यद्यपि ये गाथायें 'अतिचार की गाथायें' कहलाती हैं तथापि इन में कोई अतिचार का वर्णन नहीं है, सिर्फ आचार का वर्णन है इसलिये 'आचार की गाथायें' यह नाम रक्खा गया है

'अतिचार की गाथायें' ऐसा नाम प्रचलित हो जाने का सबब यह जान पड़ता है कि पाक्षिक अतिचार में ये गाथायें आती हैं और इनमें वर्णन किये हुए आचारों को लेकर उनके अतिचार का मिच्छामि दुक्कडं दिया जाता है।

* ज्ञाने दर्शने च चरणे तपसि तथा च वीर्ये।
आचरणमाचार इत्येष पञ्चधा भणितः ॥१॥

२—यही पाञ्च प्रकार का आचार दशवैकालिक निर्युक्ति गा० १८१ में वर्णित है।

दंसणनाणचरित्ते तवआयारवीरियारे।
एसो भावायारो पंचविहो होइ नायव्वो ॥

भावार्थ—ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप और वीर्य के निमित्त अर्थात् इन की प्राप्ति के उद्देश्य से जो आचरण किया जाता है वही आचार है। मान योग्य ज्ञान आदि गुण मुख्यतया पाच हैं इस लिये आचार भी पाच प्रकार का माना जाता है ॥१॥

[ज्ञानाचार के भेद]

* काले विणए बहुमाणे उवहाणे तह अनिण्हवणे।
वंजणमत्थतदुभए, अट्ठविहो नाणमायारो ॥२॥

भावार्थ—ज्ञान की प्राप्ति के लिये या प्राप्त ज्ञान की रक्षा के लिये जो आचरण जरूरी है वह ज्ञानाचार कहलाता है। उसके स्थूल दृष्टि से आठ भेद हैं—

(१) जिस जिस समय जो जो आगम पढ़ने की शास्त्र मे आज्ञा है उस उस समय उसे पढ़ना कालाचार है।

(२) ज्ञानिओं का तथा ज्ञान के साधन-पुस्तक आदि का विनय करना विनयाचार है।

---

* काले विनये बहुमाने उपधाने तथा अनिह्नवने।
व्यञ्जनार्थतदुभये अष्टविधो ज्ञान-आचार ॥२॥

१—उत्तराध्ययन आदि कालिक श्रुत पढ़ने का समय दिन तथा रात्रि का पहला और चौथा प्रहर बतलाया गया है। आवश्यक आदि उत्कालिक श्रुत पढ़ने के लिये तीन सन्ध्या रूप काल वेला छोड़ कर अन्य सब समय योग्य माना गया है।

(३) ज्ञानियों का व ज्ञान के उपकरणों का यथार्थ आदर करना बहुमान है।

(४) सूत्रों को पढ़ने के लिये शास्त्रानुसार जो तप किया जाता है वह उपधान है।

(५) पढ़ाने वाले को नहीं छिपाना-किसी से पढ़कर, मैं इस से नही पढ़ा इस प्रकार का मिथ्या भाषण नहीं करना-अनिह्नव है।

(६) सूत्र के अक्षरों का वास्तविक उच्चारण करना व्यञ्जनाचार है।

(७) सूत्र का सत्य अर्थ करना अर्थाचार है।

(८) सूत्र और अर्थ दोनों को शुद्ध पढ़ना, समझना तदुभयाचार है।

[दर्शनाचार के भेद]

* निस्सङ्किय निक्कंखिय, निव्वितिगिच्छा अमूढदिट्ठी अ
उववूह-थिरीकरणे, वच्छल्ल पभावणे अट्ठ ॥३॥

---

* निःशङ्कित निष्काङ्क्षित, निर्विचिकित्साऽमूढदृष्टिश्च ।
उपबृंह स्थिरीकरणे, वात्सल्य प्रभावनाऽष्ट ॥ ३ ॥

भावार्थ—दर्शनाचार के आठ भेद हैं। इनका स्वरूप इस प्रकार है—

(१) श्रीवीतराग के वचन में शङ्काशील न बने रहना निःशङ्कपन है।

(२) जो मार्ग वीतराग-कथित नहीं है उस की चाह न रखना काङ्क्षारहितपन है।

(३) त्यागी महात्माओं के वस्त्र-पात्र आदि त्याग-वृत्ति के कारण मलिन हों तो उन्हें देखकर घृणा न करना या धर्म के फल में सन्देह न करना निर्विचिकित्सा-निःसन्देहपन है।

(४) मिथ्यात्वी के बाहरी ठाठ को देखकर सत्य मार्ग में डावाडोल न होना अमूढदृष्टिता है।

(५) सम्यक्त्व वाले जीव के थोड़े से गुणों की भी हृदय से सराहना करना और इस के द्वारा उसको धर्म-मार्ग में प्रोत्साहित करना उपबृंहण है।

(६) जिन्होंने धर्म प्राप्त नहीं किया है उन्हें धर्म प्राप्त कराना या धर्म-प्राप्त व्यक्तियों को धर्म से चलित देखकर उस पर स्थिर करना स्थिरीकरण है।

(७) साधर्मिक भाइयों का अनेक तरह से हित विचारना वात्सल्य है।

(८) ऐसे कामों को करना जिनसे धर्म-हीन मनुष्य भी वीतराग के कहे हुए धर्म का सच्चा महत्व समझने लग प्रभावना है।

इनको दर्शनाचार इसलिये कहा है कि इनके द्वारा दर्शन (सम्यक्त्व) प्राप्त होता है या प्राप्त सम्यक्त्व की रक्षा होती है ॥३॥

[चारित्राचार के भेद]

* पणिहाण-जोग जुत्तो, पञ्चहिं समिईहिं तीहिं गुत्तीहिं।
एस चरित्तायारो, अट्ठविहो होइ नायव्वो ॥ ४ ॥

भावार्थ—प्रणिधानयोगपूर्वक—मनोयोग, वचनयोग, काययोग की एकाग्रतापूर्वक—संयम पालन करना चारित्राचार है। पांच समितियां और तीन गुप्तियां ये चारित्राचार के आठ भेद हैं, क्योंकि यही चारित्र साधने के मुख्य अंग हैं और इन के पालन करने में योग की स्थिरता आवश्यक है ॥४॥

[तप आचार के भेद]

† बारसविहम्मि वि तवे, सब्भिंतर-बाहिरे कुसलदिट्ठे।
अगिलाइ अणाजीवी, नायव्वो सो तवायारो ॥५॥

---

* प्रणिधानयोगयुक्त, पञ्चभिः समितिभिस्तिसृभिर्गुप्तिभिः।
एष चारित्राचारोऽष्टविधो भवति ज्ञातव्य ॥ ४ ॥

† द्वादशविधेऽपि तपसि साभ्यन्तरबाह्ये कुशलदिष्टे।
अग्लान्यनाजीवी, ज्ञातव्यः स तपआचारः ॥ ५ ॥

भावार्थ—तीर्थंकरों ने तप के छह आभ्यन्तर और छह बाह्य इस प्रकार कुल बारह भेद कहे हैं। इनमें से किसी प्रकार का तप करने में कायर न होना या तप से आजीविका न चलाना अर्थात् केवल मूर्छा-त्याग के लिये तप करना तप आचार है ॥५॥

*अणसणमूणोअरिया, वित्तीसखेवणं रसचाओ।
काय-किलेसो सली-णया यबज्झो तवो होइ ॥६॥

भावार्थ—बाह्य तप के नाम और स्वरूप इस तरह हैं—

(१) थोड़े या बहुत समय के लिये सब प्रकार के भोजन का त्याग करना अनशन है।

(२) अपने नियत भोजन-परिमाण से दो चार कौर कम खाना ऊनोदरता [ऊणोदरी] है।

(३) खाने, पीने, भोगने की चीजों के परिमाण को घटा देना वृत्ति-संक्षेप है।

(४) घी, दूध, आदि रस को या उसकी आसक्ति को त्यागना रस-त्याग है।

(५) कष्ट सहन के लिये अर्थात् सहनशील बनने के लिये केशलुञ्चन आदि करना कायक्लेश है।

---

* अनशनमूनोदरता वृत्तिसंक्षेपणं रसत्यागः।
कायक्लेशः संलीनता च बाह्यं तपो भवति ॥६॥

(६) विषयवासनाओं को न बढ़ाना या अङ्ग उपाङ्गों की कुचेष्टाओं को रोकना संलीनता है।

ये तप बाह्य इसलिये कहलाते हैं कि इन को करने वाला मनुष्य बाह्य दृष्टि से—सर्व साधारण की दृष्टि में तपस्वी समझा जाता है ॥६॥

* पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्चं तहेव सज्झाओ।
झाणं उस्सग्गो वि अ, अब्भिंतरओ तवो होइ ॥७॥

भावार्थ—आभ्यन्तर तप के छह भेद नीचे लिखे अनुसार हैं—

(१) किये हुये दोष को गुरु के सामने प्रकट कर के उनसे पाप-निवारण के लिये आलोचना लेना और उसे करना प्रायश्चित्त है।

(२) पूज्यों के प्रति मन वचन और शरीर से नम्र भाव प्रकट करना विनय है।

(३) गुरु, वृद्ध, ग्लान आदि की उचित भक्ति करना अर्थात् अन्न-पान आदि द्वारा उन्हें सुख पहुँचाना वैयावृत्त्य है

(४) वाचना, पृच्छना, परावर्तना, अनुप्रेक्षा और धर्म-कथा द्वारा शास्त्राभ्यास करना स्वाध्याय है।

---

* प्रायश्चित्तं विनयो वैयावृत्त्यं तथैव स्वाध्यायः।
ध्यानमुत्सर्गोऽपि चाभ्यन्तरकं तपो भवति ॥७॥

(५) आर्त-रौद्र ध्यान को छोड़ धर्म या शुक्ल ध्यान में रहना ध्यान है।

(६) कर्म-क्षय के लिये शरीर का उत्सर्ग करना अर्थात् उस पर से ममता दूर करना उत्सर्ग या कायोत्सर्ग है।

ये तप आभ्यन्तर इसलिये माने जाते हैं कि इनका आचरण करने वाला मनुष्य सर्व साधारण की दृष्टि में तपस्वी नहीं प्रतीत होता है परन्तु शास्त्रदृष्टि से वह तपस्वी अवश्य है ॥७॥

[वीर्याचार का स्वरूप]

† अणिगूहिअ बलविरिओ, परक्कमइ जो जहुत्तमाउत्तो।
जुंजइ अ जहाथाम, नायव्वो वीरिआयारो ॥८॥

भावार्थ—जो कायबल तथा मनोबल को बिना छिपाये सावधान होकर शास्त्रोक्त रीति से पराक्रम करता है और शक्ति के अनुसार प्रवृत्ति करता है [उसके उस आचरण को] वीर्याचार जानना ॥८॥

---

† अनिगूहितबलवीर्यः पराक्रमते यो यथोक्तमायुक्तः।
युङ्क्ते च यथास्थाम ज्ञातव्यो वीर्याचारः ॥ ८ ॥

२६—सुगुरु-वन्दन सूत्र ।

१—आचार्य, उपाध्याय, प्रवर्तक, स्थविर और रत्नाधिक—पर्यायज्येष्ठ—(आवश्यकनियुक्ति गा० ११९५) ये पांच सुगुरु हैं। इन को वन्दन करने के समय यह सूत्र पढ़ा जाता है इस लिये इस को 'सुगुरु-वन्दन' कहते हैं। इसके द्वारा जो वन्दन किया जाता है वह उत्कृष्ट द्वादशावर्त्त वन्दन है। खमासमण सूत्र द्वारा जो वन्दन किया जाता है वह मध्यम थोभ वन्दन कहा जाता है। थोभ वन्दन का निर्देश आवश्यक निर्युक्ति गा० ११२७ में है। सिर्फ मत्थएण वंदामि कह कर जो वन्दन किया जाता है वह जघन्य फिट्टा वन्दन है। ये तीनों वन्दन गुरु वन्दन भाष्य में निर्दिष्ट हैं।

सुगुरु-वन्दन के समय २५ आवश्यक (विधान) रखने चाहिये जिनके न रखने से वन्दन निष्फल हो जाता है; वे इस प्रकार हैं—

'इच्छामि खमासमणो' से 'अणुजाणह' तक बोलने में दोनों बार आधा अंग नमाना यह दो अवनत। जन्मते समय बालक की या दीक्षा लेने के समय शिष्य की जैसी मुद्रा होती है वैसी अर्थात् कपाल पर दो हाथ रख कर नम्र मुद्रा करना—यह यथाजात, 'अहोकायं' 'काय-संफासं' 'खमणिज्जो भे किलामो' 'अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कंतो ? जत्ता भे ? जवणिज्जं च भे ?' इन छह छह आवर्त करने से दोनों वन्दन में बारह आवर्त [illegible] हाथ रख कर फिर सिर से लगाना यह आवर्त कहलाता [illegible] करना होने के बाद खामणा करने के समय शिष्य तथा आचार्य [illegible] नमन इस प्रकार दूसरे वन्दन में दो शिरोनमन कुल चार शिरोनमन वन्दन करने के समय मन वचन और शरीर का अशुभ व्यापार रोकने रूप तीन गुप्तियां 'अणुजाणह मे मिउग्गहं' कहकर गुरु से आज्ञा पाने के बाद अवग्रह में दोनों बार प्रवेश करना यह दो प्रवेश पहला वन्दन करके 'आवस्सियाए' कह कर अवग्रह से बाहर निकल जाना यह निष्क्रमण कुल २५। आवश्यक निर्युक्ति गा० १२ २-४

* इच्छामि खमासमणो ! वंदिउं जावणिज्जाए निसीहिआए। अणुजाणह मे मिउग्गहं। निसीहि अहोकायं कायसंफासं। खमणिज्जो भे किलामो। अप्पकिलंताणं बहुसुभेण भे दिवसो वइक्कंतो? जत्ता भे? जवणिज्जं च भे?

† खामेमि खमासमणो ! देवसिअं वइक्कमं। आवस्सिआए पडिक्कमामि। खमासमणाणं देवसिआए आसायणाए तित्तीसन्नयराए जं किंचि मिच्छाए मणदुक्कडाए वयदुक्कडाए कायदुक्कडाए कोहाए माणाए मायाए लोभाए सव्वकालियाए सव्वमिच्छोवयाराए सव्वधम्माइक्कमणाए आसायणाए जो मे अइयारो कओ तस्स खमासमणो ! पडिक्कमामि निंदामि गरिहामि अप्पाणं वोसिरामि।

---

* इच्छामि क्षमाश्रमण ! वन्दितुं यापनीयया नैषेधिक्या। अनुजानीत मे [illegible] निषिध्य (नैषेधिक्या प्रविश्य) अधः कायं कायसंस्पर्शं (करोमि)। सावधान होकर शरीर अल्पक्लान्तानां बहुशुभेन भवतां दिवसो व्यतिक्रान्तः, भवतां?

† क्षमयामि क्षमाश्रमण ! दैवसिकं व्यतिक्रमं। आवश्यक्या प्रतिक्रामामि। क्षमाश्रमणानां दैवसिक्या आशातनया त्रयस्त्रिंशदन्यतरया यत्किंचिन्मिथ्याभूतया मनोदुष्कृतया वचोदुष्कृतया कायदुष्कृतया क्रोधया (क्रोधयुक्तया) मानया मायया लोभया सर्वकालिक्या सर्वमिथ्योपचारया सर्वधर्मातिक्रमणया आशातनया यो मया अतिचारः कृतः तस्य क्षमाश्रमण ! प्रतिक्रामामि निन्दामि गर्हे आत्मानं व्युत्सृजामि।

भावार्थ—हे क्षमाश्रमण गुरो ! मैं शरीर को पाप प्रवृत्ति से अलग कर यथाशक्ति आपको वन्दन करना चाहता हूं। (इस प्रकार शिष्य के पूछने पर यदि गुरु अस्वस्थ हों तो 'त्रिविधेन' ऐसा शब्द कहते हैं जिसका, मतलब संक्षिप्त रूप से वन्दन करने की आज्ञा समझी जाती है। अब गुरु की ऐसी इच्छा मालूम दे तब तो शिष्य संक्षेप ही से वन्दन कर लेता है। परन्तु यदि गुरु स्वस्थ हों तो 'छन्दसा' शब्द कहते हैं जिसका मतलब इच्छानुसार वन्दन करने की सम्मति देना माना जाता है। तब शिष्य प्रार्थना करता है कि) मुझ को अवग्रह में—आप के चारों ओर शरीर-प्रमाण क्षेत्र में—प्रवेश करने की आज्ञा दीजिये। ('अणुजाणामि' कह कर गुरु आज्ञा देवें तब शिष्य 'निसीहि' कहता है अर्थात् वह कहता है कि) मैं 'अन्य' व्यापार को छोड़ अवग्रह में प्रवेश कर विधि पूर्वक बैठता हूं। (फिर वह गुरु से कहता है कि आप मुझको आज्ञा दीजिये कि मैं) अपने मस्तक से आपके चरण का स्पर्श करूं। स्पर्श करने में मुझ से आपको कुछ बाधा हुई उसे क्षमा कीजिये। क्या आपने अल्पग्लान अवस्था में रह कर अपना दिन बहुत कुशल पूर्वक व्यतीत किया ? (उक्त प्रश्न का उत्तर गुरु 'तथा' कह कर देते हैं, फिर शिष्य पूछता है कि) आप की तप-संयम यात्रा निर्बाध है(उत्तर में गुरु 'तुब्भपि वट्टइ' कह कर शिष्य

से उस की प्रथम-यात्रा की निर्विघ्नता का प्रश्न करते हैं। शिष्य फिर गुरु से पूछता है कि) क्या आप का शरीर तप विकारों से रहित और शक्तिशाली है ? (उत्तर में गुरु 'एवं' कहते हैं)

(अब यहां से आगे शिष्य अपने किये हुए अपराध की क्षमा मांग कर अतिचार का प्रतिक्रमण करता हुआ कहता है कि) हे क्षमाश्रमण गुरो ! मुझ से दिन में या रात में आपका जो कुछ भी अपराध हुआ हो उसकी मैं क्षमा चाहता हूं। (इसके बाद गुरु भी शिष्य से अपने प्रमाद जन्य अपराध की क्षमा मांगते हैं। फिर शिष्य प्रणाम कर अवग्रह से बाहर निकल आता है, बाहर निकलता हुआ यथास्थित भाव को क्रिया द्वारा प्रकाशित करता हुआ वह 'आवस्सिआए' इत्यादि पाठ कहता है।) आवश्यक क्रिया करने में मुझ से जो अयोग्य विधान हुआ हो उसका प्रतिक्रमण करता हूं। (सामान्यरूप से इतना कह कर फिर विशेष रूप से प्रतिक्रमण के लिये शिष्य कहता है कि) हे क्षमाश्रमण गुरो ! आप की तेतीस में से किसी भी दैवसिक या रात्रिक आशातना[1] के द्वारा मैंने जो अतिचार सेवन किया उसका प्रतिक्रमण करता हूँ, तथा किसी मिथ्याभाव से

१-ये आशातनायें आवश्यक सूत्र पृ० ७२३ और समवायाङ्ग सूत्र पृ० ५८ में वर्णित हैं।

होने वाली, द्वेषजन्य, दुर्भावजन्य, लोभजन्य, सर्वकाल-सम्बन्धिनी, सब प्रकार के मिथ्या व्यवहारों से होने वाली और सब प्रकार के धर्म के अतिक्रमण से होने वाली आशातना के द्वारा मैंने अतिचार सेवन किया उसका भी प्रतिक्रमण करता हूँ अर्थात् फिर से ऐसा न करने का निश्चय करता हूँ, उस दूषण की निन्दा करता हूँ, आप गुरु के समीप उसकी गर्हा करता हूँ और ऐसे पाप व्यापार से आत्मा को हटा लेता हूँ ॥२६॥

[दुबारा पढते समय 'आवस्सिआए' पद नहीं कहना। रात्रिक प्रतिक्रमण में 'राइवइक्कन्ता', चातुर्मासिक प्रतिक्रमण में 'चउमासी वइक्कंता', पाक्षिक प्रतिक्रमण में 'पक्खो वइक्कंतो', सांवत्सरिक प्रतिक्रमण में 'संवच्छरो वइक्कंतो', ऐसा पाठ पढना।]

३०—देवसिअ आलोउ सूत्र।

* इच्छाकारेण संदिसह भगवन्! देवसिअं आलोउं! इच्छं। आलोएमि जो मे इत्यादि।

भावार्थ—हे भगवन्! दिवस-सम्बन्धी आलोचना करने के लिये आप मुझको इच्छा-पूर्वक आज्ञा दीजिये, (आज्ञा मिलने

* इच्छाकारेण संदिशत भगवन्! दैवसिकं आलोचयितुं। इच्छामि। आलोचयामि यो मया इत्यादि।

पर) 'इच्छं'—उसको मैं स्वीकार करता हूं। बाद 'जो मे' इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्ववत् जानना।

३१—सात लाख।

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वाउकाय, दस लाख प्रत्येक-वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण-वनस्पतिकाय, दो लाख दो इन्द्रिय वाले, दो लाख तीन इन्द्रिय वाले दो लाख चार इन्द्रिय वाले चार लाख देवता, चार लाख नारक, चार लाख तिर्यञ्च पञ्चेन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य कुल चौरासी लाख जीवयोनियों[1] में से किसी जीव का हनन किया, कराया या करते हुए का अनुमोदन किया वह सब मन वचन काया करके मिच्छामि दुक्कड।

३२—अठारह पाप स्थान।

पहला प्राणातिपात, दूसरा मृषावाद, तीसरा अदत्ता दान, चौथा मैथुन, पाचवाँ परिग्रह, छठा क्रोध, सातवाँ

---

१ योनि उत्पत्ति स्थान को कहते हैं। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की समानता होने से अनेक उत्पत्ति-स्थानों का भी एक योनि कहते हैं। (देखो योनिस्तव)

पर) 'इच्छं'—उसको मैं स्वीकार करता हूं। बाद 'जो मे' इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्ववत् जानना।

३१—सात लाख।

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वाउकाय, दस लाख प्रत्येक-वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण-वनस्पतिकाय, दो लाख दो इन्द्रिय वाले, दो लाख तीन इन्द्रिय वाले दो लाख चार इन्द्रिय वाले चार लाख देवता, चार लाख नारक, चार लाख तिर्यञ्च पञ्चन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य कुल चौरासी लाख जीवयोनियों[1] में से किसी जीव का हनन किया, कराया या करते हुए का अनुमोदन किया वह सब मन वचन काया करके मिच्छामि दुक्कडं।

३२—अठारह पाप स्थान।

पहला प्राणातिपात, दूसरा मृषावाद, तीसरा अदत्ता दान, चौथा मैथुन, पांचवाँ परिग्रह, छठा क्रोध, सातवा

---

१ योनि उत्पत्ति स्थान को कहते हैं। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की समानता होने से अनेक उत्पत्ति-स्थानों को भी एक योनि कहते हैं। (देखो योनिस्तव)

पर) 'इच्छ'—उसको मैं स्वीकार करता हूं। बाद, 'जो मे' इत्यादि पाठ का अर्थ पूर्ववत् जानना।

३१—सात लाख।

सात लाख पृथ्वीकाय, सात लाख अप्‌काय, सात लाख तेउकाय, सात लाख वाउकाय, दस लाख प्रत्येक-वनस्पतिकाय, चौदह लाख साधारण-वनस्पतिकाय, दो लाख दो इन्द्रिय वाले, दो लाख तीन इन्द्रिय वाले दो लाख चार इन्द्रिय वाले चार लाख देवता, चार लाख नारक, चार लाख तिर्यञ्च पञ्चन्द्रिय, चौदह लाख मनुष्य कुल चौरासी लाख जीवयोनियों में से किसी जीव का हनन किया, कराया या करते हुए का अनुमोदन किया वह सब मन वचन काया करके मिच्छामि दुक्कड।

३२—अठारह पाप स्थान।

पहला प्राणातिपात, दूसरा मृषावाद, तीसरा अदत्ता दान, चौथा मैथुन, पांचवाँ परिग्रह, छठा क्रोध, सातवा

---

१ योनि उत्पत्ति स्थान को कहते हैं। वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श की समानता होने से अनेक उत्पत्ति-स्थानों को भी एक योनि कहते हैं। (देखो योनिस्तव)

(१) वीतराग के वचन पर निर्मूल शङ्का करना शङ्कातिचार, (२) अहितकारी मत को चाहना काङ्क्षातिचार, (३) धर्म का फल मिलेगा या नहीं, ऐसा सन्देह करना या निस्पृह त्यागी महात्माओं के मलिन वस्त्र पात्र आदि को देख उन पर घृणा करना विचिकित्सातिचार, (४) मिथ्यात्वियों की प्रशंसा करना जिससे कि मिथ्याभाव की पुष्टि हो कुलिङ्गिप्रशंसातिचार, और (५) बनावटी भेस पहन कर धर्म के बहाने लोगों को धोखा देने वाले पाखण्डियों का परिचय करना कुलिङ्गिसंस्तवातिचार ॥६॥

[आरम्भजन्य दोषों की आलोचना]

*छकायसमारंभे, पयणे अ पयावणे अ जे दोसा ।
अत्तट्ठा य परट्ठा, उभयट्ठा चेव तं निंदे ॥७॥

भावार्थ—अपने लिये या पर के लिये या दोनों के लिये कुछ पकाने, पकवाने में छह काय की विराधना होने से जो दोष लगते हैं उनकी इस गाथा में आलोचना है ॥७॥

१-शङ्का आदि से तत्त्वरुचि चलित हो जाती है इस लिये ये सम्यक्त्व के अतिचार कहे जाते हैं।

* षट् कायसमारम्भे पचने च पाचने च ये दोषाः ।
आत्मार्थं च परार्थं उभयार्थं चैव तं निन्दामि ॥७॥

[सामान्य रूप से बारह व्रत के अतिचारों की आलोचना]

† पंचण्हमणुव्वयाणं, गुणव्वयाणं च तिण्हमइआरे।
सिक्खाणं च चउण्हं, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥८॥

भावार्थ—पांच अणुव्रत, तीन गुणव्रत, चार शिक्षाव्रत, इस प्रकार बारह व्रतों के तथा तप संलेखना आदि के अतिचारों को सेवन करने से जो दूषण लगता है उसकी इस गाथा में आलोचना की गई है ॥८॥

---

† पञ्चानामणुव्रतानां, गुणव्रतानां च त्रयाणामतिचारान्।
शिक्षाणां च चतुर्णां प्रतिक्रमामि दैवसिकं सर्वम् ॥८॥

१—श्रावक के पहले पांच व्रत महाव्रत की अपेक्षा छोटे होने के कारण 'अणुव्रत' कहे जाते हैं, ये 'देश मूलगुणरूप' हैं। अणुव्रतों के लिये गुणकारक अर्थात् पुष्टिकारक होने के कारण छठे आदि तीन व्रत 'गुणव्रत' कहलाते हैं। और शिक्षा की तरह बार बार सेवन करने योग्य होने के कारण नववें आदि चार व्रत 'शिक्षाव्रत' कहे जाते हैं। गुणव्रत और शिक्षाव्रत 'देश उत्तरगुणरूप' हैं।

पहले आठ व्रत यावत्कथित हैं अर्थात् जितने काल के लिये ये व्रत लिये जाते हैं उतने काल तक इनका पालन निरन्तर किया जाता है। पिछले चार इत्वरिक हैं—अर्थात् जितने काल के लिये ये व्रत लिये जाय उतने काल तक इनका पालन निरन्तर नहीं किया जाता। सामायिक और देशावकाशिक ये दो प्रतिदिन लिये जाते हैं और पौषध तथा अतिथिसंविभाग ये दो व्रत अष्टमी चतुर्दशी पर्व आदि विशेष दिनों में लिये जाते हैं। [आवश्यक सूत्र, पृष्ठ ८३८]

[पहले अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना]

*पढमे अणुव्वयम्मि, थूलगपाणाइवायविरईओ ।
आयरिअमप्पसत्थे, इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥९॥
वह बंध छविच्छेए, अइभारे भत्तपाणवुच्छेए ।
पढमवयस्सइआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१०॥ †

भावार्थ–जीव सूक्ष्म और स्थूल दो प्रकार के हैं। उन सब की हिंसा से गृहस्थ श्रावक निवृत्त नहीं हो सकता। उसको अपने धंधे में सूक्ष्म (स्थावर) जीवों की हिंसा लग ही जाती है,

---

* प्रथमेऽणुव्रते स्थूलकप्राणातिपातविरतितः ।
आचरितमप्रशस्तमत्र प्रमादप्रसङ्गेन ॥९॥
वधो बन्धश्छविच्छेदोऽतिभारो भक्तपानव्यवच्छेदः ।
प्रथमव्रतस्यातिचारान्, प्रतिक्रामामि दैवसिकं सर्वम् ॥१०॥

१—पहले व्रत में यद्यपि त्रस प्राणियों के अतिपात—विनाश का ही प्रत्याख्यान किया जाता है तथापि विनाश के कारण भूत वध आदि क्रियाओं का त्याग भी इस व्रत में गर्भित है। वध, बन्ध आदि करने से प्राणी को केवल कष्ट पहुँचता है प्राण नाश नहीं होता। इस लिये बाह्य दृष्टि से देखने पर उस में हिंसा नहीं है, पर कषाय पूर्वक निर्दय व्यवहार किये जाने के कारण अन्तर्दृष्टि से देखने पर उस में हिंसा का अंश है। इस प्रकार वध बन्ध आदि से प्रथम व्रत का मात्र देश भंग होता है। इस कारण वध बन्ध आदि पहिले व्रत के अतिचार हैं [पञ्चाशक टीका, पृष्ठ १]

† थूलगपाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच अइयारा जाणियव्वा, तंजहा—वहे बंधे छविच्छेए अइभारे भत्तपाणवुच्छेए।

[आवश्यक सूत्र पृष्ठ ८१८]

इसलिये वह स्थूल (त्रस) जीवों का पचक्खाण करता है । त्रस मे भी जो अपराधी हों, जैसे चोर हत्यारे आदि उनकी हिंसा का पचक्खाण गृहस्थ नहीं कर सकता, इस कारण वह निरपराध त्रस जीवों की ही हिंसा का पच्चक्खाण करता है । निरपराध त्रस जीवों की हिंसा भी संकल्प और आरम्भ दो तरह से होती है । इसमें आरम्भजन्य हिंसा, जो खेती व्यापार आदि धन्धे में हो जाती है उससे गृहस्थ बच नहीं सकता, इस कारण वह संकल्प हिंसा का ही अर्थात् हड्डी, दांत, चमडे या मांस के लिये अमुक प्राणी को मारना चाहिये, ऐसे इरादे से हिंसा करने का ही पच्चक्खाण करता है । संकल्प पूर्वक की जाने वाली हिंसा भी सापेक्ष निरपेक्षरूप से दो तरह की है । गृहस्थ को बैल, घोडे आदि को चलाते समय या लड़के आदि को पढाते समय कुछ हिंसा लग ही जाती है, जो सापेक्ष है, इसलिये वह निरपेक्ष अर्थात् जिसकी कोई भी जरूरत नहीं है ऐसी निरर्थक हिंसा का ही पचक्खाण करता है । यही स्थूल प्राणातिपात विरमणरूप प्रथम अणुव्रत है ।

इस व्रत में जो क्रियाएँ अतिचाररूप होने से त्यागने योग्य हैं उनकी इन दो गाथाओं में आलोचना है । वे अतिचार ये है —

(१) मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणियों को चाबुक, लकड़ी आदि से पीटना, (२) उनको रस्सी आदि से बांधना, (३) उन

के नाक, कान आदि अङ्गों को छेदना, (४) उन पर परिमाण से अधिक बोझा लादना और (५) उनके खाने पीने में रुकावट पहुँचाना ॥९॥१०॥

[दूसरे अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना]

* बीए अणुव्वयम्मि, परिथूलगअलियवयणविरईओ ।
आयरियमप्पसत्थे इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥११॥

* सहसा-रहस्सदारे, मोसुवएसे अ कूडलेहे अ ।
बीयवयस्सइआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१२॥ †

भावार्थ—सूक्ष्म और स्थूल दो तरह का 'मृषावाद' है। हँसी दिल्लगी में झूठ बोलना सूक्ष्म मृषावाद है, इसका त्याग करना गृहस्थ के लिये कठिन है। अतः वह स्थूल मृषावाद का अर्थात् क्रोध या लालच वश 'सुशील' कन्या को दुःशील और दुःशील कन्या को सुशील कहना, अच्छे पशु को बुरा और

---

* द्वितीयेऽणुव्रते परिस्थूलकालीकवचनविरतितः ।
आचरितमप्रशस्ते ऽत्र प्रमादप्रसङ्गेन ॥ ११ ॥

* सहसा रहस्यदारे मृषोपदेशे च कूटलेखे च ।
द्वितीयव्रतस्यातिचारान् प्रतिक्रमामि दैवसिकं सर्वम् ॥१२॥

† थूलगमुसावायवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच० तंजहा—सहस्सब्भक्खाणे रहस्सब्भक्खाणे सदारमंतभेए मोसुवएसे कूडलेहकरणे ।

[आवश्यक सूत्र, पृष्ठ ८२०]

बुरे को अच्छा बतलाना, दूसरे की जायदाद को अपनी और अपनी जायदाद को दूसरे की साबित करना, किसी की रक्खी हुई धरोहर को दबा लेना या झूठी गवाही देना और इस प्रकार के झूठ का त्याग करना है। यही दूसरा अणुव्रत है इस व्रत में जो बातें अतिचार रूप हैं उन को दिखाकर इन दो गाथाओं में उनके दोषों की आलोचना की गई है वे अतिचार इस प्रकार हैं—

(१) बिना विचार किये ही किसी के सिर दोष मढ़ना, (२) एकान्त में बात चीत करने वाले पर दोषारोपण करना, (३) स्त्री की गुप्त व मार्मिक बातों को प्रकट करना (४) असत्य उपदेश देना और (५) झूठे लेख (दस्तावेज) लिखना ॥११॥१२॥

[तीसरे अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना]

*तइए अणुव्वयम्मि, थूलगपरदव्वहरणविरईओ ।
आयरिअमप्पसत्थे, इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥१३॥
तेनाहडप्पओगे, तप्पडिरूवे विरुद्धगमणे अ ।
कूडतुलकूडमाणे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१४॥ ‡

* तृतीयेऽणुव्रते स्थूलकपरद्रव्यहरणविरतितः ।
आचरितमप्रशस्ते, ऽत्रप्रमादप्रसंगेन ॥१३॥
स्तेनाहृतप्रयोगे, तत्प्रतिरूपे विरुद्धगमने च ।
कूटतुलाकूटमाने, प्रतिक्रामामि दैवसिकं सर्वम् ॥१४॥

‡ थूलादत्तादानवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच०, तंजहा-तेनाहडतक्कर पओगे विरुद्धरज्जाइक्कमणे कूडतुलकूडमाणे तप्पडिरूवगववहारे ।

[आवश्यक सूत्र, पृष्ठ ८२२]

भावार्थ—सूक्ष्म और स्थूल रूप से अदत्तादान दो प्रकार का है। मालिक की सम्मति के बिना भी जिन चीजों को लेने पर लेने वाला चोर नहीं समझा जाता ऐसी ढेला-तृण आदि मामुली चीजों को, उनके स्वामी की अनुज्ञा के लिये बिना, लेना सूक्ष्म अदत्तादान है। इसका त्याग गृहस्थ के लिये कठिन है, इस लिये वह स्थूल अदत्तादान का अर्थात् जिन्हें मालिक की आज्ञा के बिना लेने वाला चोर कहलाता है ऐसे पदार्थों को उनके मालिक की आज्ञा के बिना लेने का त्याग करता है, यह तीसरा अणुव्रत है। इस व्रत में जो अतिचार लगते हैं उनके दोषों की इन दो गाथाओं में आलोचना है व अतिचार ये हैं—

(१) चोरी का माल खरीद कर चोर को सहायता पहुंचाना, (२) बढ़िया नमूना दिखा कर उसके बदले घटिया चीज देना या मिलावट कर के देना, [३] चुंगी आदि महसूल बिना दिये किसी चीज को छिपा कर लाना ले जाना या मनाही किये जाने पर भी दूसरे देश में जाकर राज्यविरुद्ध हलचल करना, [४] तराजू, बाट आदि सही २ न रखकर उन से कम देना ज्यादा लेना, [५] छोटे बड़े नाप रखकर न्यूनाधिक लेना देना ॥ १३ ॥ १४ ॥

[चौथे अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना]

* चउत्थे अणुव्वयम्मि, निच्चं परदारगमणविरईओ ।
आयरिअमप्पसत्थे, इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥१५॥
अपरिग्गहिआ इत्तर, अणंगवीवाहतिव्वअणुरागे ।
चउत्थवयस्सइआरे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१६॥ ‡

भावार्थ—मैथुन के सूक्ष्म और स्थूल ऐसे दो भेद हैं। इन्द्रियों का जो अल्प विकार है वह सूक्ष्म मैथुन है और मन, वचन तथा शरीर से कामभोग का सेवन करना स्थूल मैथुन है। गृहस्थ के लिये स्थूल मैथुन के त्याग का अर्थात् सिर्फ अपनी स्त्री में सन्तोष रखने का या दूसरे की ब्याही हुई अथवा रक्खी हुई ऐसी परस्त्रियों को त्यागने का विधान है। यही चौथा अणुव्रत है। इस व्रत में लगने वाले अतिचारों की इन दो

---

* चतुर्थेऽणुव्रते, नित्यं परदारगमनविरतितः ।
आचरितमप्रशस्ते,—ऽत्र प्रमादप्रसङ्गेन ॥ १५ ॥
अपरिगृहीतेत्वरा,—नङ्गविवाहतीव्रानुरागान् ।
चतुर्थव्रतस्यातिचारान्, प्रतिक्रामामि दैवसिकं सर्वम् ॥ १६ ॥

‡ सदारसंतोसस्स समणोवासएणं इमे पंच॰, तंजहा-अपरिग्गहियागमणे इत्तरियपरिग्गहियागमणे अणंगकीडा परवीवाहकरणे कामभोगतिव्वाभिलासे ।
(आवश्यक सूत्र पृष्ठ ८२३)

गाथाओं में आलोचना है। ये अतिचार ये हैं —

[१] क्वारी कन्या या वेश्या के साथ सम्बन्ध जोड़ना, [२] जिसको थोड़े वक्त के लिये किसी ने रक्खा हो ऐसी वेश्या के साथ रमण करना, [३] सृष्टि के नियम विरुद्ध काम क्रीडा करना, [४] अपने पुत्र-पुत्री के सिवाय दूसरों का विवाह करना, कराना और [५] कामभोग की प्रबल अभिलाषा करना ॥ १५ ॥ १६ ॥

[पांचवें अणुव्रत के अतिचारों की आलोचना]

* इत्तो अणुव्वए पँ,-चमम्मि आयरिअमप्पसत्थम्मि ।
परिमाणपरिच्छेए, इत्थ पमायप्पसंगेणं ॥१७॥

१-चतुर्थ व्रत के धारण करने वाले पुरुष तीन प्रकार के होते हैं-(१) सर्वथा ब्रह्मचारी (२) स्वदारसंतोषी, (३) परदार त्यागी। पहले प्रकार के ब्रह्मचारी के लिये तो अपरिगृहीता-सेवन आदि उक्त पांचों अतिचार हैं, परन्तु दूसरे तीसरे प्रकार के ब्रह्मचारी के विषय में मतभेद है। श्रीहरिभद्रसूरिजी ने आवश्यक सूत्र की टीका में चूर्णि के आधार पर यह लिखा है कि स्वदार सन्तोषी को पांचों अतिचार लगते हैं किन्तु परदार त्यागी को पिछले तीन ही, पहले दो नहीं [आवश्यक टीका, पृष्ठ ८२५] दूसरा मत यह है कि स्वदार संतोषी को पहला छोड़कर शेष चार अतिचार। तीसरा मत यह है कि परदारत्यागी को पांच अतिचार लगते हैं पर स्वदार त्यागी को पिछले तीन अतिचार, पहिले दो नहीं। [पञ्चाशक टीका, पृष्ठ १४ १५] स्त्री के लिये पांचों अतिचार बिना मत भेद के माने गये हैं। [पञ्चाशक टीका, पृष्ठ १५]

* इतोऽणुव्रते पञ्चमे आचरितमप्रशस्ते ।
परिमाण परिच्छेदे,ऽत्र प्रमाद प्रसङ्गेन ॥१७॥

* धण-धन्न-खित्त वत्थू, रूप्प-सुवन्ने अ कुविअपरिमाणे
दुपए चउप्पयम्मि य, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥१८॥ $

भावार्थ—परिग्रह का सर्वथा त्याग करना अर्थात् किसी चीज पर थोड़ी भी मूर्च्छा न रखना, यह इच्छा का पूर्ण निरोध है, जो गृहस्थ के लिये असंभव है। इसलिये गृहस्थ संग्रह की इच्छा का परिमाण कर लेता है कि मैं अमुक चीज इतने परिमाण में ही रक्खूंगा, इससे अधिक नहीं, यह पांचवा अणुव्रत है। इसके अतिचारों की इन दो गाथाओं में आलोचना की गई है। वे अतिचार ये हैं—

(१) जितना धन-धान्य रखने का नियम किया हो उससे अधिक रखना, (२) जितने घर-खेत रखने की प्रतिज्ञा की हो उससे ज्यादा रखना, (३) जितने परिमाण में सोना चांदी रखने का नियम किया हो उससे अधिक रख कर नियम का उल्लङ्घन करना, (४) तांबा आदि धातुओं को तथा शयन आसन आदि को जितने परिमाण में रखने का प्रण किया हो उससे ज्यादा रखना और (५) द्विपद चतुष्पद को नियमित परिमाण

* धन धान्यया क्षेत्र-वास्तुनो-रूप्य-सुवर्णयोश्च कुप्यपरिमाणे।
द्विपद-चतुष्पदयोश्च प्रतिक्रामामि दैवसिकं सर्वम् ॥ १८ ॥

$ इच्छापरिमाणस्स समणोवासएणं इमे पंच धणधन्नपमाणाइक्कमे खित्तवत्थुपमाणाइक्कमे हिरण्णसुवन्नपमाणाइक्कमे दुपयचउप्पयपमाणाइक्कमे कुवियपमाणाइक्कमे। आवश्यक सूत्र, पृष्ठ ८२५]

(१) ऊर्ध्व दिशा में जितनी दूर तक जाने का नियम किया हो उससे आगे जाना, (२) अधो-दिशा में जितनी दूर जाने का नियम हो उससे आगे जाना, (३) तिर्छी दिशा में जाने के लिये जितना क्षेत्र निश्चित किया हो उससे दूर जाना, (४) एक तरफ के नियमित क्षेत्र प्रमाण को घटा कर दूसरी तरफ उतना बढ़ा लेना और वहां तक चले जाना, जैसे पूर्व और पश्चिम में सौ सौ कोस से दूर न जाने का नियम कर के आवश्यकता पड़ने पर पूर्व में नब्बे कोस की मर्यादा रख कर पश्चिम में एक सौ दस कोस तक चले जाना और (५) प्रत्येक दिशा में जाने के लिये जितना परिमाण निश्चित किया हो उसे भुला देना ॥१९॥

[सातवें व्रत के अतिचारों की आलोचना]

* मज्जम्मि अ मंसम्मि अ, पुप्फे अ फले अ गंधमल्ले अ।
उवभोगपरीभोगे, बीयम्मि गुणव्वए निंदे ॥२०॥

* सच्चित्ते पडिबद्धे, अपोलि दुप्पोलिअं च आहारे।
तुच्छोसहिभक्खणया, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥२१॥†

* मद्ये च मांसे च पुष्पे च फले च गन्धमाल्ये च।
उपभोगपरिभोगयो,-द्वितीये गुण व्रते निन्दामि ॥ २० ॥

* सचित्त प्रतिबद्धे, ऽपक्वं दुष्पक्वं आहारं।
तुच्छौषधिभक्षणता, प्रतिक्रमामि दैवसिकं सर्वं ॥ २१ ॥

† भोयणओ समणोवासएणं इमे पंच० तंजहा-सचित्ताहारे सच्चित्तपडिबद्धाहारे अप्पउलिओसहिभक्खणया तुच्छोसहिभक्खणया दुप्पउलिओसहिभक्खणया।

[आवश्यक सूत्र, पृष्ठ ८२८]

* गालीवणसाडी,-भाडीफोडी सुवज्जए कम्म ।
वाणिज्ज चेव य दन्तलक्खरसकेसविसविसय ॥२२
एव खु जतपिल्लण,-कम्म निल्लछण च दवदाण ।
सरदहतलायसोस, असईपोस च वज्जिज्जा॥२३॥−

भावार्थ—सातवा व्रत भोजन और कर्म दो तरह से होता है। भोजन में जो मद्य, मास आदि बिलकुल त्यागने योग्य है उनका त्याग करके बाकी में से अन्न, जल आदि एक ही बार उपयोग में आने वाली वस्तुओं का तथा वस्त्र, पात्र आदि बार बार उपयोग में आनेवाली वस्तुओं का परिमाण कर लेना। इसी तरह कर्म में, अङ्गार कर्म आदि अतिदोष वाले कर्मों का त्याग करके बाकी के कामों का परिमाण कर लेना, यह उपभोग परिभोग-परिमाणरूप दूसरा गुणव्रत अर्थात् सातवा व्रत है।

---

* अगारवनशकट,-भाटकस्फोट सुवर्जयेत् कम।
वाणिज्य चैव च दन्तलाक्षारसकेशविषविषयम् ॥२२॥
एव खलु यन्त्रपीलन -कर्म निर्लाञ्छन च दवदानम्।
सरोहृदतडागशोष असतीपोष च वर्जयेत् ॥२३॥

− कम्मओण समणोवासएण इमाइ पन्नरस कम्मादाणाइ जाणियव्वाइं, तंजहा—इगालकम्मे, वणकम्मे साडीकम्मे, भाडीकम्मे फोडीकम्मे। दंतवाणिज्जे, लक्खवाणिज्जे, रसवाणिज्जे, केसवाणिज्जे विसवाणिज्जे। जंतपीलणकम्मे निल्लंछणकम्मे दवग्गिदावणया, सरदहतलायसोसणया, असईपोसणया।

[आ० स०, पृ० ८११]

ऊपर की चार गाथाओं में से पहली गाथा में मद्य, मांस आदिवस्तुओं के सेवन मात्र की और पुष्प, फल, सुगंधि द्रव्य आदि पदार्थों का परिमाण से ज्यादा उपभोग परिभोग करने की आलोचना की गई है। दूसरी गाथा में सावद्य आहार का त्याग करने वाले को जो अतिचार लगते हैं उनकी आलोचना है। वे अतिचार इस प्रकार हैं —

[१] सचित्त वस्तु का सर्वथा त्याग कर के उसका सेवन करना या जो परिमाण नियत किया हो उस से अधिक लेना [२] सचित्त से लगी हुई अचित्त वस्तु का, जैसे –वृक्ष से लगे हुए गोंद तथा बीज सहित पके हुए फल का या सचित्त बीज वाले खजूर, आम आदि का आहार करना, [३] अपक्व आहार लेना, [४] दुष्पक्व—अधपका आहार लेना और [५] जिनमें खाने का भाग कम और फेंकने का अधिक हो ऐसी तुच्छ वनस्पतियों का आहार करना।

तीसरी और चौथी गाथा में पन्द्रह कर्मादान जो बहुत सावद्य होने के कारण श्रावक के लिये त्यागने योग्य हैं उन का वर्णन है। वे कर्मादान ये हैं —

[१] अंगार कर्म–कुम्हार, चूना पकाने वाले और भड़भूजे आदि के काम, जिनमें कोयला आदि ईंधन जलाने की खूब

जरूरत पड़ती हो, [२] वन कर्म—बड़े २ जंगल खरीदने का तथा काटने आदि का काम, [३] शकट कर्म इक्का, बग्घी, बैल आदि भांति भांति के वाहनों को खरीदने तथा बेचने का धंधा करना, [४] भाटक कर्म घोड़े, ऊंट, बैल आदि को किराये पर देकर रोजगार चलाना, [५] स्फोटक कर्म—कुँआ, तालाब आदि को खोदने खुदवाने का व्यवसाय करना, [६] दन्त वाणिज्य-हाथी-दांत, सीप, मोती आदि का व्यापार करना, [७] लाक्षा वाणिज्य—लाख, गोंद आदि का व्यापार करना [८] रस वाणिज्य-घी, दूध आदि का व्यापार करना, [९] केश वाणिज्य—मोर, तोते आदि पक्षियों का, उनके परों का और चमरी गाय आदि के बालों का व्यापार चलाना, [१०] विष वाणिज्य—अफीम, संखिया आदि विषैले पदार्थों का व्यापार करना, [११] यन्त्रपीड़न कर्म-चक्की, चरखा, कोल्हू आदि चलाने का धंधा करना, [१२] निर्लाञ्छन कर्म ऊंट, बैल आदि की नाक को छेदना या भेड़, बकरी आदि के कान को चीरना [१३] दवदान कर्म-जंगल, गांव, गृह आदि में आग लगाना [१४] शोषण कर्म—झील, हौज तालाब आदि को सुखाना और [१५] असतीपोषण कर्म-बिल्ली, कौआ आदि हिंसक प्राणियों का पालन तथा दुराचारी मनुष्यों का पोषण करना ॥२० २३॥

[आठवें व्रत के अतिचारों की आलोचना]

* सत्थग्गिमुसलजंतग-तणकट्ठे मंतमूल भेसज्जे ।
दिन्ने दवाविए वा, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥२४॥

न्हाणुव्वट्टणवन्नग,-विलेवणे सद्दरूवरसगंधे ।
वत्थासण आभरणे, पडिक्कमे देसिअं सव्वं ॥२५॥

कंदप्पे कुक्कुइए, मोहरिअहिगरण भोगअइरित्ते ।
दंडम्मि अणट्ठाए, तइयम्मि गुणव्वए निंदे ॥२६॥ †

भावार्थ—अपनी और अपने कुटुम्बियों की जरूरत के सिवा व्यर्थ किसी दोष-जनक प्रवृत्ति के करने को अनर्थदण्ड कहते हैं, इस से निवृत्त होना अनर्थदण्ड विरमण रूप तीसरा गुणव्रत अर्थात् आठवाँ व्रत है। अनर्थदण्ड चार प्रकार से होता है —

---

* शस्त्राग्निमुसलयन्त्रक-तृणकाष्ठे मन्त्रमूलभैषज्ये ।
दत्ते दापिते वा, प्रतिक्रामामि दैवसिकं सर्वम् ॥ २४ ॥
स्नानोद्वर्तनवर्णक,-विलेपने शब्दरूपरसगन्धे ।
वस्त्रासनाभरणे प्रतिक्रामामि दैवसिकं सर्वम् ॥ २५ ॥
कन्दर्पे कौकुच्ये, मौखर्येऽधिकरणभोगातिरिक्ते ।
दण्डेऽनर्थे तृतीये गुणव्रते निन्दामि ॥ २६ ॥

† अणत्थदण्डवेरमणस्स समणोवासएणं इमे पंच० तंजहा—कन्दप्पे कुक्कुइए मोहरिए संजुत्ताहिगरणे उवभोगपरिभोगाइरेगे । [आव० सूत्र, पृ० ८३-]

(१) अपध्यानाचरण, यानी बुरे विचारों के करने से, (२) पापकर्मोपदेश, यानी पापजनक कर्मों के उपदेश से (३) हिंसा प्रदान, यानी जिनसे जीवों की हिंसा हो ऐसे साधनों के देने दिलाने से, (४) प्रमादाचरण, यानी आलस्य व कामों में, इन तीन गाथाओं में इसी अनर्थदण्ड की आलोचना की गई है।

जिनमें से प्रथम गाथा मे–छुरी, चाकू आदि शस्त्र का देना दिलाना, आग देना दिलाना, मूसल, चक्की आदि यन्त्र तथा घास लकड़ी आदि इन्धन देना दिलाना मन्त्र, जड़ी बूटी तथा चूर्ण आदि औषध का प्रयोग करना कराना, इत्यादि प्रकार के हिंसा के साधनों की निन्दा की गई है।

दूसरी गाथा मे—असावधानता पूर्वक स्नान, उबटन का करना अबीर, गुलाल आदि रङ्गीन चीज़ों का लगाना, चन्दन आदि का लेपन करना, बाजे आदि के विविध शब्दों का सुनना, तरह तरह के लुभानने रूप देखना, अनेक रसों का स्वाद लेना भांति २ के सुगन्धित पदार्थों का सूँघना, अनेक प्रकार के वस्त्र आसन और आभूषणों में आसक्त होना, इत्यादि प्रकार के प्रमादाचरण की निन्दा की गई है।

तीसरी गाथा मे–अनर्थदण्ड विरमण व्रत के पांच अतिचारों की आलोचना है। वे अतिचार इस प्रकार है —

(१) इन्द्रियोंमें विकार पैदा करने वाली कथायें कहना, (२) हँसी दिल्लगी या नकल करना, (३) व्यर्थ बोलना, (४) शस्त्र आदि सामान तैयार करना और (५) आवश्यकता से अधिक चीजों का संग्रह करना ॥२४-२६॥

[नवमें व्रत के अतिचारों की आलोचना]

* तिविहे दुप्पणिहाणे, अणवट्ठाणे तहा सइविहूणे।
सामाइय वितह कए, पढमे सिक्खावए निंदे ॥२७॥

भावार्थ—सावद्य प्रवृत्ति तथा दुर्ध्यान का त्याग करके, राग द्वेष वाले प्रसंगों में भी समभाव रखना, यह सामायिक रूप पहला शिक्षाव्रत अर्थात् नवमा व्रत है। इसके अतिचारों की इस गाथा में आलोचना की गई है। वे अतिचार इस प्रकार हैं—

(१) मन को काबू में न रखना, (२) वचन का संयम न करना, (३) काया की चपलता को न रोकना, (४) अस्थिर बनाना अर्थात् कालावधि के पूर्ण होने के पहिले ही सामायिक पार लेना और (५) ग्रहण किये हुए सामायिक व्रत को प्रमाद वश भुला देना ॥२७॥

---

* त्रिविधे दुष्प्रणिधाने अनवस्थाने तथा स्मृतिविहीने।
सामायिके वितथे कृते, प्रथम शिक्षाव्रते निन्दामि ॥ २७ ॥

† सामाइयस्स समणो० इमे पञ्च०, तंजहा—मणदुप्पणिहाणे वइदुप्पणिहाणे कायदुप्पणिहाणे सामाइयस्स सइअकरणया सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया।
[आव० सू०, पृ० ८३१]

[दसवें व्रत के अतिचारों की आलोचना]

* आणवणे पेसवणे, सद्दे रूवे अ पुग्गलक्खेवे ।
देसावगासिअम्मि, बीए सिक्खावए निंदे ॥२८॥†

भावार्थ—छठे व्रत में जो दिशाओं का परिमाण और सातवें व्रत में जो भोग उपभोग का परिमाण किया हो, उसका प्रतिदिन संक्षेप करना, यह देशावकाशिक रूप दूसरा शिक्षाव्रत अर्थात् दसवां व्रत है। इस व्रत के अतिचारों की इस गाथा में आलोचना की गई है। वे अतिचार इस प्रकार हैं —

(१) नियमित हद के बाहर से कुछ लाना हो तो व्रत भङ्ग के भय से स्वयं न जाकर किसी के द्वारा उसे मंगवा लेना, (२) नियमित हद के बाहर कोई चीज़ भेजनी हो तो व्रत भङ्ग होने के भय से उसको स्वयं न पहुंचा कर दूसरे के मारफत भेजना, (३) नियमित क्षेत्र के बाहर से किसी को बुलाने की ज़रूरत हुई तो स्वयं न जा सकने के कारण खासी खखार

---

* आनयने प्रेषणे, शब्दे रूपे च पुद्गलक्षेपे ।
देशावकाशिके द्वितीये शिक्षाव्रते निन्दामि ॥ २८ ॥

† देसावगासियस्स समणो० इमे पंच०, तंजहा—आणवणप्पओगे पेसवणप्पओगे सद्दाणुवाए रूवाणुवाए बहियापुग्गलपक्खेवे ।

[आव० सू०, पृ० ८३४

आदि फेंक उस व्यक्ति को बुला लेना, (४) नियमित क्षेत्र के बाहर से किसी को बुलाने की इच्छा हुई तो व्रत भङ्ग के भय से स्वयं न जाकर खांस आदि शब्द करके उस व्यक्ति को आने की सूचना दे देना, और (५) नियमित क्षेत्र के बाहर ढेला, पत्थर आदि फेंक कर वहां से अभिमत व्यक्ति को बुला लेना ॥ २८ ॥

[ग्यारहवें व्रत के अतिचारों की आलोचना]

* संथारुच्चारविही, पमाय तह चेव भोयणाभोए।
पोसहविहिविवरीए, तइए सिक्खावए निंदे ॥२९॥†

भावार्थ—आठम चौदस आदि तिथियों में आहार तथा शरीर की शुश्रूषा का और सावद्य व्यापार का त्याग करके ब्रह्मचर्य पूर्वक धर्मक्रिया करना, यह पौषधोपवास नामक तीसरा शिक्षाव्रत अर्थात् ग्यारहवां व्रत है। इस व्रत के अतिचारों की इस गाथा में आलोचना की गई है। वे अतिचार ये हैं—

---

* संस्तारोच्चारविधि-प्रमादे तथा चैव भोजनाभोगे।
पौषधविधिविपरीते, तृतीये शिक्षाव्रते निन्दामि ॥ २९ ॥

† पोसहोववासस्स समणो० इमे पंच०, तंजहा—अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियसिज्जासंथारए अप्पमज्जियदुप्पमज्जियसिज्जासंथारए अप्पडिलेहियदुप्पडिलेहियउच्चारपासवणभूमीओ अप्पमज्जियदुप्पमज्जियउच्चारपासवणभूमीओ, पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालण[ा]या [आव० सू०, पृ० ८३५]

(१) सथारे की विधि में प्रमाद करना अर्थात् उसका पडिलेहन प्रमार्जन न करना, (२) अच्छी तरह पडिलेहन प्रमार्जन न करना, (३) दस्त, पेशाब आदि करने की जगह का पडिलेहन प्रमार्जन न करना, (४) पडिलेहन प्रमार्जन अच्छी तरह न करना और (५) भोजन आदि की चिंता करना कि कब सवेरा हो और कब मैं अपने लिये अमुक चीज बनवाऊँ ॥२६॥

[बारहवें व्रत के अतिचारों की आलोचना]

* सचित्ते निक्खिवणे, पिहिणे ववएसमच्छरे चेव ।
कालाइक्कमदाणे, चउत्थे सिक्खावए निंदे ॥३०॥‡

भावार्थ—साधु, श्रावक आदि सुपात्र अतिथि को देश काल का विचार कर के भक्ति पूर्वक अन्न, जल आदि देना, यह अतिथिसंविभाग नामक चौथा शिक्षाव्रत अर्थात् बारहवाँ व्रत है। इस के अतिचारों की इस गाथा में आलोचना की गई है। वे अतिचार इस प्रकार हैं—

---

* सचित्त निक्षेपणे, पिधाने व्यपदेशमत्सरे चैव ।
कालातिक्रमदाने, चतुर्थे शिक्षाव्रते निन्दामि ॥ ३० ॥

‡ अतिहिसंविभागस्स समणो० इमे पंच०, तंजहा—सचित्तनिक्खेवणया, सचित्तपिहिणया, कालाइक्कमे, परववएसे, मच्छरिया य [आव० सू०, १०८३७]

(१) साधु का देने योग्य अचित्त वस्तु में सचित्त वस्तु डाल देना, (२) अचित्त वस्तु को सचित्त वस्तु से ढाक देना, (३) दान करने के लिये पराई वस्तु को अपनी कहना और दान न करने के अभिप्राय से अपनी वस्तु को पराइ कहना, (४) मत्सर आदि कषाय पूर्वक दान देना और (५) समय बीत जाने पर भिक्षा आदि के लिये आमन्त्रण करना ॥३०॥

* सुहिएसु अ दुहिएसु अ, जा मे अस्संजएसु अणुकंपा ।
रागेण व दोसेण व, तं निंदे त च गरिहामि ॥३१॥

भावार्थ—जो साधु ज्ञानादि गुण में रत हैं या जो वस्त्र-पात्र आदि उपधि वाले हैं, वे सुखी कहलाते हैं। जो व्याधि से पीडित हैं, तपस्या से खिन्न हैं, या वस्त्र पात्र आदि उपधि से विहीन हैं, वे दुःखी कहे जाते हैं। जो गुरू की निश्रा से उनकी आज्ञा के अनुसार—वर्तते हैं, वे साधु अस्वयत कहलाते हैं। जो सयम-हीन हैं, वे असयत कहे जाते हैं। ऐसे सुखी, दुःखी, अस्वयत और असयत साधुओं पर यह व्यक्ति मेरा सम्बन्धी है, यह कुलीन है या यह प्रतिष्ठित है इत्यादि प्रकार के ममत्व-

---

* सुखितेषु च दुःखितेषु च या मया अस्वयतेषु (असंयतेषु) अनुकम्पा ।
रागेण वा द्वेषेण वा तां निन्दामि तां च गर्हे ॥ ३१ ॥

भाव से अर्थात् राग वश हो कर अनुकम्पा करना तथा यह कंगाल है, यह जाति-हीन है, यह घिनौना है, इस लिये इसे जो कुछ देना हो दे कर जल्दी निकाल दो, इत्यादि प्रकार के घृणाऽभिव्यञ्जक-भाव से अर्थात् द्वेष-वश हो कर अनुकम्पा करना। इसकी इस गाथा में आलोचना की गई है ॥३१॥

* साहूसु संविभागो, न कओ तवचरणकरणजुत्तेसु ।
संते फासुअदाणे, तं निंदे तं च गरिहामि ॥३२॥

भावार्थ—देने योग्य अन्न-पान आदि अचित्त वस्तुओं के मौजूद होने पर तथा सुसाधु का योग भी प्राप्त होने पर प्रमाद-वश या अन्य किसी कारण से अन्न, वस्त्र, पात्रादिक से उनका सत्कार न किया जाय, इसकी इस गाथा में निन्दा की गई है ॥३२॥

[संलेखना व्रत के अतिचारों की आलोचना]

* इहलोए परलोए, जीविअ मरणे अ आसंसपओगे ।
पञ्चविहो अइयारो, मा मज्झं हुज्ज मरणंते ॥३३॥†

---

* साधुषु संविभागो, न कृतस्तपश्चरणकरणयुक्तेषु ।
सति प्रासुकदाने, तन्निन्दामि तच्च गर्हे ॥ ३२ ॥

* इहलोके परलोके जीविते मरणे चाशंसाप्रयोगे ।
पञ्चविधोऽतिचारो, मा मम भवतु मरणान्ते ॥ ३३ ॥

† इमीए समणो० इम पंच०, तंजहा-इहलोगासंसप्पओगे, परलोगासंसप्पओगे, जीवियासंसप्पओगे, मरणासंसप्पओगे कामभोगासंसप्पओगे ।

[आव० सू०, पृ० ८३९]

भावार्थ—(१) धर्म के प्रभाव से मनुष्य-लोक का सुख मिले ऐसी इच्छा करना (२) या स्वर्ग-लोक का सुख मिले ऐसी इच्छा करना, (३) संलेखना (अनशन) व्रत के बहुमान को देख कर जीने की इच्छा करना, (४) दुःख से घबड़ा कर मरण की इच्छा करना और (५) भोग की वाञ्छा करना, इस प्रकार संलेखना व्रत के पांच अतिचार हैं। ये अतिचार मरण पर्यन्त अपने व्रत में न लगें, ऐसी भावना इस गाथा में की गई है ॥३३॥

* काएण काइअस्स, पडिकमे वाइअस्स वायाए।
मणसा माणसिअस्स, सव्वस्स वयाइआरस्स ॥३४॥

भावार्थ—अशुभ शरीर-योग से लगे हुए व्रतातिचारों[1] का प्रतिक्रमण शुभ शरीर-योग[2] से, अशुभ वचन योग से लगे हुए व्रतातिचारों[3] का प्रतिक्रमण शुभ वचन-योग[4] से और अशुभ मनोयोग से लगे हुए व्रतातिचारों[5] का प्रतिक्रमण शुभ मनोयोग[6] से करने की भावना इस गाथा में की गई है ॥ ३४ ॥

---

* कायेन कायिकस्य प्रतिक्रामामि वाचिकस्य वाचा।
मनसा मानसिकस्य सर्वस्य व्रतातिचारस्य ॥ ३४ ॥

१—वध बन्ध आदि। २—कायोत्सर्ग आदि रूप। ३—सहसा-अभ्याख्यान आदि। ४—मिथ्या दुष्कृतदान आदि। ५—शङ्का, कांक्षा आदि। ६—प्रतिस्वता आदि भावना रूप।

* वंदणवयसिक्खागारवेसु सन्नाकसायदंडेसु ।

गुत्तीसु अ समिईसु अ, जो अइआरो अ तं निंदे ॥३५॥

भावार्थ—वन्दन यानी गुरुवन्दन और चैत्यवन्दन, व्रत यानी अणुव्रतादि, शिक्षा यानी ग्रहण[1] और आसेवन[2] इस प्रकार की दो शिक्षाएं, समिति[3] और [illegible] [illegible] इत्यादि पांच

---

* वन्दनव्रतशिक्षागौरवेषु संज्ञाकषायदण्डेषु ।
गुप्तिषु च समितिषु च योऽतिचारश्च तं निन्दामि ॥ ३५ ॥

१—जघन्य आठ प्रवचन माता (पांच समितियां और तीन गुप्तियां) और उत्कृष्ट दशवैकालिक सूत्र के षड्जीवनिकाय नामक चौथे अध्ययन तक अर्थ सहित सीखना 'ग्रहण शिक्षा' है। [आव० टी०, पृ० ८३३]

२—प्रातःकालीन नमुक्कार मन्त्र के जप से लेकर श्राद्ध दिन कृत्य आदि, ग्रन्थ में वर्णित श्रावक के सब नियमों का सेवन करना 'आसेवन शिक्षा' है।

[श्राद्धप्रतिक्रमण वृत्ति, पृ० १५३]

३—विवेक युक्त प्रवृत्ति करना 'समिति' है। इस के पांच भेद हैं—ईर्यासमिति, भाषासमिति, एषणासमिति, आदानभाण्डमात्रनिक्षेपणासमिति, और पारिष्ठापनिका समिति। [आव० सू०, पृ० ६१५]

गुप्ति और समिति का आपस में अन्तर—गुप्ति प्रवृत्ति रूप भी है, और निवृत्ति रूप भी, समिति केवल प्रवृत्ति रूप है। इस लिये जो समितिमान् है वह गुप्तिमान् अवश्य है, क्योंकि समिति भी सत्प्रवृत्तिरूप आंशिक गुप्ति है परन्तु जो गुप्तिमान् है वह विकल्प से समितिमान् है। क्योंकि सत्-प्रवृत्ति रूप गुप्ति के समय समिति पाई जाती है पर केवल निवृत्ति रूप गुप्ति के समय समिति नहीं पाई जाती। यही बात श्रीहरिभद्रसूरि ने 'प्रविचार अप्रविचार' एम गूढ़ शब्दों से कही है।

[आव० टी०, पृ० ५६३]

समितियाँ, गुप्तिमनोगुप्ति आदि तीन गुप्तियाँ४ गौरव५—ऋद्धि गौरव आदि तीन प्रकार के गौरव, संज्ञा६—आहार, भय आदि चार प्रकार की संज्ञाएँ, कषाय७ क्रोध, मान इत्यादि चार कषाय और दण्ड८—मनोदण्ड आदि तीन दण्ड, इस प्रकार वन्दनादि जो विधेय (कर्तव्य) हैं उनके न करने से और गौरवादि जो हेय (छोड़ने लायक) हैं उनके करने से जो कोई अतिचार लगा हो उसकी इस गाथा में निन्दा की गई है ॥३५॥

४—मन आदि को असत्प्रवृत्ति से रोकना और सत्प्रवृत्ति में लगाना 'गुप्ति' है। इस के तीन भेद हैं, मनोगुप्ति, वचनगुप्ति और कायगुप्ति।

[समवायाङ्ग टीका, पृष्ठ ६]

५—अभिमान और लालसा को 'गौरव' कहते हैं। इस के तीन भेद हैं (१) धन पदवी आदि प्राप्त होने पर उन का अभिमान करना और प्राप्त न होने पर उस की लालसा रखना 'ऋद्धिगौरव' (२) घी, दूध दही आदि रसों के प्राप्त होने पर उन का अभिमान करना और प्राप्त न होने पर लालसा करना 'रसगौरव' और (३) सुख व आरोग्य मिलने पर उस का अभिमान और न मिलने पर उस की तृष्णा करना 'सातागौरव' है।

[समवायाङ्ग सूत्र ३ टी०, पृ० ६]

६ 'संज्ञा' अभिलाषा को कहते हैं। इस के संक्षेप में चार प्रकार हैं—आहार संज्ञा, भय संज्ञा, मैथुन-संज्ञा और परिग्रह संज्ञा। [समवायाङ्ग सूत्र ४]

७ संसार में भ्रमण कराने वाले चित्त के विकारों को कषाय कहते हैं। इसके संक्षेप में राग, द्वेष ये दो भेद या क्रोध मान माया लोभ ये चार भेद हैं।

[समवायाङ्ग सूत्र ४]

८ जिन अशुभ योग से आत्मा दण्डित—असमर्थ—होता है, उसे दण्ड कहते हैं। इसके मनो दण्ड, वचनदण्ड और कायदण्ड ये तीन भेद हैं [समवा० सूत्र ३]

* सम्मद्दिट्ठी जीवो, जइवि हु पाव समायरइ किंचि।
अप्पो सि होइ बंधो, जेण न निद्धं धसं कुणइ॥३६॥

भावार्थ—सम्यक्त्वी गृहस्थ श्रावक को अपने अधिकार के अनुसार कुछ पापारम्भ अवश्य करना पड़ता है, पर वह जो कुछ करता है उसमें उसके परिणाम कठोर (दया-हीन) नहीं होते, इस लिये उसको कर्म का स्थिति-बन्ध तथा रस-बन्ध औरों की अपेक्षा अल्प ही होता है॥३६॥

† तं पि हु सपडिक्कमणं, सप्परिआवं स उत्तरगुणं च।
खिप्पं उवसामेई, वाहि व्व सुसिक्खिओ विज्जो॥३७॥

भावार्थ—जिस प्रकार कुशल वैद्य व्याधि को विविध उपायों से नष्ट कर देता है, इसी प्रकार सुश्रावक सांसारिक कार्मों से बंधे हुए कर्म को प्रतिक्रम, पश्चात्ताप और प्रायश्चित्त द्वारा क्षय कर देता है॥३७॥

---

* सम्यग्दृष्टिर्जीवो यद्यपि खलु पापं समाचरति किञ्चित्।
अल्पस्तस्य भवति बन्धो, येन न निर्दयं कुरुते॥३६॥

† तदपि खलु सप्रतिक्रमणं, सपरितापं सोत्तरगुणं च।
क्षिप्रमुपशमयति, व्याधिमिव सुशिक्षितो वैद्य॥३७॥

§ जहा विसं कुट्ठगयं, मंतमूल विसारया ।
विज्जा हणंति मंतेहिं, तो त हवइ निव्विसं ॥३८॥

एवं अट्ठविहं कम्मं, रागदोससमज्जिअं ।
आलोअंतो अ निंदतो, खिप्पं हणइ सुसावओ ॥३९॥

भावार्थ—जिस प्रकार कुशल वैद्य उदर मे पहुचे हुए विष को भी मन या जडी-बूटी के जरिये से उतार देते है, इसी प्रकार सुश्रावक राग-द्वेष-जन्य सब कर्म को आलोचना तथा नि दा द्वारा शीघ्र क्षय कर डालता है ॥३८॥३९॥

* कयपावो वि मणुस्सो, आलोइअ निंदिअ य गुरुसगासे ।
होइ अइरेगलहुओ, ओहरिअभरु व्व भारवहो ॥४०॥

भावार्थ—जिस प्रकार भार उतर जाने पर भारवाहक के सिर पर का बोझ कम हो जाता है, उसी प्रकार गुरु के सामने पाप की आलोचना तथा निंदा करने पर शिष्य के पाप का बोझ भी घट जाता है ॥४०॥

---

§ यथा विषं कोष्ठगतं मन्त्रमूलविशारदा ।
वैद्या घ्नन्ति मन्त्रै ततस्तद्भवति निर्विषम् ॥३८॥
एवमष्टविधं कर्म रागद्वेषसमर्जितम् ।
आलोचयंश्च निन्दन् क्षिप्रं हन्ति सुश्रावक ॥३९॥

* कृतपापोऽपि मनुष्य आलोच्य निन्दित्वा च गुरुसकाशे ।
भवत्यतिरेकलघुको, ऽपहृतभर इव भारवाहक ॥४०॥

† आवस्सएण एए,–ण सावओ जइ वि बहुरओ होइ।
दुक्खाणमंतकिरिअं, काही अचिरेण कालेण ॥४१॥

भावार्थ—यद्यपि अनेक आरम्भो के कारण श्रावक को कर्म का बन्ध बराबर होता रहता है तथापि प्रतिक्रमण आदि आवश्यक क्रिया द्वारा श्रावक थोडे ही समय मे दुःखो का अन्त कर सकता है ॥४१॥

[याद नहीं आये हुए अतिचारों की आलोचना]

‡ आलोयणा बहुविहा, न य संभरिआ पडिक्कमणकाले।
मूलगुणउत्तरगुणे, तं निंदे तं च गरिहामि ॥४२॥

भावार्थ—मूलगुण और उत्तरगुण के विषय मे लगे हुए अतिचारों की आलोचना शास्त्र मे अनेक प्रकार की वर्णित है। उसम से प्रतिक्रमण करते समय जो कोई याद न आई हो, उस की इस गाथा में निंदा का गई है ॥४२॥

---

† आवश्यकेनैतेन श्रावको यद्यपि बहुरजा भवति।
दुःखानामन्तक्रियां करिष्यत्यचिरेण कालेन ॥४१॥

‡ आलोचना बहुविधा, न च स्मृता प्रतिक्रमणकाले।
मूलगुणोत्तरगुणे तन्निन्दामि तच्च गर्हे ॥ ४२ ॥

* तस्स धम्मस्स केवलिपन्नत्तस्स—
अब्भुट्ठिओमि आरा,-हणाए विरओमि विराहणाए।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥४३॥

भावार्थ—मैं केवलि-कथित श्रावक-धर्म की आराधना के लिये तैयार हुआ हूँ और उसकी विराधना से विरत हुआ हूँ। मैं सब पापों का त्रिविध प्रतिक्रमण कर के चौबीस तीर्थङ्करों को वन्दन करता हूँ ॥४३॥

जावंति चेइआइं, उड्ढे अ अहे अ तिरिअलोए अ।
सव्वाइं ताइं वंदे, इह संतो तत्थ संताइं ॥४४॥

अर्थ—पूर्ववत्।

जावंत के वि साहू, भरहेरवयमहाविदेहे अ।
सव्वेसिं तेसिं पणओ, तिविहेण तिदंडविरयाणं ॥४५॥

अर्थ—पूर्ववत्।

† चिरसंचियपावपणा,-सणीइ भवसयसहस्समहणीए।
चउवीसजिणविणिग्गय,-कहाइ वोलंतु मे दिअहा ॥४६॥

---

* तस्य धर्मस्य केवलि प्रज्ञप्तस्य—
अभ्युत्थितो ऽस्मि आराधनायै विरतो ऽस्मि विराधनायाः।
त्रिविधेन प्रतिक्रान्तो, वन्दे जिनांश्चतुर्विंशतिम् ॥ ४३ ॥

† चिरसञ्चितपापप्रणाशन्या भवशतसहस्रमथन्या।
चतुर्विंशतिजिनविनिर्गत,- कथया वजन्तु मे दिवसाः ॥ ४६ ॥

भावार्थ—जो चिरकाल-सञ्चित पापों का नाश करने वाली है, जो लाखों जन्म जन्मान्तरों का अन्त करने वाली है और जो सभी तीर्थङ्करों के पवित्र मुख कमल से निकली हुई है, ऐसी सर्व हितकारक धर्म-कथा में ही मेरे दिन व्यतीत हों ॥४६॥

* मम मंगलमरिहंता, सिद्धा साहू सुअं च धम्मो अ।
सम्मद्दिट्ठी देवा दिंतु समाहिं च बोहिं च ॥४७॥

भावार्थ—श्रीअरिहन्त, सिद्ध, साधु, श्रुत और चारित्र-धर्म, ये सब मेरे लिये मङ्गल रूप हैं। मैं सम्यक्त्वी देवों से प्रार्थना करता हूँ कि वे समाधि तथा सम्यक्त्व प्राप्त करने में मेरे सहायक हों ॥४७॥

† पडिसिद्धाणं करणे, किच्चाणमकरणे पडिक्कमणं।
असद्दहणे अ तहा, विवरीयपरूवणाए अ ॥४८॥

भावार्थ—इस गाथा में प्रतिक्रमण करने के चार कारणों का वर्णन किया गया है—

(१) स्थूल प्राणातिपातादि जिन पाप कर्मों के करने का श्रावक के लिये प्रतिषेध किया गया है उन कर्मों के किये जाने पर प्रतिक्रमण किया जाता है। (२) दर्शन, पूजन, सामायिक

---

* मम मङ्गलमर्हन्तः, सिद्धाः साधवः श्रुतं च धर्मश्च।
सम्यग्दृष्टयो देवा, ददतु समाधिं च बोधिं च ॥ ४७ ॥

† प्रतिषिद्धानां करणे, कृत्यानामकरणे प्रतिक्रमणम्।
अश्रद्धाने च तथा विपरीतप्ररूपणायां च ॥ ४८ ॥

आदि जिन कर्तव्यों के करने का आग्रह या जिन विधान किया गया है उन के न किये जाने पर प्रतिक्रमण किया जाता है। (३) जैन धर्म प्रतिपादित तत्त्वों की सत्यता के विषय में संदेह लाने पर अर्थात् अश्रद्धा उत्पन्न होने पर प्रतिक्रमण किया जाता है। (४) जैनशास्त्रों के विरुद्ध, विचार प्रतिपादन करने पर प्रतिक्रमण किया जाता है ॥४८॥

* खामेमि सव्वजीवे, सव्वे जीवा खमंतु मे ॥
मित्ती मे सव्वभूएसु, वेरं मज्झ न केणई ॥४९॥

भावार्थ—किसी ने मेरा कोई अपराध किया हो तो मैं उसको खमाता हूँ अर्थात् क्षमा करता हूँ। ऐसे ही मैंने किसी का कुछ अपराध किया हो तो वह मुझे क्षमा करे। मेरी सब जीवों के साथ मित्रता है, किसी के साथ शत्रुता नहीं है ॥४९॥

* एवमहं आलोइय, निंदिय गरहिय दुगंछिउं सम्मं।
तिविहेण पडिक्कंतो, वंदामि जिणे चउव्वीसं ॥५०॥

भावार्थ—मैंने पापों की अच्छी तरह आलोचना, निन्दा गर्हा और जुगुप्सा की इस तरह त्रिविध प्रतिक्रमण करके अन्त में अन्त में फिर से चौबीस जिनेश्वरों को वन्दन करता हूँ ॥५०॥

---

* क्षमयामि सर्वजीवान् सर्वे जीवाः क्षाम्यन्तु मे।
मैत्री मे सर्वभूतेषु वैरं मम न केनचित् ॥ ४९ ॥

* एवमहमालोच्य निन्दित्वा गर्हित्वा जुगुप्सित्वा सम्यक्।
त्रिविधेन प्रतिक्रान्तो वन्दे जिनांश्चतुर्विंशतिम् ॥ ५० ॥

५—काव्य विभाग !

१—प्रार्थना ।

(श्री गिरिधर शर्मा नवरत्न काव्यात्नकार)

[१]

नाथ आप को हम नमते है,
हाथ जोड़ पैरों पड़ते है ।
आप जानते हैं सब स्वामी,
घट घट के हैं अन्तर्यामी ॥

[२]

हम मानव है सद्गुण पावें,
सारे दुर्गुण दूर हटावें ।
कायरता के पास न जावें,
वीरपने को लाड लडावें ॥

[३]

निज कर्तव्य कदापि न तजदें,
सदा सहारा दीनों को दें ।
लोक लोक में जीवन भरदें,
मुरदाओं को चेतन कर दें ॥

[४]

विद्या ठौर ठौर फैलावें,
गहर ज्ञान भेद प्रगटावें ।
भारत गौरव जग पर छावें,
सारे जग में जयी कहावें ॥

[५]

आलस में नहीं पड़े रहें हम,
नहीं खुशामद कहीं करें हम ।
जिस शाखा पर आश्रय पावें,
काट उसे नीचे न गिरावें ॥

[६]

सज धज कर हम अकड़ न जावें,
आपस में लड़ यश न नसावें ।
संशय में पड़ मति न गुमावें,
आसमान में उड़ें सुहावें ॥

[७]

नहीं लालचों में फंस जावें,
नहीं किसी से भय हम खावें ।
सुदृढ़ रहें निज धर्म निभावें,
रह स्वाधीन सदा सुख पावें ॥

[८]

स्वामी तप में वह बल आवे,
देख जिसे जग अचरज पावे ।
सिंह चाटने पद लग जावे,
विजय दुन्दुभी देव बजावें ॥

[जैनस्तवं रत्नमाला से उद्धृत]





२-श्री शान्तिनाथ स्तव ।

[१]

हे शान्तिनाथ, जगपूज्य, प्रभो, दयालो,
देवेन्द्र, विश्वनुत, शुद्ध सुवर्ण-देह,
तेरे मनोरम पदद्वय में रचो ये—
सद्भाव भक्ति परिपूरित चित्त मेरा ।

[२]

कैसी मनोज्ञ, रमणीय, सुशान्त, तेरी—
ध्यानस्थ मूर्त्ति भगवन् यह सोहती है,
संसार ताप हरणार्थ मनो स्वयं ही—
श्री॰ शांति की सजल आकर ही खड़ी हो,

[३]

तेरे प्रभो वचन की विमल प्रभा से
अज्ञान अन्धतम है विसरा न जाता ?
विद्युच्छटा अनुपम स्थिर शक्ति वाली
जो छा रहे तम पदा फिर है दिखाता ?

[४]

हे नाथ दर्शन किये तब शान्ति आवे,
आवत न पास दुःख दारिद्, कलुष जावे ।

छावे महा जगत में यश, रत्न पावे,
धावे सुमार्ग पर, ठोकर भी न खावे ॥

[५]

आकाश चुम्बन करे भगवान तेरा,
प्रासाद सुन्दर, ध्वजा उड़ती वहां, सो ।
' जो आत्म सिद्धि कर के जग जीतते हैं,
उनका प्रभाव यह है ' बतला रही है ॥

[६]

आनन्द-मगल सदा उस ठौर होवे,
आरोग्य-सौख्य-धन-धान्य समृद्धि होवे ।
विद्वेष भाव सब का सब दूर होवे,
होवे जहा भजन-पूजन नित्य तेरा ॥

[७]

हे शान्तिनाथ भगवान तुझे नमू मैं,
देवाधिदेव जगदीश तुझे नमू मैं ।
त्रैलोक्य-शान्तिकर देव तुझे नमू मैं,
स्वामिन् नमू, जिन नमू, भगवन् नमू मैं ॥

[८]

तू बुद्ध, तू जिन, मुनीन्द्र, विभू स्वयभू,
तू राम, कृष्ण, जगदीश, दयालु दाता ।

अल्ला, रहीम, रहमान, खुदा, करीम,
तू गाड, तू अहुरमज्द, महेश, मौला ॥

[९]

है ज्ञान दर्पण महोज्वल नाथ तेरा,
आश्चर्य कारक महा जिस में पड़े हैं ।
त्रैलोक्य के सकल भाव त्रिकाल के भी,
होवे भविष्य उस में अति उच्च मेरा ॥

[१०]

जो शुद्ध बुद्ध कर निर्मल वृत्तियों को,
श्री शान्तिनाथ प्रभु के स्तव को पढ़ेंगे ।
होंगे सभी विमल कीर्ति महा सुखी वे,
संसार को अतुल शांति भरा करेंगे ॥

[जैनस्तव रत्न माला]



३—श्री पार्श्वनाथ स्तव ।

[१]

हे पार्श्वनाथ, परमेश, महोपदेशी,
हे अश्वसेन सुत, श्यामलगात्रि देह ।
वामांग जात, करुणाकर, लोक बन्धो,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा हैं ॥

[२]

संसार का तरण तारण तू कहाया,
तेरा किये स्मरण इष्ट न कौन पाया ।
पाया सुभक्ति तव जो वह मोक्ष पाया,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा हैं ॥

[३]

तूने सहे कमठ के उपसर्ग भारी,
तूने अनन्त जग के उपकार कीने ।
आदर्श भव्य जन का भगवान है तू,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा हैं ॥

[४]

तूने कुमार पन से सब योग साधा,
भाई सदा सफल जीवन की भलाई ।
तत्वार्थ का मरम मानव का बताया,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा है ॥

[५]

अव्याज बन्धु जगनायक तू जगों का,
तेरी करे न किसका हित दिव्य वाणी ।
तेरा प्रभाव किसके हिय पै पड़े ना,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा है ॥

[६]

बारूद आग लगन पर ज्यों उड़े, त्यों,
नाना भवोद्भव महागिरि पाप के भी—
देवेन्द्र ! दर्शन किये तव नष्ट होते,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा है ॥

[७]

"जो साम्य भाव धर जीव दया प्रचारें,
हैं क्रूर जन्तुगण भी उनके हितैषी।"
ये बात नाथ अहिन्न बता रहा है,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा है ॥

[८]

तू वीतराग भगवान मुनीन्द्र है तू,
इष्टोपदेश-कर तू, जग पूज्य है तू ।
मेरा 'नमोऽस्तु' भगवन् तुझ को हमेशा,
तेरे सदा चरण ही मम आसरा है ॥

[९]

हो देश में सब जगह सुख शांति पूरी,
हिंसा प्रवृत्ति जग से उठ जाय सारी ।
पावे प्रमोद सब राष्ट्र कुटुम्ब मेरा,
कल्याण तू कर सदा भगवन् नमस्ते ॥

[१०]

जो भव्य शुद्ध बनके स्तव को पढ़ेगा,
कल्याण भाव जग का हिय में धरेगा ।
सन्मान्य हो सकल का हित वो करेगा,
संसार के कुपथ सागर को तरेगा ॥

[जैनस्तव रत्न माला]



४—श्री वीरस्तव ।

[१]

श्रीमन्, महावीर, विभो, मुनीन्द्रो,
देवाधिदेवेश्वर, ज्ञान सिन्धो ।
स्वामिन् ! तुम्हारे पदपद्म का हो,
प्रेमी सदा ही यह चित्त मेरा ॥

[२]

स्वामिन् किसी का न बुरा विचारू,
सन्मार्ग पे मैं चलते न हारू ।
,तत्त्वार्थ श्रद्धान सदैव धारू,
दो शक्ति, हो उत्तम शील मेरा ॥

[३]

सदा भलाई सब की करू मैं,
सामर्थ्य पा जीव दया धरू मैं ।
संसार के क्लेश सभी हरू मैं,
हो ज्ञान, चारित्र विशुद्ध मेरा ॥

[४]

स्वामिन् तुम्हारी यह शान्त मुद्रा,
किसके लगाती हिये में न मुद्रा ।
कहे उसे क्या यह बुद्धि क्षुद्रा,
स्वीकारिये नाथ प्रणाम मेरा ॥

[५]

प्रभो तुम्हीं हो निष्कोपकारी,
प्रभो तुम्हीं हो भव दुःखहारी ।
प्रभो तुम्हीं हो शुचि पन्थ चारी,
हो नाथ साष्टाङ्ग प्रणाम मेरा ॥

[६]

जो भव्य पूजा करते तुम्हारी,
होती उन्हों की गति उच्च प्यारी ।
प्रसिद्धि है 'दादुर फूल' धारी,
सम्पूर्ण है निश्चय नाथ मेरा ॥

[७]

मेरी प्रभो दर्शन शुद्धि होवे,
सद्भावना पूर्ण समृद्धि होवे ।
पाचों व्रतों की शुभ सिद्धि होवे,
सद्बुद्धि पै हो अधिकार मेरा ॥

[८]

आया नहीं गोतम भिन्न जौ लौं,
खिरी न वाणी तब दिव्य तौ लौं ।
पीयूष से पात्र भरा सतौलों,
मैं पात्र होऊं अभिलाष मेरा ॥

[९]

प्रभो तुम्हें ही दिन रात ध्याऊं,
सदा तुम्हारे गुण गान गाऊं ।
प्रभावना खूब करूं कराऊं
कल्याण होवे सब भांति मेरा ॥

[१०]

श्री वीर के मारग पै चलें जो,
श्री वीर पूजा मन से करें जो ।
सद्भव्य वीर स्तव को पढ़ें जो,
वे लब्धियां पा सुख पूर्ण होवें ॥

[जैनस्तव रत्न माला]



९—आलोचना !

[१]

हैं दोष, हैं गुण, महेश मनुष्य हूँ मैं,
हैं पाप पुण्य मय मानव देह मेरा।
जो नाथ दोष नत के मुझ से हुए हों,
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान, याचूं॥

[२]

मैंने प्रभो! स्वपर का हित ना विचारा,
अज्ञान मोह वश दुर्गुण चित्त धारा।
पूरा किया न जगदीश्वर काम प्यारा,
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान, याचूं॥

[३]

जिव्हा रही न वस में, रस भी न छोड़ा,
मोड़ा न नेक मुख दुर्दम वृत्तियों से।
नाना अनर्थ कर अर्थ समर्थ, जोड़ा,
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान, याचूं॥

[४]

हे नाथ ध्यान धर के तुझ को न ध्याया,
स्वाध्याय का मन लगा न मजा उडाया।
पाया प्रमोद विकथा कर देव मैं ने,
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान, याचू॥

[५]

मैंने प्रमाद वश दुर्गुण भी किये हैं,
गार्हस्थ्य कार्य जतना बिन होगये हैं।
हां, लोक के हृदय भी मुझसे दुखे हैं,
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान, याचू॥

(६)

'आराधना मन लगा कर की न तेरी,
देती रही जगत में चल वृत्ति फेरी।
ऐसी हुई प्रभु भयकर भूल मेरी,
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान, याचू॥

[७]

बांधे प्रभो सुकृत के बहुधा निधाने,
नाना प्रकार रस-हास विलास माने।
जाने न कर्म रिपु, ना तुमको पिछाने,
कीजे क्षमा कर कृपा भगवान, याचू॥

[८]

'अध्यात्म का रस पिया छक खूब मैंने,
सँसार का हित किया भरपूर मैंने।'
आलोचना इस तरह करते बनी ना,
कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचूं ॥

[९]

'षट् काय जीव करुणा करते न हारा
मारा कषाय, मन में न प्रमाद धारा।'
आलोचना इस तरह करते बनी ना,
कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचूँ ॥

[१०]

सँसार का हित महेश महा करे तू,
है ये प्रसिद्ध अमनस्क मुनीन्द्र है तू।
तो भी तुझे न अपना मन दे सका मैं,
कीजै क्षमा कर कृपा भगवान, याचूँ ॥

[११]

गँभीर ध्यान धरके भगवान का जो,
आलोचना पढ़ कर निज शुद्ध देही।
हो जातिरत्न वह कीर्ति अनन्य पावे,
सद्रूप सिद्धिवर पत्तन को बसावे ॥

[जैनस्तव रत्न माला]

६--अहिंसा !

[१]

मचा संग्राम है जग में,

अहिंसा और हिंसा का ।

बजेगा जीत का डंका,

अहिंसा का, न हिंसा का ॥

[२]

हजारों वार हों सो हों,

चलेंगे सीना फैलाय ।

उड़ावेंगे जगत भर में,

विमल झंडा अहिंसा का ॥

[३]

डरें क्या अस्त्र शस्त्रों से,

छुएँ क्या अस्त्र शस्त्रों को ।

हमारा राष्ट्र ही जब है,

स्वयं सेवक अहिंसा का ॥

[४]

विना जीते महारण के,
न जीते जी टलेंगे हम ।
तजेंगे त्यों न तिलभर को,
कभी रस्ता अहिंसा का ॥

[५]

भले पालीसिया चल चल,
हमें कोई भुलावे दें ।
भुलावों में न आवेंगे,
दिखा विक्रम अहिंसा का ॥

[६]

न हम नापाक खूनों से,
रंगेंगे पाक हाथों को ।
हमारा खून हो तो हो,
विजय होगा अहिंसा का ॥

[७]

कभी धीरज न छोडेंगे,
जहां में शांति भर देंगे ।
सिखावेंगे सबक सबको,
अहिंसा का अहिंसा का ॥

[८]

हमारे दुश्मने जानी,
भी होंगे दोस्त कल आके ।
कहेंगे सर झुका के यों,
बतादो गुर अहिंसा का ॥

[९]

समभा है, न दुनिया में,
निशा भी हो गुलामी का ।
सभी आजाद हों कौमें,
बजे डंका अहिंसा का ॥

(जैनस्याय रत्न माला)

७--हमारा भारत !

(श्री गङ्गाधर)

भारत, हमारा भारत हमको सदैव प्यारा ।
इस विश्व में हमारा है एक यह सहारा ॥
उत्तर में है हिमालय जो ऐसा सोहता है ।
मानों महान् कोई मणि-मुकुट है तुम्हारा ॥
यह सूर्य की कुमारी यमुना विचर रही है ।
शोभा बढ़ा रही है गङ्गा की स्वच्छ धारा ॥
हर एक वन, नदी, नद, गिरि हैं हमें लुभाते ।
मानों उछल रहा है सौंदर्य का फवारा ॥
कितने नरेश इस में ऐसे हुए हैं भारी ।
जिनका चरित्र पावन आदर्श है हमारा ॥
इस के पवित्र रज में खेले थे पार्श्व स्वामी ।
जिन की चरित्र गाथा गाता है विश्व सारा ॥
भगवान वीर भी थे इस देश के निवासी ।
जिसने किया प्रदर्शित भव-सिन्धु का किनारा ॥
हम भी हुए हैं पैदा इस पुण्य भूमि में जब ।
कुछ काम कर दिखाना कर्त्तव्य है हमारा ॥
तेरे लिये हे भारत ! यदि प्राण भी गवां दें ।
निज भाग्य को सराहें-भारत है प्राण प्यारा ॥

(सरस्वती-जुलाई १९४८)

